





## COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of  
hinduism  
server



## COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of  
hinduism  
server

# आयुर्वेदीय आौषधिशुश्रावर्मशास्त्र



## प्रथम विभाग—भस्मे



न मात्रामात्रसम्प्यव्र किंचिदगमवर्जितम् ।

ग्रंथकर्ता

श्री. वै. पं. गंगाधरशास्त्री गुणे,  
प्रमुख-आयुर्वेदमहाविद्यालय अहमदनगर.

प्राप्तिस्थानः—

मंत्री

आयुर्वेद सेवासंघ अहमदनगर.

सर्व हक्क प्रकाशकके स्वाधीन.

## श्लोक,

शास्त्रं ज्योतिः प्रकाशार्थं दर्शनं बुद्धिरात्मनः ।  
ताभ्यां भिषक् सुयुक्ताभ्यां चिकित्सन्नापराध्याति ॥  
चिकित्सिते त्रयः पादा यस्माद् वैद्यसमाश्रयाः ।  
तस्मात्प्रयत्नमातिष्ठेद्धिषक् स्वगुणासंपदि ॥ चरक सू. अ. १  
अतोऽभियुक्तः सततं सर्वमालोच्य सर्वथा ।  
तथा युज्ञीत भैषज्यमारोग्याय यथा ध्रुवम् ॥

अष्टांगहृदयसू. अ. १८

ज्ञानबुद्धिप्रदीपेन यो नाऽविशति योगिवत् ।  
आत्मरस्यान्तरात्मानं न स रोगांश्चिकित्सति ॥

अष्टागसंग्रह अ. २३

# आयुर्वेदीय औषधिगुणाधर्मशास्त्र



## प्रथम विभाग.

### हिंदी अनुवाद का प्रस्ताव

“ आयुर्वेदीय औषधिगुणाधर्मशास्त्र ” के मराठी भाषामें चार विभाग प्रसिद्ध हो चुके हैं। उनमें से पहले विभाग का यह हिंदी भाषामें अनुवाद किया है, मराठी विभाग के तीन संस्करण हो चुके हैं। यह ही इस ग्रन्थ का मान्यत्व सिद्ध करता है।

हिंदी वाचकोंमें जो थोड़ासा मराठी जानते थे उन्होंने भी इस ग्रन्थको देखकर अनुकूल मत प्रदर्शित किया है। कुछ ग्राहकोंने इच्छा प्रदर्शित की है कि इस ग्रन्थ का अनुवाद हिंदी में जरूर होना चाहिए।

अहमदनगरमें ‘आयुर्वेद-सेवा-संघ’ आयुर्वेदशास्त्र का प्रचार-कार्य कर रहा है। उसके भिन्न भिन्न कार्योंमें; ‘आयुर्वेदाश्रम फार्मेसी लिं’ नाम का औषधि कारखाना, आयुर्वेद महाविद्यालय (जिसमें आज १२० पाठक शिक्षा पाते हैं), आयुर्वेदीय चिकित्सा मंदिर, ‘भिषग्विलास’ और ‘संघवृत्त’ नामके मासिक पत्र, इत्यादि कार्योंका समावेश कर सकते हैं। इसी तरह ग्रन्थलेखन और प्रकाशन का कार्यभी आयुर्वेद सेवासंघके कार्योंमें अंतर्भूत है।

वैद्यपंचानन गंगाधरशास्त्री गुरोजीका ऊपर लिखा हुआ ग्रन्थ हिंदी भाषामें प्रसिद्ध करनेका विचार हुआ और शास्त्रीजीको इसके बाबद पूछा गया तो उन्होंने इस ग्रन्थके हिंदी अनुवादके सर्व अधिकार ‘आयुर्वेद सेवासंघ’के हाथमें विनामूल्य दे दिये इस कृपाके कारण ‘संघ’ शास्त्रीजी को धन्यवाद देता है।

हिंदी अनुवादभी एक महाशयने संघके लिए विनामूल्य लिखकर दिया है। उनकोभी हम धन्यवाद देते हैं। मराठी ग्रन्थके १४४ पृष्ठ हैं। इसमेंभी करीब करीब उतनेही पृष्ठ होंगे। मराठी ग्रन्थके समान इसकी कीमतभी रख्खी है।

मराठी मूल्खमें हिंदी भाषाका ग्रन्थ लिखना और प्रकाशित करना यह एक कठिन बात है। किंतु पूनेके आर्यमूष्ठण प्रेस जैसे सुसज्ज प्रेसमें

यह सब विगर तकलीफसे हो सका। आर्यभूषण प्रेसके हम इस बाबतमे  
ऋणी हैं।

स्वतंत्र लेख और अनुवाद इनमे यह फर्क रहता है कि अनुवाद  
मे उतना भाषास्वातंत्र्य नहीं रहता। इस लिए ग्राहकोंसे यह विश्वसि है  
कि भाषाकी गलितयां माफ करके तात्पर्यका स्वीकार करें।

अ. वि. केतकर

मंत्री

आयुर्वेद सेवासंघ

अहमदनगर

## मराठी द्वितीय और तृतीय संस्करणोंका प्रस्ताव. ( संक्षेपमे )

“ इस विषयपर प्रथम आयुर्वेद विद्यालयमे व्याख्यान हुए थे. सन् १९१९ के बाद हमारे ‘भिषजविलास’ मासिकमे कुछ लेख प्रसिद्ध किये गये. उनको देखकर डॉकटर, वैद्य और विद्यार्थी बाचक संतोषित हो गये और उनकी पत्ररूप आज्ञा देख कर ये सब पुस्तकरूपमे प्रसिद्ध किये जाते हैं.

आयुर्वेदशास्त्रका पठन करते समय ही हमको यह एक तीव्र इच्छा हुई कि ‘औषधिगुराधर्मशास्त्र’ कुछ नयी रीतिसे और विस्तृतशः लिखने की जरूरत है. इसकी पूर्तता के लिए हम पहलेसेही हमारा अनुभव लिखकर रख देते थे और आयुर्वेदीय उपपत्ती तथा सिद्धांतोंके अनुसार दोषप्रत्यनीक चिकित्साका फल देखकर हमारा विश्वास बढ़ता गया. आज तक ये गुराधर्म सूत्रमय भाषामे लिखे हुए थे. उन्हींको हमने विस्ताररूपमे प्रकट किया है. न तो हमने इसमे कुछ गोलमाल किया न कुछ वास्तवसे अधिक वर्णन किया. केवल अमरके प्रयत्न जैसा यह हमारा यत्न है. भिन्न भिन्न ग्रंथोंमेसे ‘मधु’ भिलाकर एक ग्रंथ से संम्मीलित किया है और मानो पुराने लोटेकी जगह आजकलकी स्वच्छ बोतलमे भर दिया है.

इस ग्रंथमे जो विस्तार है वह सब उपरुग्णा पद्धतीसे (clinical) अजमाया गया है. रोगियोंमे औषधका प्रभाव देखकर यह सब लिखा गया है. प्रयोगशालामे औषधियोंका रासायनिक पृथक्करण करनेका सुभीता हमारे पास न था. अगर प्रयोगशाला रहती तो भी हमें विश्वास नहीं कि उससे कुछ लाभ होता. क्योंकि आयुर्वेदशास्त्रकी औषधिकरणकी रीति इतनी चमत्कारिक है कि उन औषधियोंका रासायनिक पृथक्करण शायदही हो सके. एक हजार पुट दे कर बनाई हुई अभ्रक-भस्म किस रीतसे पृथक्कृत होगी? हमने एक समय अभ्रकभस्म जाँच करवानेके लिए बिलायत भेजी थी. इसका रिपोर्ट क्या हुआ? तो यह केवल खाकही है! जिस अभ्रकभस्मसे हम रोजाना हजारों रुग्णा जन को आराम दे सकते हैं ऐसे प्रभावशाली अभ्रकभस्मकी जांच यह है! इसी लिए ऊपर लिखी हुई उपरुग्णा पद्धति हमने स्वीकृत की है.

( तृतीय संस्करण )

दूसरे संस्करणके प्रस्ताव मे हमने लिखा है कि यह सब ग्रंथ अनुभवके बाद प्रसिद्ध किया जाता है. इस बातका थोड़ासा स्पष्टी-

करणा करेंगे. हमारे 'गुरु' वंशमे कुछ सो पचास साल तक सब वैद्यक-काही धंदा कर रहे हैं. उनमेसे भी विख्यात वैद्य डॉक्टरोंका सहवास हमको बचपनसे मिला है. उनकी प्रसिद्धि इतनी थी कि उनके पास दूरदूरके रुग्ण उपस्थित होकर औषधियाँ ले जाते थे और उनसे लाभ उठाते थे. हमको भी अनुभवरूप लाभ आकंठ प्राप्त हुआ. और शिक्षा पाते समय चिकित्साशास्त्रमे तौलनिक अभ्यास करनेका प्रयत्न शुरू किया. ग्रंथोंमे लिखे हुए सब गुराधर्म इस समय और इसके बाद खुद अपने रोगियोंमे अजमाये और उनमेसे अर्थवाद और अतिशयोक्ति छोड़कर यह 'गुराधर्मशास्त्र' केवल सत्य और अनुभवित गुराधर्मोंके प्रसार के लिए लिख चुके हैं. इसमे यह कोर्सिस की है कि कहीं परभी असत्य लेखन न हो.

जिस तरह महाभारतके बारेमे यह लिखते हैं कि 'व्यासोच्छिष्ठं जगत् सर्वं ।' ठीक उसी तरह पुराने वैद्यक ग्रंथोंके बारेमे लिख सकते हैं. किंतु उनमे लिखे हुए गुराधर्मोंमेसे चुनाव होना चाहिये. नहीं तो 'सर्वरोगे वसंतः' 'जरामरणानाशनः (मकरध्वजः ।),' आरोग्य-वर्धिनी-'बहुना च किमुक्तेन सर्वरोगेषु शस्यते । किंवा 'सर्वरोगप्रशमनी' श्वासकुठार 'सर्वं श्वासनिकृम्तनः ।' महायोगराज गुग्गुल-'सर्वान्वातामयान्नाशयेत् ।' महागंधक—"सर्वव्याधिषूदनः" इन सब विधानोंका कुछ भी अर्थ न होगा. एकही दवा सब रोगियोंको लाभदायक कभी न होगी. इस लिए सोचमोचके, अन्य प्रसिद्ध वैद्योंके साथ चर्चा करके और सब गुराधर्म खुद अपने रोगियोंपर अजमाकर आज ३०३२ साल तक अध्ययन, अध्यापन और चिकित्सा करके यह यत्न किया है.

औषधियोंके गुराधर्म प्रस्थापित करनेमे आजकल दो प्रकार का संशोधन करते हैं. एक प्रायोगिक पद्धति याने प्रयोगशालामे और दूसरा उपरुग्ण याने अस्पतालमे रोगियोंपर संशोधन. इनमेसे प्रायोगिक संशोधन बहुत महंगा होता है. उसमे संशोधक बुद्धि, अत्यंत कष्ट, इनकी जरूरत रहती है. इस प्रकारके संशोधनमे कुत्ता, बिल्ली, मूसा इत्यादि जानवरोंपर औषधियोंके गुराधर्म अजमाये जाते हैं. प्रथम वनस्पतीका अर्क या अन्य रीतीसे बनाया हुवा कल्प उन जानवरोंको दिया जाता है. किंतु संपूर्ण वनस्पतिमे जो गुरा पाये जाते हैं उनमेसे शायदही अर्कमे सब गुरा आ सकते हैं. कभी कभी अर्कमे

कुछ दोषभी आ सकते हैं। इतनाही नहीं, जानवरों अजमाये हुए गुराधर्म भिन्न भिन्न जातेके जानवरोंपर भिन्न भिन्न तरहके आते हैं। जानवरोंके बाद फिर मनुष्य जातिपर प्रयोग करना अत्यंत आवश्यक है।<sup>२</sup>

प्रायोगिक पद्धतीमें खर्चा बहुत लगता है। दिनभी बहुत लगते हैं। गुराधर्मशास्त्र, रसायनशास्त्र आदि सब विज्ञानशास्त्रोंके तज्ज्ञोंका भिलाफ होना चाहिए। हरएक विज्ञान शास्त्रकी अलग अलग प्रयोगशाला चाहिए। एक बड़ा चिकित्सामंदिर (अस्पताल), उसमें तज्ज्ञ परिचारक, सहाय्यक, 'क्ष' किरण की योजना, और उपरुग्रा प्रयोगशाला, ये सब अत्यंत आवश्यक हैं। इतने सब अवजार पास होनेपरभी प्रथम बनस्पतीका संशोधन छोटे छोटे जानवरोंपर प्रयोगरूप होगा। उस बनस्पतीका रासायनिक पृथकररा करना पड़ेगा। रोगोंमेंभी जंतुज रोगोंका संशोधन कुछ सुभीतेसे होगा किंतु अन्य निर्जन्तुक रोगोंकी बात तो इससे भी दुष्कर है। इस रीतसे संशोधन करें तो हरएक बनस्पती के संशोधनके लिए चार पांच साल तो जरूर लगेंगे।<sup>३</sup>

1. Moreover while it may cure one species of animal infection with a particular parasite it may fail to cure another species infected with the same parasite 'Cushny's-Textbook of Pharmacology & Therapeutics. p. 27.

2. "The final test of its value in a corresponding disease in man must be done on man himself." Ibid-p. 27.

3. "The time and labour required to work out the chemical composition of a drug is enormous..... It would take an experienced chemist about two or three months to isolate in a pure state, and roughly state the nature of chemical constituents of a single drug, the determination of chemical constitution of the active principle concerned would take another two years, provided the chemist devoted his time entirely to one active principle The isolation of a sufficient quantity of the active principles and testing them pharmacologically would take a few months. One can see that it will take years to complete the work in indigenous drugs which has now been started at the Calcutta School of Tropical Medicine."—Col. Chopra.

उपरुग्रा पद्धतीसे, संशोधन कुछ सुभांते से हो सकता है। इसके माने यह नहीं कि कोईभी झट्टे इस तरह संशोधन कर सके। प्रथम रोगनिदान, औषधिगुराधर्मशास्त्र और चिकित्साशास्त्र इनमें प्राविष्ट होना चाहिए। रोगीको देख कर उसके विकारका स्वच्छ निदान सब लक्षणोंको और रोगकी अवस्थाको देख कर निश्चित करना, रोगविनिश्चयके बाद औषधिविनिश्चय, औषधीका प्रभाग इत्यादि निश्चित करना चाहिए।

प्रायोगिक पद्धतीका उपयोग आज अशक्य है। तब भी आजकल के आयुर्वेदशास्त्रोन्नति के प्रयत्न देखें तो आशा दिखती है कि कुछ असेंके बाद यह भी शक्य होगा। तब तक उपरुग्रा पद्धतीका ही पूर्ण उपयोग करना चाहिए।

जहाँ तक प्रायोगिक संशोधन पद्धतीका सहाय्य मिल सके, वह विलकुल न छोड़ना चाहिए। जैसे रुग्राविज्ञानशालामें तपेदिकके जंतुओंकी जाँच करनेमें कुछ बहुत श्रम नहीं लगते हैं। रोगनिदान निश्चित करनेके लिए तथा तपेदिकके रोगीपर उपचार करनेके बाद ये काढ़े भर गये हो या नहीं यह देखनेके लिए यह पद्धति पूर्णतया उपयुक्त होगी। सुवर्णाभस्मके सेवनसे तपेदिकके रोगियोंको सचमुच फायदा होता है या नहीं इसकी यहही एक खात्रीलायक जाँच होगी। ज्वरदेगका मापन थर्मोमीटर लेकर करें तो उसमें आयुर्वेदशास्त्रका कुछ नुकसान नहीं। तपेदिक की सचमुच अवस्था जाननेके लिए किरणोंका सहाय्य लें तो औरभी अच्छा होगा।

इसके माने यह नहीं है कि रोगनिदान करनेमें वैद्य केवल अवजारोंपर भरोसा रखे। इस भरोसेकी अपेक्षा वह खुद अपनी शास्त्रबुद्धि और शोधकबुद्धि बढ़ावे तो अधिक फायदा होगा।

( परं प्रयत्नमातिष्ठेऽन्निष्टव्यगुरासंपदि । )

रोगविनिश्चयके माने केवल विकारका नामज्ञान नहीं है। दोष, दोषदूष्यसंयोग, उनके चय, प्रकोप, प्रसर और स्थानसंश्य, इन सब वातोंका स्थाल रखना चाहिए। धातुवैषम्य उत्पन्न करनेमें कौनसे निमित्त

१. सर जेम्स मेकेन्झी जैसे पाश्चात्य वैज्ञानिकभी डॉक्टरोंको बार बार समझाते हैं कि इन अवजारोंने जितनी सहाय्यता की है उतनाही आलस्यभाव बढ़ाया है और डॉक्टरोंको यह इशारा है कि वे अवजारोंके दास न बने।

कारण और असमवायी कारण हुए हैं। जंतु, कृमि, गर, विष, सेन्द्रिय विषार इत्यादि निमित्त कारण हो सकते हैं। इसका ख्याल रखना चाहिए। इन निमित्त कारणोंके बाद धातुवैषम्य (दोष) उत्पन्न होता है। ये दोष (दूषित धातु) रस, रक्त आदि दूष्योंमें समाविष्ट होते हैं। यह दोषदुष्ट संयोग रोगका असमवायी कारण है। यह दोषदुष्ट जबतक स्वस्थानमें रहती है और उसकी अनुलोम प्रवृत्ति है तबतक उस अवस्थाको 'चय' अवस्था कहते हैं। अपना स्थान छोड़कर दोष उन्मार्गगामी होकर अपने लक्षण दिखलाने लगते हैं तब उस अवस्थाको 'प्रकोप' और जब वे सब शरीरमें फैलते हैं तब उस अवस्थाको 'प्रसर' कहते हैं। सर्व शरीरमें फैलने परभी शरीरके कुछ विभागोंमें वे अधिक प्रमाणमें संचित हुए नजर आते हैं। उस अवस्थाको 'स्थानसंश्रय' कहते हैं। रोग निदान 'चय' अवस्थामें निश्चित हुआ हो और योग्य चिकित्सा की जाय तो आगेकी अवस्थाएँ टल सकती हैं। इस तरहका रोगविज्ञान आयुर्वेद-शास्त्रका हृदृत है।

रोगकी अवस्था पहचाननेके लिए सब लक्षणोंका सूक्ष्म विचार तथा रोगी की भावनाओंकी तलाश विस्तरशः करनी चाहिए। केवल रोगजंतु देखनेमें आये तो इस रोगका इलाज नहीं कर सकते हैं। क्योंकि वे रोगजंतु एक रोगिके शरीरमें कुछ लक्षण पैदा करेंगे तो दूसरे रोगिके शरीरमें उनके विपरीत लक्षण उत्पन्न कर सकते हैं। लक्षणोंकी भिन्नताके अनुसार औषधियोजनाभी भिन्न होगी। यह ही आयुर्वेदिय चिकित्साका विशेष है।

दोषदुष्टीभी एक एक दोषकी एकसी नहीं रहती है। उन २ दोषोंके भिन्न भिन्न गुण कम या अधिक हो सकते हैं। याने एक रुग्णा कफका गुरुत्व (भारीपन) गुण बढ़नेके कारण व्याथित होगा तो दूसरा, कफका स्निग्धत्व गुण बढ़ जानेसे तकलीफ उठाएगा। पित्तका तीक्ष्णत्व गुण बढ़ जानेपर भिन्न लक्षण पाये जाएंगे तो उसीका द्रवत्व गुण बढ़नेसे उनका पताभी न होगा। एकही लक्षण लेवें तो भी उपलक्षणोंके अनुसार चिकित्सा भिन्न होगी।

**उदाहरणार्थः—कै (वर्मन)—**इसके साथ जलन हो तो—प्रवालभस्म, कैका प्रमाण अधिक और कै पतली आती हो तो सुवर्ण माक्षिकभस्म, लाभदायक होगी। धातुवैषम्य नष्ट करके धातुसाम्य प्रस्थापित करनाह यही एक ध्येय है। प्रवाल (मूँगा) शीत और स्वादुतोत्पादक होनेके कारण तीक्ष्णा और अम्ल गुणोंका प्रतिकार करता है। माक्षिक स्तंभक होनेके कारण द्रवत्वको हटाता है।

इसी लिए गुराधर्म और चिकित्सापद्धतिके संशोधन या उपचयोगके लिए दूष्य, देश, बल, काल, अनल, प्रकृति, वय, सत्त्व, सात्म्य, आहार और रोगोंकी सूक्ष्म सूक्ष्म अवस्था इनका पूर्ण विचार करना चाहता है।<sup>१</sup> दोषों की वृद्धि या क्षय, रस, रक्त आदि दूष्योंकी वृद्धि या क्षय, रोगी का बल, रोग का बल, दोषों का बल, ये सब लक्षणोंका सूक्ष्म अभ्यास करकेही पहचानना पड़ता है। रोगकी अवस्था जाननेपर आमावस्थामे लंघन और पक्वावस्थामे शमन चिकित्सा कर सकते हैं। आमावस्थामे सुवर्णामाक्षिकका उपयोग करें तो उससे नुकसानही होगा। तपेदिकके ज्वरमे महामृत्युंजय जैसा रेचक, पाचक तथा ज्वरघ्न औषध देनेसे हानि होगी। इस लिए भिन्न भिन्न अवस्थाओंके अनुसार भिन्न भिन्न चिकित्सा होगी।

उपर्युक्त पद्धतिके अनुसार विचार करनेपर ग्रंथोंमे लिखे हुए गुराधर्मोंका भी ठीक ठीक अर्थ समज सकते हैं। “वंगं भक्षयतो नरस्य न भवेत् स्वप्नेऽपि शुक्रक्षयः।” इस श्लोकार्थके अनुसार विचार करे तो शुक्रच्युति और शुक्रनाशके बाद जो कुछ दोषदूष्य-संयोग नजर आवेंगे उनमे वंगभस्मका उपयोग निश्चित कर सकते हैं। “नागस्तु नागशततुल्यवलं ददाति” इसका विचार करनेपर बलनाशकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंमे यह दे सकते हैं और उसका परिणाम देखकर योग्य अवस्थाकी निश्चिति कर सकते हैं। मलोत्सर्ग करनेकी इच्छा होनेपरभी दुर्वलताके कारण रोगी मलोत्सर्ग न कर सकता हो तो वह पक्वादाय स्थानकी बलहानि होगी।

इस ग्रंथमे इनही विचारोंके अनुसार संशोधन करके सब निश्चित गुराधर्म लिखे गये हैं।

**गंगाधर गोपाल गुरो।**

**आयुर्वेदाश्रम-अहमदनगर जन्माष्टमी (श्रावण व. ८ शक १८५५**

१ दूष्यं देशं बलं कालमनल प्रकृतिं वय। ।

सत्त्वं सात्म्यं तथा ५५ हारमवस्थाश्व पृथग्विधा ॥

सूक्ष्मसूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषधनिस्त्रपणे ।

यो वर्तते चिकित्सायां न स स्वल्पते जातुचित् ॥ अ. हृ: सू. १२, ६६, ६७

आयुर्वेदीय औषधिगुराधर्मशास्त्र  
प्रथम विभाग  
भस्मे

उपोद्धात

दुनियामें दो प्रकारकी चीजें होती हैः—( १ ) सेंट्रिय या चेतन और ( २ ) निरिन्द्रिय या अचेतन. निरिन्द्रिय चीजोंको जड़ या स्थूल भी कहते हैं. लोहा, सुवर्ण, चांदी, मिट्टी, पत्थर इत्यादि एक जगह पर पड़े रहते हैं और अपने आप बढ़ते नहीं या चलते फिरते भी नहीं. इनको अचेतन कहते हैं. पेड़, परिंद, पशु, फल, मूल, फूल, पत्ते, सजीव परमाणु ( Living cells ) इत्यादि सेंट्रिय या सचेतन हैं. निरिन्द्रिय द्रव्योंमें भी कुछ प्रकार होते हैं. जैसे—सुवर्ण, लोहा, चांदी आदीको ‘धातु’ कहते हैं. सोनामांखी, अभ्रक आदीको उपधातु कहते हैं. इन धातु और उपधातुओंको शुद्ध करके उन पर शोधन, मारणा इत्यादि किया करके उनके भस्म तैयार करते हैं. भस्म यह आयुर्वेदमें एक विशेष प्रकारका कल्प है.

धातु और उपधातु ये बहुतसे ‘खनिज’ याने खान में मिलते हैं. इनमें दूसरी निरिन्द्रिय चीजें मिली हुई रहती हैं. शुद्ध धातु खानमें नहीं मिलती इसलिए उनको शुद्ध करना पड़ता है. “शुद्धिसंस्कार” याने धातुओंको शुद्ध और स्वच्छ करना. यह क्रिया भिन्नभिन्न धातुओंके लिये भिन्नभिन्न होती है और भिन्नभिन्न द्रव्यमी इस्तमाल करते हैं. शुद्धिसंस्कारसे दो काम होते हैं. एक उस धातूको स्वच्छ करना और उसमें मिलेहुए दूसरे और धातुओंको अलग करना. दूसरा यह काम होता है कि यह धातु विलकुल मुलायम बन जाती है और उसकी भस्म सुलभतेसे बन सकती है. ये दोनों कार्य साध्य करनेके लिये धातूको तपातपाकर भिन्नभिन्न पतली चीजोंमें डुबाते हैं. ये चीजें सेंट्रिय या निरिन्द्रिय होती हैं. जैसे अम्ल, तैल, छांछ, गोमूत्र, कांजी इत्यादि. ये चीजें भिन्नभिन्न धातुओंपर अच्छी तरहसे संस्कार कर सकती हैं. और यह संस्कार उन धातु उपधातुओंकी भस्म बनानेके पहले करना जरूर है. संस्कार न करके भस्म बनानेसे एक तो भस्म जल्द और अच्छी नहीं बन सकती और गुणाधर्मशास्त्रमें लिखे हुए गुरामी इसमें

नहीं पाये जाते. जैसे-बंग (रांगा) शुद्ध करनेसे विलकुल मुलायम बन जाता है उसकी भस्म भी अच्छी और जल्द बनती है. अशुद्ध रांगामें नाग (सीसा) और दूसरे धातू मिले हुए रहते हैं और भस्मको बिगड़ते हैं. शुद्धिसंस्कारसे ये दूसरे धातू अलग किये जाते हैं. अशुद्ध रांगा इतना मुलायम भी नहीं रहता. दूसरी यही वजह है कि उसपर मारणा-संस्कार अच्छा और जल्द नहीं हो सकता, और उसकी भस्ममें भी शुद्ध रांगा नहि रहता. इसमें दूसरे धातू मिले रहते हैं.

धातु और उपधातुओंकी भस्म बनानेमें उनपर तीन संस्कार करने पड़ते हैं—शुद्धि, मारणा और अमृतीकरण (या निरुत्थत्व-जिसमेसे फिर वह धातु नहि बना सकते हैं—प्राप्त होने तक उसपर संस्कार करना). उनमेसे शुद्धि-संस्कारके बावत हम लिख चुके हैं. “मारणा” संस्कार “पुट” और “भावना” से होता है. “मारणा” के माने यह है कि धातूमें जो ‘धातुत्व’ या ‘धातुपरमाणु’ रहते हैं उनको विलकुल छोटे छोटे करके अत्यंत सूक्ष्म, निरुत्थ और “सेन्ड्रिय घटक-युक्त (उनका सेन्ड्रिय द्रव्योंसे संयोग Organic compound) बनाना. ‘मारणा’ माने नाश करना. “धातुमारणा” के माने धातूके “धातुत्व”का नाश यह नहीं है. धातूको कितनाही सूक्ष्म बनावे, इतनाही नहीं किंतु स्थूल रासायन व्यष्टिसे उसका करीब करीब नाश होवे, तब भी यह भस्म या अन्य योग अपना खास असर नहि छोड़ता यह सावित हो चुका है.\* धातुओंके स्थूल और निरिन्द्रिय परमाणु जितने छोटे बन सकते हैं उतने छोटे छोटे बनाये जाते हैं. उनपर सेन्ड्रिय द्रव्योंसे संस्कार किये जाते हैं. यह ही “धातु-मारणा” का विशेष है.

धातुओंको शुद्ध करके उनको यथा योग्य ‘मारक’ याने उनका सूक्ष्म चूर्ण बनानेवाली चीजोंसे मिलाकर, अद्विसंस्कारसे उनका भस्म बनाया जाता है. जैसे-बंगभस्म—यह बनानेमें प्रथम इमलीकी छाल और पीपल की छाल उनका एक सूक्ष्म चूर्ण बनाके चूलेपर तपी हुई रांगामें डाल डाल कर धोंटना पड़ता है और ऐसा ५६ घंटे तक जारी रहनेसे कुछ भस्मसा बन जाता है. फिर उसपर ‘पुट’ और ‘भावना’ देनेसे उसकी शुद्ध और खात्रीकी भस्म बन जाती है. “मारणा-संस्कारों” मे यह प्रथम संस्कार है और इसमेंभी बहुतसे सेन्ड्रिय द्रव्य इस्तमाल किये जाते हैं. नागभस्मके समय कभी कभी मनसिल इस्त-

\*धातुओंके हौमिओपैथिक योग बनाते हैं. उनमें १२० से जादा नंबरमें “रासायनी परीक्षासे धातु मिलतेही नहीं किंतु उनका असर रोगियोंपर अच्छी तरहसे दिखलाई देता है” यह तज्जोंका मत हौमिओपैथियमें लिखा हुआ है.

माल करते हैं यहांही एक अपवाद है. किंतु इसमेंभी 'पुट' सेन्द्रिय द्रव्योंसे दिये जाते हैं.

मारणा-द्रव्योंका विचार करनेसे यह मातृम होता है कि करीब करीब वह सब तीक्ष्णा और क्षारभूयिष्ट या क्षार बनानेवाले होते हैं. अब यह सबाल मनमें आता है कि उन द्रव्योंकी जगह उनके क्षार क्यों न लेवें? और वे क्षार भी आजकलके रासायनी क्रियासे बनाकर उनका इस्तमाल मारणा में क्यों न करे? मारणा क्रियामें जो जो द्रव्य इस्तमाल किया जाता है वह भी जल जाता है और उसकी खाक उस धातुमें मिल जाती है और उस खाकमें जो क्षार रहता है उसीसे तो मारणा होता है. आगमेंभी सब द्रव्योंका केवल क्षार रह सकता है. तो पहलेसे क्षार क्यों न इस्तमाल करें? ये सबाल पहले तो वाजूब दिखते हैं. किंतु आयुर्वेदीय रसतंत्र का उद्देश केवल रासायनिक योग बनानेका नहीं है. निरिन्द्रिय चीजोंपर संस्कार करके उनमें जितना सेन्द्रियत्व प्राप्त हो सकता है उतना प्राप्त करानेका प्रयत्न किया जाता है. इसलिए धातुओंका मारणाद्रव्योंसे धीरे धीरे संबंध आना जरूर है. और वनस्पतिओंका उनसे अच्छी तरहसे मिलाफ होना चाहिये. क्षारोंके इस्तमालसे स्थूल रासायनिक कल्प जरूर बनेगा किंतु सेन्द्रिय द्रव्योंके सेन्द्रिय द्रव्यभूयिष्ट (जीवन रासायनिक) कल्प बनेगा. इतना इन दोनोंमें फँक है. और इसी तरह संस्कारोंकी मीमांसा हो सकती है.

इस प्रथम संस्कारसे धातुका मारणा होता है और वह अच्छी तरहसे पीसा जाता है. तब भी इसमें धातुकी छोटी छोटी गोलियां मिल सकती हैं. उनको छाननी या कपडेसे छानना पड़ता है. 'मारणा' संस्कारके बाद 'भावना' या पुट का संस्कार किया जाता है. इसके माने यह है कि पीसी हुई धातुको वनस्पतिओंके स्वरसमें या गोमूत्रके समान सेन्द्रिय चीजोंमें भिगोना. वनस्पतिओंका स्वरस निकालनेमें उनमें दूसरी चीजें न डालना अच्छा होगा. वनस्पतीके रसमें या गोमूत्रमें भिगाकर उस धातुको अच्छी तरहसे सुखाना और फिर अग्निपुट देना चाहिये. दो खपरियामें धातुको रख कर उन खपरियांको अच्छी तरहसे जोड़ देते हैं. और यह "संपुट" अग्नीमें डाला जाता है. इस लिए इस क्रिया को 'पुट' कहते हैं. 'पुट' के कुछ प्रकार होते हैं. ज्यादा, मध्यम या कम अग्नि देनेसे 'पुट' के गजपुट, कुकुट-पुट, लघुपुट इत्यादि प्रकार होते हैं. 'पुट' में भस्म अच्छी तरहसे गरम हो जाती है और भुनाई जाती है. खुले बरतनमें या कढाईमें भुनाये तो 'संपुट' में भुने हुए भस्मके मार्फिक उसका रंग नहीं होगा-

‘और देर भी जादा लगेगी. जब संपुटमें सूखे स्वरसके साथ भस्म गरम होती है तब उसपर धीरे धीरे उस रसका असर पड़ जाता है. कढ़ा-ईमें यह नहि हो सकता. इसलिए अपने आचार्योंके ग्रंथोंमें लिखी हुई रीतसे संपुट बनाना योग्य है. इस तरह संपुटमें भस्मको अच्छी तरहसे भुनाकर उसको खरलमें डाल कर धोटना चाहिये, और फिर कपड़ेसे छानना चाहिये. फिर बनस्पतीके स्वरसमें भिगाकर और सुखाकर संपुटमें अग्निपुट देना चाहिये इसी तरह कुछ धातुओंको सौं सौं तक और कुछ धातुओंको हजार हजार तक पुट देना पड़ता है. “सहस्रपुटी अभ्रक” इसी तरह एक हजार पुट दे कर बनाया जाता है.

‘भावना’ और ‘पुट’ कहांतक देना पड़ता है? जहांतक भस्म निरुत्थ न बने, याने भस्मको तपायें तो भी फिर वह धातु न बने. कुछ धातुओंको केवल निश्चन्द्र बनाना यही एक परीक्षा है. निश्चन्द्रके माने यह है कि उसमें धातूकी चमक जराभी न रहे. निश्चन्द्र और निरुत्थ भस्मोंमें निरुत्थ भस्म श्रेष्ठ मानी जाती है. जिस भस्ममें आगसे फिर धातु बन जाती है वह भस्म निरुत्थ मानी जाती है. ‘भस्म निरुत्थ न होनेमें यह धोखा रहता है कि भस्मका जब अपने बदनमें पचन होगा तब उसके सेन्द्रिय योग बननेके बदले फिर वह मूल-धातू न बन जाय, भस्मसे शरीरमें फिर वही धातु बन जायेगी तो वह शरीर को जुकसान पहुंचायेगी, उसका ‘शल्य, रह जाएगा. भस्म निरुत्थ बनी है या नहीं उसकी परीक्षा यह है. प्रथम उसको सुहागेका लावा, आकका रस या पंचक (चितावर, राई, थूहर, आक और हींग) से मिलाकर आगमें खूब तपाना. भस्म निरुत्थ हो तो उसमेंसे फिर धातु न बनेगी और भस्म जैसी पहिले थी वैसीही शुद्ध और स्वच्छ रहेगी. निरुत्थ न हो तो फिर इसमें धातूके छोटे छोटे करा दिखलाई देंगे.

‘अमृतीकरण’ संस्कार कुछ भस्मोंपर किया जाता है. इससे वह भस्म अधिक फायदेमंद होती है और उसमें दोषभी कम रहते हैं.

हम लिख चुके हैं कि आयुर्वेदीय रसतंत्रका ध्येय केवल रासायनिक कल्प बनानेका नहीं है किंतु निरिन्द्रिय द्रव्योंके, सेन्द्रिय द्रव्योंसे उनपर संस्कार करके, सेन्द्रिय रासायनिक कल्प बनाना यह ही है. ऐसा क्यों है? इतने परिश्रम क्यों किये जाते हैं? आजकलके दिनोंमें इतने परिश्रम और संस्कार करना कितना बाजुब होगा और आधुनिक वैद्यकसे मुकाबला कैसा कर सकें. कुछ ग्रन्थकार तो इतना भी कहते हैं कि “प्राचीन शास्त्रकारोंको रसायनशास्त्रका ज्ञान बिलकुल नहीं था, इसलिये उन्होंने रसायन बनानेमें इतनी लम्बी चौड़ी किया.

लिखी है। इससे कुछ फायदा नहीं है” इन लोगोंके ये विचार सुनकर उन्हीं लोगोंके अङ्गानकी कल्पणा आती है।

आयुर्वेदीय गुराधर्मशास्त्र और रसतंत्र का मूल रहस्य “त्रिधातु-मीमांसा” है ( दोष, दूष्य, धातुमीमांसा ही है ) और इसी पर आयुर्वेदका इमला बंधा हुवा है। कुछ भी वैद्यक लेवैं तो उसमे शरीरका चलना और विगड़ना एक स्वतंत्र तरीकेसे वर्णन किया जाता है और इसी तरीके या मीमांसापर उस वैद्यकके दूसरे विभाग बंधाये जाते हैं। आयुर्वेदमेंभी शरीर और उसके व्यापारोंका संबंध एक अलग तरीकेसे बताया गया है। इस बात को सोचनेसे ऊपर लिखे हुवे सवालोंका जबाब मिल सकता है।

स्थूल शरीरावयव (शरीर), इन्द्रिय (ज्ञानका ग्रहण करना), सत्त्व (मन) और आत्मा इनके संयोगको आयुर्वेदमे “आयुष्य” कहते हैं। केवल शरीर या दूसरे और विभाग अलग अलगसे ‘आयुष्यकर’ नहीं हो सकते हैं यह आयुर्वेदका सिद्धांत है। उन सब विभागोंका संयोग “आयुष्य” कहा जाता है। “तत्र शरीरं नाम चेतनाधिष्ठानभूतं पञ्चमहाभूतसमुदायात्मकं समयोगवाहि” ( चरक शारीर ) इस तरह शरीरकी व्याख्या की गयी है। चेतना जिसके आधारसे रहती है और जिसमें पञ्चमहाभूतोंका संयोग रहता है और इस संयोगको जो कायम रखता है वहीं शरीर है। ऊपर लिखी हुई व्याख्याका यहीं सार है। “चेतनाधातुरप्येकः स्मृतः पुरुषसंज्ञकः । ” “चेतनावान्परश्चात्मा । ” इत्यादि चेतनावान् आत्माके बाबत बहुत कुछ उल्लेख मिल सकते हैं। चेतना ( Self Consciousness स्वयंस्फूर्त चेतना ) यह केवल आत्माका गुरा है। इसी बजह जिसमे यह आत्मा रहता है उस शरीरको ‘सचेतन शरीर’ कहते हैं। सचेतन शरीर और निरिन्द्रिय द्रव्योंसे भरा हुवा सब संसार इनमे ‘चेतनाधिष्ठानभूतत्व’ यह ही एक विशेष फर्क है। निरिन्द्रिय स्थृणि अचेतन और इसी कारणा जड़, स्थूल, पञ्चमहाभूत-समुदायात्मक होती है। सचेतन शरीर में ऐसी पञ्चमहाभूतसमुदायात्मक याने अचेतन चीजें भी रहती हैं और चेतनाभी रहती है। इसी बजह सचेतन शरीरके सब व्यापार बाह्य अचेतन संसारके व्यापारोंसे मिल प्रकारके होते हैं।

शरीरमे जो अचेतन चीजें मिलती हैं वे बाह्य अचेतन संसारमें मिल सकती हैं। पञ्चमहाभूत के माने यह है कि द्रव्योंको विभागनेसे जो पञ्चमहातत्व मिलते हैं, जिनके आगे उन द्रव्योंके और विभाग नहीं -

हो सकते. इन पंचमहात्म्योंका विचार अपने शास्त्रमें एक विशेष पद्धतीसे किया गया है. संसारमें जो कुछ चीजें मिलती हैं उनकी अवस्थाओंका विचार करके यह पद्धति पंचमहात्म्योंका स्वरूप विवेचन करती है. इसी कारण पंचमहाभूत या पंचमहात्म्य संसारकी अचेतन चीजोंके आखीरी विभाग होते हैं. और पंचमहाभूतोंके अलग अलग संयोगोंसे भिन्नभिन्न द्रव्योंकी उत्पत्ति होती है. इसी को “पञ्चीकरण” कहते हैं. द्रव्योंके जो गुण और कर्म होते हैं वे भी इसी “पञ्चीकरण” में जो महाभूतोंका संयोग होगा उस संयोगके सहारे रहते हैं. जैसे-मुनका, मिश्री और चितावर-इनमेंसे मुनका और मिश्री मधुर और चितावर कटु याने तीखा होता है, इस भेद की वजह क्या है? तीनों चीजें पंचमहाभूतोंसे वनी हुई हो, तो इनमें ऐसा फर्क क्यों है? इसका जबाब यह ही है कि द्रव्योंके भीतर पंचमहाभूतोंके परमाणुओंकी अलग अलग किसीकी रचना होती है और इसी रचनासे उन द्रव्योंमें उनके विशिष्ट कर्म और गुण पैदा होते हैं, और इसी पंचमहाभूतोंकी रचनाको “पञ्चीकरण” कहते हैं. यह उपपत्ति आजकलकी इलेक्ट्रॉन्स और प्रोटॉन्सके उपपत्तीसे कुछ मिलती जुलती है. स्थूल या अचेतन द्रव्योंके उपपत्तीकी यह ही उपपत्ति है. अपने शरीरमें भी सब स्थूलद्रव्योंकी उत्पत्ति ‘पञ्चीकरण’ से है और इसी लिये उनको शास्त्रकार पञ्चमहाभूतात्मक (Physico-chemical Basis of the body) कहते हैं. शरीरके हड्डियोंमें चूना है, खून में लोहा है, स्नायु और वातवाहिनिओंमें मँशेशिया है. इसी तरह शरीरके सब विभागोंमें क्या क्या निरिन्द्रिय चीज है यह कह सकते हैं.

परंतु शरीर केवल इन स्थूलद्रव्योंसे या इनके मूलभूत पंचमहाभूतोंसे नहीं जी सकता. केवल स्थूल द्रव्योंके कर्म और गुणोंकी मीमांसा करनेसे शरीरके विविध व्यापार, स्वयंप्रेरकत्व, मन या दुर्घटके व्यापार इनकी मीमांसा नहीं हो सकती. इसके माने यह है कि इस पञ्चीकरण-मीमांसासे शरीरके कुछ थोड़ेसे व्यापारोंकी तलाश लग सकती है. सब व्यापारोंकी नहीं।<sup>१</sup> शरीर पंचमहाभूतात्मक है और चेतनाधिष्ठानभूत भी है और विकास या उत्काञ्चीके कारण इसमें व्यापारभिन्नता और इसके स्थूल द्रव्योंमें रूपभिन्नता पायी जाती है. जीव या आत्मा के

१ इसीका अंगैर्जीमें अनुवाद यह होगा —

Only Physico-Chemical Laws will not be able to explain the integral phenomena of life. There are higher and special laws of life-phenomena.

आधिष्ठानसे शरीरके द्रव्योंमें और उनके गुणाधर्ममें फर्क हो गया है- जैसे-शरीरमें जो पचनक्रिया होती है और स्थूल द्रव्योंमेंसे उनके भूतां-शौंका विभाग होता है यहही कार्य बाहरकी रासायनी क्रियासे करें तो इसको बहुतहि आधिक ताप या उषणाता की जरूरत होगी। फिर यहही कार्य शरीरमें विलकुल कम तापसे हो सकता है।

जीव या आत्माके अधिष्ठानसे शरीरके भिन्न भिन्न व्यापार और द्रव्योंमें जो फर्क हो जाता है उसे आयुर्वेदमें “धातु” या “त्रिधातु” मीमांसा यह नाम रखा है। इसी वजह ‘त्रिधातु’ के माने वह द्रव्य (तत्त्व) है कि जिसको “पंचीकरणसे शरीरमें पञ्चमहाभूतोंकी द्रव्योंमें उत्कान्ति या एक विकार उत्पन्न होकर जो चेतना तैरेयार होती है वह, या चेतनाधिष्ठित (जीवाधिष्ठित) सचेतन द्रव्य (तत्त्व) ” कह सकते हैं। शरीरका धारणा और पोषण करते हैं, इसी लिये उनको “धातु” कहते हैं (धारणाद्वातवः।) “धातु” सचेतन और जीवाधिष्ठित द्रव्य होते हैं। और इसीसे यह भी सावित होता है कि त्रिधातुओंका स्वरूप, गुण और कर्म यह सब स्थूल महाभूतात्मक द्रव्यों (Physical chemical Substances) से भिन्न और स्वतंत्र हैं। त्रिधातुओंमें जब विषमता पैदा होती है तब उनको ‘दोष,’ कहते हैं (दूषणादोषाः।) और ये दोष जब अधिक बढ़ जायेंगे तो उनको, या धातु बनानेमें जो दूसरे नाकाम द्रव्य पैदा होते हैं उनको ‘मल’ कहते हैं। (मलिनी-करणान्मलाः।) वैद्यक ग्रंथोंमें ‘दोष’ ‘धातु’ और ‘मल’ इन शब्दोंका एकही अर्थसे प्रचार किया हुआ नजर आता है। किंतु इनका वर्णन विलकुल अलग अलग किया हुआ है। ‘धातु’ इस शब्दके माने वात, पित्त और कफ ये ही “त्रिधातु” है। रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र इनको भी धातु कहते हैं। किंतु “त्रिधातु-ओंको” प्रसादधातु भी कहते हैं। प्रसादधातु दूसरे सामान्य धातुओंसे अलग है यह कहनेकी भी जरूरत नहीं।

“दोष, धातु, मल मूलं हि शरीरम्।” इस सूत्रमें जो शरीरकी मीमांसा की गयी है, उसीका विवेचन अवश्यक हम कर चुके हैं।

एवं शरीरके चार विभाग होते हैं।

१. चेतनावान् आत्मा।

२. मानस विभाग।

३. त्रिधातु।

४. (अ) स्थूल धातु।

### ( आ ) पंचीकृत पंचमहाभूतसमुदायात्मक शरीर.

इस तरह शरीरके मूलद्रव्य शरीरके संचालक और व्यापार-जनक होनेसे उनमें जीव या चेतनाका अधिष्ठान रहता है. और यह चेतनाधिष्ठान प्राप्त होनेसे उनमें जो विषमता ( दोष ) पायी जाती है वह भी इसी स्वरूपकी होगी यह स्पष्ट है. “ रोगस्तु दोष वैषम्यम् ” या “ विकारो धातुवैषम्यम् ” इन दोनों वचनोंमें आयुर्वेदका रोग शब्दका अर्थ प्रतीत होता है. रोगके लक्षण बहुत होंगे किंतु इन सब लक्षणोंका मूल एकही शारीरिक विकृति याने धातुवैषम्य होता है. इसी बजह रोगकी व्याख्या ऐसी की गई है.

चेतनाधिष्ठित याने सजीव धातुओंके आधारसे शरीरके अंदर सब हालचाल चली रहती है और उनही धातुओंकी विकृति ( वैषम्य ) होकर दोषोत्पत्ति होती है और उनही दोषोंसे सर्व शरीरमें विकार या रोग पैदा होते हैं. शरीरमें जो दोषवैषम्य होता है वह वैषम्य शुरू होनेके लिये कुछ कारण होते हैं, यह बात अलग है. रोगजंतु या अरु यहभी उन कारणोंमेंसे एक प्रमुख कारण हो सकता है. इन कारणोंमें प्रथम धातुवैषम्य या दोष पैदा होते हैं और फिर रोगके लक्षण देखनेमें आते हैं. यह दोषभी प्रथम धातुओंके स्वरूपके रहते हैं याने यह दोषका द्रव्यभी सेन्द्रिय होता है. उनमेंसे उनका वैषम्य ( विषमता ) निकाला जाय तो ये धातुरूप बन जायेंगे और धातुसाम्य प्रस्थापित होगा, नीरोगता होगी. यह नीरोगता प्राप्त होनेके लिये जो कुछ इलाज किये जाय वे सब इसी प्रकारके होने चाहिये जिनसे सेन्द्रिय दोषोंमेंसे वैषम्य निकल जाय.

संसारमें यह एक महत्वका सिद्धान्त है कि समानगुराकर्मयुक्त द्रव्योंसे समानगुराकर्मयुक्त द्रव्योंकी वृद्धि होती है.\* समान जातीय द्रव्य समानगुरायुक्त द्रव्योंसे बढ़ जाते हैं, इतनाही नहीं किंतु समान गुरायुक्त द्रव्य एक दूसरेके तरफ खींचा जाता है. उनमें एक किसका आकर्पण रहता है. बाह्य लोह शरीरमें जाय तो वह अपने आप शरीरके लोहसे मिश्र होता है या उस तरफ खींचा जाता है. चूना या चूनेके दूसरे क्षार खानेसे वे हड्डियोंके भीतर

\*सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम् ।

न्वासहेतुविशेषश्व प्रवृत्तिरुभयस्य तु ।

सामान्यलेकत्वकरं विशेषस्तु पृथक्त्वकृत् ।

तृल्यार्थता हि सामान्यं विशेषस्तु विपर्यय ॥ चरक स्त्र. अ. १

खींचे जाते हैं. तीखी चीज़ों पित्तका वर्धन करती है. गुरुद्रव्य या मधुर द्रव्य शरीरका बृहगा करते हैं. उत्तेजक दवाइओंका असर वातवाहिनी, वातवह केन्द्र और स्नायु इनपर होता है. याने इन तीनों स्थांपर वे दवाइयां खींची जाती हैं. इन उदाहरणोंसे यह ही प्रतीत होता है कि समान द्रव्य, समान गुण और समान कर्म ये सब शरीरके समानद्रव्य गुराकर्मोंसे आकर्पित होने हैं.

विशेष याने विषम गुराके द्रव्योंसे उन २ गुराओंका न्हास होता है. इन दोनों तत्वोंका शाखीय रोगचिकित्सामे बहुत काम पड़ता है. किंतु यहां केवल इतनाही कह सकते हैं कि शरीरके समान द्रव्योंसे वाहरके समान द्रव्य खींचे जाते हैं. शरीर सेन्द्रिय होनेसे वाहरके भी सेन्द्रिय पदार्थ सुभीतेसे खींचे और आत्मसात् किये जाते हैं. निरिन्द्रिय द्रव्य इतने सुभीतासे न तो खींचे जा सकते, न आत्मसात् किये जाते. यह तो सच है कि सेन्द्रिय द्रव्योंमे जो कुछ पञ्चमहाभूतात्मक विभाग होगा उसका निरिन्द्रिय द्रव्योंकी सहायतासे और संशोषणासे ज़रूर फायदा होगा. किंतु कुल सेन्द्रिय द्रव्यपर इतना असर निरिन्द्रिय द्रव्यसे नहीं हो सकता. इसी बजह केवल स्थूल ( निरिन्द्रिय ) रासायनिक द्रव्योंसे ( दवाइओंसे ) अपने शरीरपर इतना असर नहीं हो सकता. अपने शरीरके सेन्द्रिय घटकोंमे जो कुछ निरिन्द्रिय चीज़ें ( लोह, चूना, मैग्नेशिया, गंधक, फॉस्फरस इत्यादि ) पायी जाती हैं, वे भी वाह्य निरिन्द्रिय चीज़ोंसे स्वतंत्र हैं इतना सिद्ध हुआ है. रासायनिक क्रियासे बनाए हुए द्रव्योंसे सेन्द्रिय द्रव्योंमे जो द्रव्य अधिक पाये जाते हैं वे अधिक कार्यकारी होते हैं. जैसा:—सोडा सॉलिसिलास जो सेन्द्रिय द्रव्योंसे बनता है वह अधिक जल्द शरीरपर असर करता है और उसके सेवनका प्रमारण भी कम होता है. यहां सोडा सॉलिसिलास रासायनिक प्रयोगोंसे लैंघोरेटरीमें बनाया जाय तो उसका इतना असर नहीं हो सकता. इसके माने यह है कि निरिन्द्रिय द्रव्योंपर भी एक बार सेन्द्रियत्वका संस्कार किया जाय तो उनमें भी उस सेन्द्रिय द्रव्यसे ऐसे कुछ गुरापाये जाते हैं, जिन गुराओंके कारण वह सेन्द्रिय द्रव्योंके साथ जल्द मिल जा सकता है.

यहां नियम भस्मोंके बावत सत्य है. भस्म तथ्यार करनेके लिये प्रथम तो निरिन्द्रिय धातु ली जाती है किंतु उसका मारण करनेसे उनके करा बिलकुल छोटे और अलग अलग किये जाते हैं और उसी सूक्ष्म करणोंपर बनस्पति जैसे सेन्द्रिय पदार्थोंका संस्कार किया जाता है, इस हेतूसे कि वे सेन्द्रिय सूक्ष्म अंश धातुओंके सूक्ष्म करणोंसे

मिल जाएं. इस अंशसंस्कारसे धातुओंके मूल गुण कायम रखते जाते हैं और उनमें कुछ ना कुछ सेन्द्रियत्व पैदा होता है.

इस प्रकार सेन्द्रियत्व पैदा होनेपर भस्मोंका ( और आयुर्वेदीय रसक्रियासे बनायी हुई सिद्धौषधिओंका ) शरीरके जो पंचमहाभूत-समुदायात्मक शरीरांश होते हैं उनपर अच्छी तरह असर होता है. इसी तरह शरीरके दूसरे अवयव-त्रिधातु और मन ( मानस शरीर ) इनपरभी असर होता है. इन भस्मोंको सेन्द्रियत्व प्राप्त होनेसे और उनकी सूक्ष्मतासे वे सर्व शरीरके अंदर विगर अटके हुए घूम सकते हैं और शरीरके सूक्ष्म सेन्द्रिय करणोंमें ( परमाणुओंमें ) खीचे जाते हैं. अभ्रकभस्मसे उन्मादरोगके कुछ प्रकारमें फायदा होता है वहभी इसी कारणसे है. अभ्रकका भस्म न लें और उसकी जगहमें केवल कच्चा अभ्रक लें तो इससे कुछभी फायदा न होगा, इतनाही नहीं बल्कि कुछ जुकसान उठाना पड़ेगा. प्रवालभस्मका कार्य मृद्गस्थिविकारमें ( Rickets ) इतना फलदायी होता है के उसे देखनेसे आश्र्वय-पैदा होता है. चूनेका दूसरा कुछभी निरिन्द्रिय कल्प प्रवालके समान कार्य नहीं कर सकता. लोहभस्ममेंभी यह बात देखनेमें आती है. लोहभस्म औषधीमें विलकुल कमप्रमाणासे दे सकते हैं. इतने छोटे प्रमाणामेंभी “ धातुसाम्यप्रवृत्ति ” उत्पन्न करनेकी शक्ति लोह-भस्ममें है. निरिन्द्रिय लोह लोहभस्मके समान कार्य नहीं कर सकता. आयुर्वेदीय चिकित्साका यह ही एक उद्देश है कि त्रिधातु और मानस-शरीर इन सूक्ष्म अवयवों तक धातु और उपधातुओंका कार्य पहुंचाय. इसी उद्देशसे स्थूल और निरिन्द्रिय धातुओंपर सेन्द्रिय द्रव्योंका संस्कार बारबार करनेकी कोशिश की जाती है. वे सब धातु या उपधातु विलकुल सूक्ष्म बनाये जाते हैं और जहां तक सके वहां तक उनमें सेन्द्रियत्व पैदा करके कल्प बनाये जाते हैं.

धातुओंकी भस्म बनानेके लिये उनपर जो कुछ संस्कार किये जाते हैं उन संस्कारोंसे उनमें गुणावृद्धि और वीर्यवृद्धि पायी जाती है और उनमेसे दोष बाहर निकाले जाते हैं.\* जैसे-सोनामाखीमें उसका गंदा स्वाद, और उलटी ( कै ) हो जानेका और सिरमें चक्कर उत्पन्न करनेका दोष है. वे सब दोष सोनामाखीके सशास्त्र बने हुए भस्ममें नहीं पाये जाते हैं. संस्कारमें वे निकाले जाते हैं. प्रत्येक द्रव्यमें कुछ गुण और कुछ दोष होते हैं. इनमेंसे जो विशेष गुण होंगे उन्हींका फायदा उठाना चाहिये और जिनकी जरूरत नहीं है उनको निकालना चाहिये-

\* संस्कारोहि युणान्तराधानमुच्यते । चाक वि. अ. १-२७

ओषधियोंमें जो गुरा शारीर धातुओंका परिपोष करते हैं और उनका बल बढ़ाते हैं वे गुरा कायम रखना चाहिये और जिन गुराओंसे शारीरिक दोषोंमें अनिष्ट वृद्धि हो जाय वे कुछ संस्कारोंसे निकालना चाहिये। ओषधियोंके जो कुछ गुरा होंगे उनमें कुछ फायदेमंद होंगे और कुछ नुकसान करेंगे। जिन गुराओंसे शारीरका रोग बढ़ जायेगा वे दोष कहलाये जाते हैं। क्योंकि उपकारक गुराधर्मको गुरा और अपकारक गुराधर्मको दोष कहना चाहिये। भस्म जब दोषरहित होंगे तब सशास्त्र सिद्ध माने जायेंगे। सच कहे तो हरएक द्रव्यमें जो कुछ कार्यशक्ति रहती वह सब उन द्रव्योंके विशेष गुरासेही होती है। वह कार्य अच्छा हो या बुरा हो, वह उस द्रव्यका विशेष गुरा है। किंतु जिस परिस्थितिमें या रोगकी अवस्थामें, उसकी जरूरत होगी, उससे फायदा होगा वह गुरा और जिसकी जरूरत न होगी, जिससे नुकसान होगा, उसको हम दोष समझते हैं। जैसे-तात्रः-इसमें वमन (कै) करनेकी शक्ति है। इस शक्तीकी जहां जरूरत होगी वहां यह वामक गुरा समझा जाएगा। किंतु जहां इस शक्तीकी जरूरत नहीं है बल्कि इससे नुकसान है वहां यह दोष समझके उसे निकालना पड़ेगा। इसी लिये तात्रभस्म तथ्यार करनेके संस्कारोंमें वह वामकत्व निकालनेके संस्कार है। और जहांतक यह वामकत्व इसमें बना रहा है वहांतक वह शुद्ध और पूर्ण नहीं मानी जाएगी। निष्कलंक तात्रभस्म बननी चाहिये। इस तरह जिस अवस्थामें वह भस्म देना है उस अवस्थाका, और दोषदूष्यादिओंका पूर्ण विचार करके संस्कार ठहराये जाते हैं और भस्म बनायी जाती है। जिस तरहके संस्कार करके वह भस्म बनायी जाय उसी तरहके गुरा इसमें आ जायेंगे। इसी लिये ओषधीयोजना करनेके समय वह भस्म कौनसे संस्कारसे बनायी गयी है इसका ख्याल रखना चाहिये। जैसे प्रवालभस्म, मामूली और अग्निपुटी। मामूली प्रवाल, गुलाबपानी, श्रीगुंबार आदि शीतवीर्य दवाइयोंके संस्कारसे बनाई जाती है। और उसका बहुत सूक्ष्म चूर्ण बनाते हैं। इसलिये शारीरमें जब तीक्षणात्वादि गुरा बढ़ जायें तब यह प्रवाल देनी चाहिये। तीक्षणात्व यह पित्तका गुरा है। प्रवाल पित्तघ्न होनेपरभी तीक्षणात्वादि लक्षणोंमें अग्निपुटी प्रवाल-भस्मका इतना उपयोग नहीं होगा। क्योंकि वह अग्निसंस्कारसे बनी हुई है, और इसी बजह इससे तीक्षणात्वादि लक्षण बढ़ जाएंगे, कम नहीं होंगे। पित्तके जो दूसरे लक्षण होते हैं, जैसे सरत्व, द्रवत्व और विलत्व, उनमें अग्निपुटी प्रवालसे अधिक फायदा होगा। बहुत जलन के साथ वमन हो तो उसमें मामूली प्रवालभस्मसे फायदा होगा।

लेकिन उलटीमे बदबू, खट्टापन और पानीके माफिक पदार्थ आता हो तो इसमे अग्निपुटी प्रवालसे फायदा होगा. ऐसा अग्निपुटी और मामूली प्रवालभस्ममे फर्क है.

भस्म जिन धातु और उपधातुओंकी बनाई जाती है वे सब अपने शरीरके चित्परमाणुओंमे पाये जाते हैं. शरीरके छोटेसे छोटे परमाणु-ओंका भी ( चित्परमाणुओंका ) पृथक्करण आजकल किया हुआ है. उनमें भी निरिन्द्रिय द्रव्य पाये जाते हैं, किंतु बाहरके निरिन्द्रिय द्रव्यके परमाणुओंका शरीरके अंदर खींचा जाना दुर्घट है. इसीलिये उनके सूक्ष्म-अत्यंत सूक्ष्म-विभाग बनानेकी कोशिश की जाती है. भस्मोंपर किये हुवे संस्कारोंसे ( भावना और पुट ) उनके परमाणु सूक्ष्म किये जाते हैं और इनमे “ गुणान्तराधान ” याने अन्य गुणोंका प्रस्थापन किया जाता है. नये गुण उनमे पाये जाते हैं. जैसे-स्थूलत्वकी जगह सूक्ष्मत्व, गुरुत्वकी जगह लघुत्व, संहतत्वकी जगह विरलत्व इत्यादि. कुछ भी द्रव्य लो उसका मूल याने प्रमुख गुण वह द्रव्य न छोड़ेगा. “ स्वभावो निष्पत्तिक्रियः ” याने द्रव्यके मूल स्वभावमे हम कुछ भी फर्क नहीं कर सकते हैं. जैसे-घृत या तैल. इन दोनोंपर कुछ भी संस्कार करो, वे अपने स्नेहन गुणोंको कभी नहीं छोड़ेगे. ताप्र, अपना तीक्ष्णत्व कभी नहीं छोड़ेगा. किंतु इस प्रधान गुणके साथ जो कुछ अन्य गुण होंगे उनमे संस्कारोंसे कम जादा कर सकते हैं. अभ्रकका प्रधान गुण धातुपरिपोषणाक्रममें सहायता करनेका है और इसकी भस्म भी सब धातुओंका परिपोषण करती है. इस प्रकारसे भस्ममें गुण बढ़ाये जाते हैं और दोष निकाले जाते हैं.

“ गुण ” के माने द्रव्योंकी भिन्न भिन्न किया. जैसे-बंग ( रांग ) उषा तीक्ष्णा और गुरु होता है. इसके माने यह है कि पचनके लिये वह गुरु या भारी है. और इसका वीर्य याने कार्यकारी शक्ति उषा ( दीपन करनेवाली ) और तीक्ष्णा ( स्फोटक ) है. ये बंगके तीन गुण भिन्न भिन्न अवयवोंमे, त्रिधातुओंमे और मनोदेशमें भी प्रत्ययमें आते हैं. भस्मका कार्य इतना सूक्ष्म होने के लिए बंगमे सूक्ष्मत्व यह गुण बढ़ाना पड़ता है. एवं, द्रव्योंका भिन्न भिन्न अवयवोंमे जो विशेष कार्य होता है उसीका परिणाम ‘गुण’ है. इसीका ख्याल रखके भस्म बनानेके बहुत धातु उपधातुओंके दोष निकाले जाते हैं और उनके गुण बढ़ाये जाते हैं. अंतिम हेतु यहही है कि भस्मका ( सूक्ष्मभूत द्रव्यका ) कार्य सूक्ष्म पेशी और परमाणु ( जीवाधिष्ठित-सजीव ) इनपर होना चाहिये. इसी वजह अभ्रकभस्म इत्यादिक भस्मोंका कार्य कुछ अजीवसा

आश्र्यकारक देखनेमें आता है. आयुर्वेदशास्त्रमें इसे 'गुरा संस्कार' की उपपत्ति बहुत कुशलतासे प्राप्त की गई है.

दूसरे द्रव्योंके समान भस्मोंकाभी कार्य, रस, वीर्य और प्रभावके द्वारा प्रतीत होता है. 'गुरापरिपोष' अच्छी तरहका होनेसे भस्म किये हुये 'द्रव्य'का गुरा कई दिन बना रहता है. और 'धातुसाम्य-प्रवृत्ति भी'\* अधिक देर तक कायम रहती है क्योंकि उस भस्मकी व्याप्ति इतनी बढ़ जाती है.

भस्ममें, और जिस द्रव्यसे वह भस्म बनाई है उसमे प्रथम कार्यकारी एक रस चतलाया जाता है. जैसे-सुवर्ण-मधुर रसात्मक, रौप्य-चम्लरसात्मक और लोह-कपाय रसात्मक. इसके माने क्या है? शक्तरको मधुर रसात्मक कहना ठीक है. क्योंकि शक्तर जबानपर रखने-सेही त्वरित इसका मीठापन व्यक्त होता है. इसी तरह सुवर्णका मधुर रस कैसा व्यक्त होगा? इसका स्पष्ट अर्थ न समझनेसे, इस सर्वविचारको 'झट' कहनेतक कई लेखकोंकी हड्ड होती है.

'रसनार्थो रसः या रसनाग्राह्यो रसः ।'

अच्छान्ति इन्द्रियार्था अत (ज्ञानार्थ) इति अर्थः ॥

रसनासे (जबानसे) याने रसनेन्द्रियसे हमको जिसका ज्ञान होता है वह "रस". इस व्याख्यामें रसनाका उच्चार केवल शाखाचंद्रव्यायसे है. रस जबानसे जल्द मालूम होता है. इसलिये उसकी व्याख्या 'रसना ग्राह्य' याने 'जो जबानसे ज्ञात होता है,' ऐसी की गई है. किंतु जहां जहां इन्द्रियज्ञान हो सकता है वहां रसका ज्ञान भी होता है. जैसे काली मिर्च जबानसे तीखी लगती है और शक्तर मीठी लगती है, फिर वहही तीखापन या मिठास पेट, आंख, कान इत्यादि अवयवोंपर कार्य करता है. आंख सुर्ख हो गये हो तो मिश्रिसे उसका प्रसादन हो सकता है, और पेटमे जलन हो तो भी मिश्रीके मिठाससे वह कम हो जाएगी. पाचकपित्त कम हो तो मिर्च इसका खास इलाज है. यह कार्य उन द्रव्योंमें जो पंचमहासूतात्मक घटक रहते हैं उनके विद्यो-जनसे होता है.

---

\* विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रलतिरुच्यते । यह प्रलति-विलति, स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य या रोग-आरोग की व्याख्या है. रोग होने के बक्त धातुवैषम्य (विधातु-वैषम्य) पैदा हो जाता है इसको कम करके "विधातुसाम्य," "धातुसाम्यप्रवृत्ति" उत्पन्न होना चाहिये और कायम रहना चाहिये वह कायम रहनेसेही शरीर स्वस्थ याने नीरोग रहता है. आयुर्वेदशास्त्रका ध्येय भी यहही है. "वातुसाम्य क्रिया चोक्ता तंत्रस्थास्य प्रयोजनम् ।"

रसनाथोँ रसस्तस्य द्रव्यमापःक्षितिस्तथा ।

निर्वृत्तौ च विशेषे च प्रत्ययाःखादयस्त्वयः ॥ च. सू. अ. १-६३

जबानपर प्रथम असर होनेके लिये द्रव्यमें आप और क्षिति इन महाभूतोंकी आवश्यकता होती है. किंतु मधुरादि रस ज्ञात होनेके लिये सब महाभूतोंकी आवश्यकता है. रसके 'निवृत्ति' के लिये याने उत्पत्तिके लिये द्रव्य ( समवायी कारण ) पृथ्वी और आप होते हैं और रसविशेषके उत्पत्तिके लिये ख आदि तीन महाभूत और पृथ्वी और आप यह निमित्तकारण ( प्रत्यय ) होते हैं. इसके माने यह है कि पांचभौतिक द्रव्योंका वियोजन होनेके समय उस वियोजनका सबसे पहले जो असर होता है उसका ज्ञान अपने शरीरावयवोंको 'रस' के कारण होता है. वह शरीरावयव चाहे रसना हो या गला, आंख या पेट कुछ भी हो. रसो निपाते द्रव्याणाम् । ( च. सू. अ. २६ ). द्रव्यका रसनासे या शरीरके दूसरे अवयवोंसे संबंध होनेसे उसका, स्निग्ध, शीत, उष्णा इत्यादि वीर्यगुरा छोड़कर जो तात्काल उस स्थानपर और मनपर असर होता है वह 'रस' के कार्यसेही है. काली मिर्चका स्पर्श होनेसेही सबसे पहले उसके तीखापनका असर शरीरके अवयवोंपर होता है, मिश्रीके मधुररसका असर प्रथम होता है. इस विवेचनका सार यह है कि शरीरके अवयवोंपर कौनसे भी द्रव्यका प्रथम जो असर होता है वह उस द्रव्यके रससेही होता है. और वह रस उस द्रव्यमें जो पंचमहाभूतात्मक परमाणु रहते हैं उनहीसे ज्ञात होता है. और ये पंचमहाभूतात्मक परमाणु सोना, चांदी, लोहा इत्यादि धातुओंमें भी रहते हैं. शरीरके अवयवोंपर उनका जो प्रथम असर होगा वह, या तो उनके वियोजनसे हो या संयोगसे हो, उन धातुओंका 'रस' माना जायेगा. यह रस केवल रसना ( जबान ) सेही ज्ञात होगा ऐसा नहीं. वह पेटसे और दूसरे इंद्रियोंसेभी ज्ञात हो सकता है. इसी बजह जैसे मधुर रससे प्रीणान, आल्हादन इत्यादि परिणाम होता है, वैसा दूसरे द्रव्यसे भी प्रीणान और आल्हादन पाया जाय तो चाहे वह जबानको मीठा लगे या न लगे उसका रस मधुर ही माना जायेगा. आमला और दूसरे कषाय द्रव्योंका शरीरके दूसरे अवयवोंपर जो असर होगा वहही असर करनेवाली द्रवाइयोंको कषाय रसप्रधान कहना चाहिये. इसी प्रकारसे सोना, चांदी इत्यादि धातु उपधातुओंके रसकी निश्चिति की गई है और यह विचार तर्क पञ्चतीसे विरुद्ध नहीं है. इससे 'रस' का अर्थ यह होता है कि शरीरके अवयवोंपर उसी स्थानमें ( वीर्यादि गुरा छोड़कर ) दूसरे गुराओंसे

होनेवाला तात्कालिक परिणाम उन द्रव्योंके संयोगसे -  
या वियोजनसे उन अवयवोंपर स्थानिन और तात्कालिक ( Local  
action or Superficial action ) होता है। रसके इस अर्थको ध्यानमें  
रखे तो रसका कार्य समझनेमें कुछ भूल न होगी। केवल सोना या  
दूसरे धातू धातुरूपसे तो उनका इतना असर नहीं होता है। इसलिये  
उनके भस्म बनाने पड़ते हैं। भस्म तैयार करनेमें यह भी एक उद्देश  
रहता है।

शरीरके अवयवोंपर द्रव्यका जो असर होता है वह उस द्रव्यका  
पचन होनेसेही होता है। हमारे ख्यात्से 'पचन' शब्दका अर्थ आयुर्वेद-  
शास्त्रमें बहुतही व्यापक किया गया है। 'पचन' के माने एक द्रव्यसे दूसरे  
द्रव्यका बनाना। इसीको "रूपान्तर या पृथक्करणसे तैयार होनेवाले दूसरे  
पदार्थ" कह सकते हैं। काली मिर्च जब जवानपर रखवी जाय तो जवान  
पर जो आर्द्रता या पानी होता है उससे वह प्रथम मिल जाएगी और  
इस मीलनके बाद उसका वियोजन होगा और इसके बाद इसका  
तीखापन जवानमें जो ज्ञानतंत्र होते हैं उनसे ज्ञात होगा। यह सब कार्य  
रससेही होता है। यहही नियम अंदरके अवयवोंके वावत सत्य है। रसका  
कार्य ज्ञात होनेको स्थानिक पचन या रूपान्तरकी जरूरत रहती है। और  
इस रूपान्तरसेभी उसका कार्य पूरा नहीं होता है। इन रूपान्तरित  
द्रव्योंपरभी आंतोंके अंदरके रसोंका कार्य होता है। उनकाभी पचन होता  
है। इस दूसरे पचन को 'विपाक' कहते हैं। विपाकका कार्य रसके कार्यसेभी  
गहरा और अंदरके इन्द्रियोंपर अधिक होता है। द्रव्यका जब विपाक  
हो जाता है तब वह द्रव्य रस और रक्तमें मिल जाता है और रसमें या  
रक्तमें जो कुछ दूसरे द्रव्य रहते हैं उन परभी उसका असर होता है।  
और रक्तके साथ शरीरमें धूमनेसे इसका असर दूसरे स्थूल धातुओंपर  
भी हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि 'विपाक' के माने  
"पचनके बाद द्रव्यके क्रियाका और गुराओंका शरीरपर परिणाम।"

रस और विपाक का शरीरपर कार्य स्थूल रासायनिक तरहसेही  
( Physico-chemical ) होता है। भस्मकाभी जो रसका और विपा-  
कका कार्य होता है वहभी इसी स्थूल रासायनिक तरहसे होता है।  
लोहभस्मके कषायरसका कार्य स्तंभक और सुवर्णाभस्मके मधुर रस-  
और मधुर विपाकका कार्य प्रसादन और हृद्य प्रतीत होता है, वह भी  
शरीरके पांचभौतिक अवयवोंपर स्थूल रासायनिक परिणाम होनेसे है।

जिससे द्रव्य का विशिष्ट कार्य हो जाता है उसको उस द्रव्यका  
‘वीर्य’ कहते हैं। “येन या क्रियते क्रिया । तद्वीर्यम् ॥” अथवा “येन-

- श्रियते तद्वीर्यम् । वीर्यं शक्तिः द्रव्यस्य गुरास्य वा ॥ ” जिस कार्यसे द्रव्यमें विशिष्ट गुण पाये जाते हैं वह कार्य करनेकी शक्ति ‘वीर्य’ कहलाई जाती है. और इसी को “ द्रव्यान्तर्गत कार्यकारित्व ” या “ द्रव्यान्तर्गता कार्यकारिणी शक्तिः ” कह सकते हैं. जहांतक द्रव्यमें यह शक्ति या वीर्य रहता है तहांतक उस द्रव्यके गुण पाये जाते हैं. औपधीद्रव्य या दूसरा कुछ भी द्रव्य हीनवीर्य होनेसे उसका विशिष्ट कार्य नहीं हो सकता. भस्म तथ्यार करनेमें यहभी एक उद्देश रहता है कि उन धातु उपधातुओंका वीर्य बढ़ जाय, वह वीर्य जादा काल तक बना रहे और उसका प्रत्ययभी जल्द ज्ञात हो. जब तक द्रव्य और उसकी शक्ति शरीरमेसे बाहर नहीं जाती है तबतक उसके वीर्यकी प्रतीति बनी रहती है. जो द्रव्य वीर्यवान् होता है उसका कार्य शुरूसेही ( शरीरावयवके संयोगसेही ) ज्ञात होता है. ( वीर्यं यावदधीवासाच्चिपाताच्चोपलभ्यते । ( च. सू. अ. २६ ). सोमलका ( संखियाका ) असर शरीरपर कई दिनोंतक रहता है, क्योंकि संखिया शरीरमेसे जल्द बाहर नहीं निकाला जाता ( अधीवासः ). हायद्रोसायनिक ड्रेसिड का परिणाम स्पर्शसेही शरीरपर हो जाता है ( निपात ). ये परिणाम वीर्यसेही हो जाते हैं. वीर्यके माने द्रव्यके गुणक्रियाओंका विशिष्ट कार्य.

“ प्रभाव ” याने द्रव्यकी खास शक्ति. “ रसादि साम्ये यत्कर्म

विशिष्टं तत्प्रभावजम् । ” अथवा

रसवीर्यविपाकानां सामान्यं यत्र लक्ष्यते ।

विशेषः कर्मणां चैव प्रभावस्तस्य च स्मृतः ॥ च. सू. अ. २६.

- रस, विपाक, और वीर्य ये सब समान होनेपरभी द्रव्योंमें जो कुछ कार्य करनेकी खास शक्ति पायी जाती है उसीको “ प्रभाव ” कहते हैं. अथवा दूसरे उपाधियोंसे ( रस, विपाक और वीर्यसे ) जो कार्य होता है उसके अलावा जो खास कार्य होगा वह “ प्रभाव ” सेही होगा. इसका सार यह है कि द्रव्यकी खास शक्ति ‘ प्रभाव ’ है. जैसे पारदसे उपदंशका रोग हट जाता है, या किनाईनसे थंडीतापके जंतू ( कीड़े ) मारे जाते हैं, या एक विषसे दूसरे विषका प्रतिकार होता है. ( विपं विषच्छमुक्तं यत्प्रभावस्तस्य कारणाम् । च० ) ये सब प्रभावके उदाहरण हैं. प्रभाव ऐसा क्यों होता है. इसका जबाब, कार्यकारण मीमांसा करके, अच्छी तरहसे हम नहीं दे सकते हैं. सुवर्णसे राज-चम्पाके जंतू क्यों मारे जाते हैं? पारद और संखियासे उपदंशके जंतू क्यों मारे जाते हैं?

इन सब द्वाइओंका कार्य कैसा, किस कारणसे, होता है? इन सब प्रश्नोंका उत्तर आजतक पूरापूरा नहीं मिल सका। इसीलिये आयुर्वेद-शास्त्र केवल यही कहता है कि यह सब कार्य 'प्रभाव' से होता है। और ऐसा लिख चुके हैं कि, "प्रभावोऽचिन्त्य एव च॥" याने प्रभावकी कार्यकारण मीमांसा करना दुर्घट है। अर्थात् प्रभावके माने द्रव्यकी खास कार्यकारी शक्ति, द्रव्यका खास गुण और उसका खास कार्य है।

वीर्य और प्रभाव, इन दोनोंका कार्य शरीरके 'त्रिधातु' और 'मन' इनपर प्रथम होता है और इसके बाद त्रिधातुओंके जरिये स्थूलधातु और इन्द्रिय, इनपर होता है। भस्म तथ्यार करनेकी मेहनत इसलिये होती है कि इससे द्रव्योंका वीर्य ( और जिनमें प्रभाव हो उनका प्रभाव ) बढ़ जाय। इसलिये यह सब मेहनत फुङ्गुल नहीं है।

यहांतक भस्ममें होनेवाले 'गुणासंस्कार' और भस्म तथ्यार करनेमें जिस प्रक्रियाका रूपाल रखवा जाता है इसके बावत थोड़ासा हम लिख चुके हैं। यह विवेचन विलंकुल कम है, पूरापूरा नहीं है। कुछ बातोंका विचार सब सिद्धौषधिओंके साथ होना चाहिये। इसलिये यहां नहीं लिखा है। किंतु भस्मोंके बावत योग्य और उपयुक्त बातोंका विचार हो चुका है। रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव इनका सविस्तर और पूर्ण विवेचन आगे कभी होगा इसी विवेचनपर आयुर्वेद-शास्त्रका आधार है। आयुर्वेदीय गुणाधर्मशास्त्रका याथातथ्य जान होनेके लिये इन बातोंका रूपाल आवश्यक है। हम अबतक जो लिख चुके हैं इससे वह रूपाल होगा ऐसी आशा है। इस ग्रंथसे भस्मोंपर गुणासंस्कार करनेसे उन भस्मोंमें जो विशिष्ट रस, वीर्य, विपाक, प्रभाव और गुण पाये जाते हैं उनका कार्य 'मानस,' त्रिधातु, 'स्थूल-धातु' 'शरीरके अवयव' और 'घटक' उन पर कैसा होता है यह विस्तारपूर्ण लिखा है। त्रिधातु सब शरीरमें महत्वके होनेसे उनका और भस्मोंका एकका दूसरेसे संबंध ( अन्योन्य संबंध ) ज्यादा तौरसे बतलाया गया है।



# आौषधिगुणाधर्मशास्त्र.

## प्रथम विभाग.

भस्मे.

१. अभ्रक भस्म ( सहस्र पुटी-हजार पुटकी। )

देनेका प्रमाण— $\frac{1}{2}$  से १ रत्ती।

[ अभ्रक भस्म-सो पुटकी और इससे भी थोड़े पुटकी (निश्चन्द्र) ऐसी भी बनायी और इस्तमाल की जाती है। उनके गुणधर्म कम होने से अलग लिखनेकी जरूरत नहीं है। ]

अभ्रक के चार प्रकार होते हैं। पीला, सुखे, सफेद और काला। इनहीं को पिनाक, दर्हुर, नाग और वज्र अभ्रक कहते हैं। अश्रीमें रख देनेसे जिसके पतले पतले टुकड़े निकल आते हैं उसको पिनाकाभ्रक कहते हैं। जिसमें तपानेसे सर्प (नाग) के फृत्कारके माफिक आवाज होता है वह नागाभ्रक। जिसका आवाज अश्रीमें मैडक के माफिक होता है वह दर्हुराभ्रक। चौथे प्रकारके अभ्रकमें अश्रीसे कुछ भी फर्क नहीं हो सकता। इसी लिये उसको वज्राभ्रक कहते हैं। उससे रोग, दुष्टापन और मृत्यु भी हट जाता है। उसको कृपणाभ्रक भी कहते हैं। अभ्रक भस्म बनाने के लिये कृपणाभ्रक लेना चाहिये। वह स्त्रिघ्न, जाड़े पत्नीका, काला और वजनदार होता है। इसके पत्ते भी जल्द हट जाते हैं। इस अभ्रकके काले काले, चमकदार और अपारदर्शक वड़े वड़े दूकड़े मिलते हैं। उनको फोड़ ले या कुशलतासे उनके पत्ते छोड़ ले तो वे सफेद अभ्रकके समान पतले होंगे। किंतु उनका रंग काला या

( १ ) पिनाकं नागमंहूकं वज्रमित्यभ्रकं मतम् ॥ रसरत्नममुच्चय

( २ ) पिनाकं पावकोज्ज्ञं विमुच्यति द्वलोच्चयम् ।

नागाद्वं नागवत्कुर्याद् ध्वनिं पावकसंस्थितम् ।

उत्प्लुत्योत्प्लुत्य मङ्गूकं धमातं पतति आश्रकम् ।

वज्राद्वं वहिसंततं निर्मुक्ताशेषवैष्टतम् ।

देहलोहकरं तत्त्वं सर्वरोगहरं परम् ।

स्त्रिगर्भं पृथुदलं वर्णसंयुक्तं भारतोऽधिकम् ।

सुखनिर्मोच्यपत्रं च तद्वा शस्तरीरितम् ॥ रसरत्नशमुच्चय ॥

धूसर होगा, नीले रंगकी कांचके माफिक उनका रंग होगा और वे उतनेही पारदर्शक होंगे।

**अभ्रकशुद्धिः**—अभ्रककी भस्म बनानेके लिये पहले उसको शुद्ध करना चाहिये, वज्राभ्रकको तपातपाकर कांजी, गोमूत्र, त्रिफलाका काढा, गौका दूध या वेरकी छालके काढ़में (इनमेंसे कुछभी एक लेना चाहिये) सात बार डुबानेसे अभ्रककी शुद्धि होती है।

**धान्याभ्रकः**—अभ्रकको शुद्ध करने के बाद उसका प्रथम चूर्ण बनाना चाहिये, यह चूर्ण बनानेके लिये प्रथम धान्याभ्रक बनाते हैं, वज्राभ्रक या कृष्णाभ्रक के शुद्ध किये हुवे टुकड़े प्रथम खरलमें रखके बिलकुल छोटे करना चाहिये, और इसमें उससे चौथा हिस्सा धान्य (चावलका धान) याने शालि मिलाके वे दोनों कम्बलमें अच्छी तरह वांधकर वह पानीमें तीन दिनतक भिगोना चाहिये, वह अच्छी तरहसे भीग जानेपर उस कम्बलको पानीसे निकाल कर, थालीमें या चौड़े मूँहके वरतनमें उसको जोरजोरसे घिसाना चाहिये, अभ्रकका जितना अधिक प्रमाणा हो उतनी ज्यादा देरतक यह धीसना आवश्यक है, धीसनेसे अभ्रक पानीमें निकल आता है, जैसा जैसा अभ्रक पानीमें निकल आवे वैसा ऊपरका पानी निकाल लेना चाहिये और उसकी जगह नया पानी या त्रिफलाका काढा डालना चाहिये, इसमें भी जैव काफी अभ्रक निकल आवे तब वह भी निकाल कर नया पानी या काढा डालना चाहिये, इसी तरह जबतक सब अभ्रक निकल न जाय तबतक यह क्रम जारी रखना चाहिये, इसके बाद यह सब पानी इकट्ठा करके रख दें और ऊपर का पानी फेंक दिया जावें, नीचे जो अभ्रक रह जाय उसे सुखाकर इसमें जो चावलका टरफल आ जायेगा वह निकालना चाहिये, इसीको धान्याभ्रक कहते हैं।<sup>३</sup> धान्याभ्रक

( १ ) सत्वार्थं सेवनार्थं च योजयेच्छोधिताभ्रकम् ।  
अन्यथात्प्रयुणं छत्वा विकरोत्येव निश्चितम् ॥

( २ ) प्रतसं सप्तवाराणि निक्षिप्तं कांजिकेऽभ्रकम् ।  
निदोर्यं जायते द्वूनं प्रक्षिप्तं वाग्पि गोजले ।  
त्रिफलाक्वाथिते चापि गवां हुग्धे विशेषतः ॥ रसरलसमुच्चय ।  
अथवा वदरीकाथे धमातमश्च विनिक्षिपेत् ॥ आयुर्वेदप्रकाश ।

( ३ ) पादांशशालिसंयुक्तमश्रं बद्ध्वाऽथ कम्बले ।  
त्रिरात्रं स्थापयेत्वीरे क्लिन्चं वै मर्दयेत्करैः ॥  
तन्मीर एव यत्नेन यावत्सर्वं सर्वेत्ततः ।  
कम्बलाङ्गलितं सूक्ष्मं वालुकासद्वशं च यत् ।  
तद्धान्याभ्रकमित्युक्तं ॥ आयुर्वेदप्रकाश ।

‘बनानेके समय कोई कोई पानीकी जगह त्रिफलाका काढा या खट्टी कांजी लेते हैं।’

**सहस्रपुरी अभ्रकः—**[यह भस्म बनानेके लिये जिन जिन बनस्पतिओंकी भावना दी जाती है. उनकी यादी ट्रिप्परामें दी गई है।]

( १ ) चूर्णांशं शालिसंयुक्तं वस्त्रद्वंहि कांजिके ।

निर्यातं भर्द्धनाधत्तद्वान्यात्रमिति कथ्यते ॥ आयुर्वेदप्रकाश.

( २ ) श्रीगोविन्दपादास्तु अन्यान्येव गगनमारणाणि भेषजानि लिखन्ति; यथा अर्फदुर्घं, वटदुर्घं, सेहुण्डदुर्घं, धृतकुमारी, पंचांशलभूलपत्राणि, काकमारी, छुस्ता, वटप्ररोह वस्त्रशोणितं, चिल्वसूलपत्राणि, अद्विमन्थः, टिण्डुक, पाटली, श्रीपर्णी, शालिपर्णी, पृश्निर्णी, कण्टकारी, रुदंव, वृहती, गोक्षुर, तिलपर्णी, रमर्मञ्जरी, शुड सिद्धार्थको धवल, पालंव्या, मालती, गोमूत्रं, हरीतकी, धात्री, चिभीतक, तालीसिपत्रं, चित्रकम्बुलपत्रं, जलकुम्भी, तालमूली, रुप, वाजिगन्धा, अग्रस्त्यपत्र, भूंगराजः, कद्लीरुंहरस, सप्तपर्णी, देवदार, शुदृची, धन्त्र, कासभर्दक, मानुलानी, लोध, तुलसी, दुर्वा, मारीप, मृपकपर्णी, दाढ़िमपल्लवा, धोणटा, शंखपुरी, नागवट्टी, पिण्डीतगर, श्वेतयुनर्वा, हिलमोचिका, मण्डूकपर्णी, तिक्तका, चट्ठन ।

इत्यादेभिर्मर्द्दनेष्टनै एकैकेनापि अश्रको मारणीय । इत्यश्रकमारणीय गण । आभिर्यथालामे सहस्रुटा देया । यथासंहयं च प्रत्येक सन्तदशषुट्टः प्रायशो न्मवन्ति । एवं सहस्रसख्या पूर्वते । इति सहस्रपुष्टि ॥ आयुर्वेदप्रकाश.

इससे अलावा दूसरी एक छुटोंके बनस्पतिओंकी सूचि है. यह नीचे लिखी है—

( १ ) अकौआ का रस, ( २ ) मुगलाइं अरडका रस, ( ३ ) जगली तमाखू, ( ४ ) कसौदी ( कासमर्द ), ( ५ ) मूलीके पत्तोंका रस, ( ६ ) प्याजाना रस, ( ७ ) गगावती, ( ८ ) चंचु, ( ९ ) चथुवा, ( वास्तुक ), ( १० ) चिङ्गी या बडा चथुवा, ( ११ ) मुडी, ( १२ ) चौलाइं ( तडुग्रीक ), ( १३ ) धीगुपार, ( १४ ) नीमू रस, ( १५ ) कच्चा अनार, ( १६ ) गोखर्मझा पचाग, ( १७ ) हृष्टीका रस, ( १८ ) तुलती, ( १९ ) भगरा, ( २० ) निर्गुण्डी या सम्हालु, ( २१ ) दुधी, ( २२ ) विवरपरा ( पुनर्वा ), ( २३ ) गोमूत्र, ( २४ ) अरडका तैल, ( २५ ) डंबका रस, ( २६ ) न्यूरन, ( २७ ) शिमलिंगी, ( २८ ) अरड, ( २९ ) आमला, ( ३० ) शख-पूष्पी, ( ३१ ) काला धन्त्र, ( ३२ ) दुग्धी, ( ३३ ) कडवा परवल ( पटोल ), ( ३४ ) नेमर ( शालमनी ), ( ३५ ) देवदली ( सोनैया ), ( ३६ ) हुरहुज ( आदित्यभक्ता ), ( ३७ ) सहजना ( गिषु ), ( ३८ ) नीउ, ( ३९ ) बकरेका खून, ( ४० ) आडेका रस, ( ४१ ) नागरवेल, ( ४२ ) गिलोय, ( ४३ ) ब्राह्मी, ( ४४ ) मेंदांगिंगी, ( ४५ ) औंगा ( अपामार्ग ), ( ४६ ) आक या अकौआ, ( ४७ ) गवारी, ( ४८ ) पीला धन्त्रा, ( ४९ ) लाल प्याज, ( ५० ) गुडहर, ( ५१ ) उतरण, ( ५२ ) भुयआचला, ( ५३ ) अजामूत्र, ( ५४ ) सफेड गोकर्णी, ( ५५ ) दशमूल, ( ५६ ) विफला, ( ५७ ) चिरुडु, ( ५८ ) शूहगका रस, ( ५९ ) शार्मीके पत्ते, ( ६० ) कुलथी का काढा, ( ६१ ) पचामूल, ( ६२ ) वडके पारंग, ( ६३ ) चिनावर, ( ६४ ) गूलर का रस, ( ६५ ) नागरमोथा, ( ६६ ) लिरटी, ( ६७ ) दारु हल्दी, ( ६८ ) सफेड मिश्री, ( ६९ ) साल मिश्री, ( ७० ) चूमाकानी, ( ७१ ) अरडका मूल, ( ७२ ) कुटकी, ( ७३ ) छोटी सतावर, ( ७४ ) गोरीसर,

( आगेके पृष्ठपर देखिये )

अभ्रकको प्रत्येक बनस्पतीकी भावना देनेके बाद गजपुट देना चाहिये. डेढ़ हाथ लंबा, डेढ़ हाथ चौड़ा और डेढ़ हाथ गहरा ऐसा एक खड़ा तथ्यार करके उसमें तीन हिस्से गोवर ( कंडे ) भरके, उसके ऊपर मिट्ठी कपड़ा किये हुए शराबमें अभ्रक रख देना चाहिये, और इसके ऊपर फिर गोवर भरके अग्नि देना चाहिये. इस योजनाको ' गजपुट ' कहते हैं. इस तरह एक हजार पुट देनेसे सहस्रपुटी अभ्रक तथ्यार हो जाता है. अच्छी तरह बनायी हुई अभ्रक भस्मका रंग कपिलाके फूल जैसा या भंगलोरके टाइक्स ( खपरे ) जैसा हो जाता है.

### ग्रंथोक्त गुराधर्म.

गौरतिरेजः परममसृतं वातपित्तक्षयद्धन् ।  
 प्रश्नावोधि प्रश्नमितरुजं वृष्यसायुष्यमग्रव्यम् ।  
 बल्यं स्तिर्गधं रुचिदमकर्फं दीपनं शीतवीर्यम् ।  
 तत्त्वद्योगैः सकलगदहृष्टोमसूतेन्द्रवन्धी ॥ ग्सरत्नसमुच्चय  
 अभ्रं कषायं मधुरं सुशीतमायुःकरं धातुविवर्धनंच ।  
 हन्यात्रिदोषब्रगामेहकुष्टपूष्टीहोदरग्रथिविषकृमीश्च ॥  
 रोगान् हन्ति द्रढयति वपुर्वीर्यवृद्धिं विधत्ते ।  
 तारुण्याद्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव ॥

### ( गत पृष्ठसे आगे )

( ७५ ) असगध, ( ७६ ) मुलहटी, ( ७७ ) काली मिश्री, ( ७८ ) बड़का रस, ( ७९ ) तिलबन, ( ८० ) भाग, ( ८१ ) गाजा, ( ८२ ) कूट, ( ८३ ) वमासा, ( ८४ ) सहजना, ( ८५ ) काकोनी ( ८६ ) दनीमूल, ( ८७ ) नागकेमर, ( ८८ ) नखला, ( ८९ ) नगर, ( ९० ) बाला वाला ( खस् ) ( ९१ ) कमीला ( कपिलक ), ( ९२ ) अगर, ( ९३ ) काला अगर, ( ९४ ) मजीठ, ( ९५ ) लोग, ( ९६ ) जायफल, ( ९७ ) तमालपत्र, ( ९८ ) बालचिनी, ( ९९ ) खारिक, ( १०० ) झलायची, ( १०१ ) कूड़ा का मूल, ( १०२ ) राई, ( १०३ ) पद्मकमूल, ( १०४ ) जीरा, ( १०५ ) काला जीरा, ( १०६ ) सुपारी, ( १०७ ) कटकरजाकी छाल, ( १०८ ) बन्दूल की छाल, ( १०९ ) मदार का मूल, ( ११० ) विदारी कट, ( १११ ) प्याज का रस, ( ११२ ) सफेद निसोद, ( ११३ ) रासन, ( ११४ ) जटामासी, ( ११५ ) किवाच, ( ११६ ) ताड, ( ११७ ) अमलताश, ( ११८ ) बठाग, ( ११९ ) भटकैट्या, ( १२० ) तेलिया देवदार, ( १२१ ) कायफल, ( १२२ ) तिज्जकंद, ( १२३ ) फूलप्रियगु, ( १२४ ) कवाचचिनी ( १२५ ) मुनक्का, ( १२६ ) सफेद चंदन, ( १२७ ) विष्णुक्रान्ता, ( १२८ ) पीलू, ( १२९ ) मकोय, ( १३० ) लाजाहा, ( १३१ ) महवाके फूल का काढा, ( १३२ ) लकोड कपुरी, ( १३३ ) पीपिल की छाल, ( १३४ ) नरसलके फूल का काढा, ( १३५ ) वायविडग, ( १३६ ) कस्तुरी का पानी.

दीर्घायुप्वान् जनयति सुतोन् विकमैःसिंहतुल्या- ।  
 नवृत्योभींति हरति सततं सेवमानं वृताभ्रम् ॥ आयुर्वेदप्रकाश.  
 वेलव्योपसमन्वितं वृतयुतं वेलोग्मितं सेवितम् ।  
 दिव्याभ्रं क्षयपांडुरुग्रहणिका शूलामकुष्ठामयम् ॥  
 गूर्तिश्वासगदं प्रमेहमरुचिं कासामयं हुर्धरम् ।  
 मंदाश्चिं जठरव्यथां विजयते योगैरशेषामयान् ॥ रसरत्नसमुच्चय.

सृतं सत्वं हरेन्सृत्युं सर्वरोगविनाशनम् ।  
 क्षयं पांडुं ग्रहणिकां श्वासं शूलं सकामलम् ॥  
 ज्वरान्मेहांश्च कासांश्च गुलमान्पञ्चविधानपि ।  
 मंदाश्चिमुद्राण्येवमर्तांसि विविधानि च ॥  
 अनुपानप्रयोगेरा सर्वरोगान्विहन्ति च ।  
 अभ्रं सत्वगुरुरा वलं शक्यते न समाशतैः ॥ रसप्रकाश सुधाकर

अभ्रकभस्म कई प्रकारोंसे बनाया जाता हैं. उनमें से शतपुटी और सहस्रपुटी अभ्रक भस्म अकेला दे दिया जाता है. निश्चंद्र अभ्रक भस्मका उपयोग केवल मिथ्योग बनानेमें होता है. इस ग्रंथमें हम केवल सहस्रपुटी अभ्रकभस्मके गुरुर्धर्म देतें हैं क्योंकि वह ही सबसे श्रेष्ठ है.

अभ्रकभस्मका मुख्य कार्य सूक्ष्म या सूक्ष्मतर परमारुण्य बनानेका है. यह शरीरके संचालक इंद्रियोंमें पहुंचकर उनके घटकों की वृद्धिके लिये सूक्ष्म परमारुण्य पहुंचाते हैं. उनको लेकर वे घटक खुद बढ़ जाते हैं. जिन विकारमें शरीरके घटक और परमारुण्य धीरे धीरे कमताकद और कम हो जाते हैं, इंद्रियोंका 'शोष' (सूक्ष्मना) हो जाता है, इनकी काम करनेकी ताकद रोजाना कम होती जाती है इस प्रकारके विकारोंमें या दोषविकृतीमें (जिसको संस्कृतमें 'शोष' संज्ञा दी जाती है) अभ्रकभस्म सबसे अच्छा इलाज है. इंद्रियोंके घटक कम और कमताकद होना यह विकार अलग है और उनका सड़ जाना या नाश होना यह विकार अलग है. क्षीरा घटक केवल कमताकद रहता है और सड़ा हुआ घटक तो विलकुल मृत के समान है. इसलिये जिस विकारमें घटक सड़ गये होंगे उसमें अभ्रकभस्मका कुछ उपयोग नहीं होगा.

---

( १ ) मृताभ्रक—निश्चंद्रकं छसृष्टं च लोचनाच्चनसंनिभम् ।  
 तदा मृतमिश्युर्तं अभ्रकं नान्यथामृतम् ।  
 मृतं निश्चन्द्रतां यातं अरुणं चामृतोपमम् ।  
 सच्चंद्रं विषवज्ज्ञेयम् । आयुर्वेदप्रकाश ।

मगजकी शक्ति क्षीरा होनेसे, सिरमें हलकापन, बारबार चक्कर आना, कुछ भी विचार करे तो विचार करनेमें एक विचारमें दूसरे विचार की गडबड होना, एकदम खड़े रहनेसे चक्कर आकर गिर पड़ने की भीति (सूतशेखरमें भी यह लक्षण पाया जाता है) किंतु रोगी कभी गिर पड़ता नहीं, विचार करनेकी ताकद कम होना, कम-जोरी, इस कमजोरीमें भी यह विशेष है के रोगी बिलकुल ढुबलापतला, चिंताग्रस्त, अप्रसन्न, और चित्तमें आन्ति हो ऐसा नजर आता है। उसका मूँह देखकर यह ख्याल होता है कि उसका चित्त ढुबल हो गया है। उसके बेहरेमें मानसिक दुःस्थितीका चित्र खुलाखुला दिखता है। लोहभस्मकी जिन लोगोंको जरूरत रहती है उनके मूँह पर फिकापन, और कई बक्त पीलापन रहता है और यह फिकापन होमेपर भी। उनकी नाड़ी जोर जोरसे चलती है। यह अवस्था ऊपर लिखी हुई अवस्थासे भिन्न है। इस प्रकारके रोगी अभ्रकभस्मके लायक नहीं हैं। अभ्रकभस्मके लायक रोगीका मूँह ऐसा नहीं होगा। उसकी नाडियां, क्षीरा और कमजोर लगेगी, यह लोहभस्म और अभ्रक भस्ममें फर्क है। अभ्रकभस्मके लायक रोगीको बारबार थोडाथोड़ा पसीना आता है और वह सिरपर अधिक आता है। पसीना आनेपरभी उसको हल-कापन या हुश्शारी नहीं आती है किंतु क्षीराता अधिक बढ़ जाती है। कुछभी काम करनेमें उत्साह नहीं रहता। यह सब अभ्रकभस्मके लायक मानसिक लक्षण हैं। कभी कभी बाहरसे, रोगी तम्हुरस्त होनेपरभी अन्दरसे उसको कभी उत्साह नहीं रहता। इस अवस्थामें अभ्रकभस्मसे जरूर फायदा होगा।

अपस्मार या उन्माद के रोग में दो अवस्था होती हैं। तीव्र अवस्थामें ब्राह्मी या खुरासानी अजोवान के समान तीव्र शामक और ज्ञानतनुओंका क्षोभ कम करनेवाली द्वाइयां देना जरूर है। किंतु इन द्वाइयोंसे इस विकारका मूलच्छेद नहीं होगा। रोग के तीव्र लक्षण कम होंगे। रोगका कुछ देरतक शमन जरूर होगा। अपस्मार और उन्माद ये दोनों मनके विकार याने मानतरोग हैं। केवल इतनाही इनमें साम्य है। अपस्मार-स्मृति या स्मृतिजनक केन्द्र का विकार है, और मनोवृत्तिओंके विभ्रमसे उन्माद विकार होता है। मनोवृत्तिके क्षोभसे या स्मृतिजनक केन्द्रके क्षोभसे, सर्व शरीरके ज्ञानतनुओंमें जो क्षोभ होता है वह केवल शामक द्वाइयां देनेसे कम होगा। किंतु मन की या स्मृतिजनक केन्द्रकी सूलतः क्षोभ होने की जो 'प्रवृत्ति' रहती है वह कभी कम न होगी। इस लिये यह प्रवृत्ति कम करनेकी

दूसरी औषधी देना पड़ता है. यह एक सामान्य अनुभव है कि उन्माद या अपस्मार ये दोनों विकार क्षीरा, दुबलेपतले और बेताल मनके खीपुरुषोंको सताते हैं. अच्छे तन्दुरस्त आदमीको, जिसका मन अचल है, जो आत्मानात्म विचार करता है ऐसे आदमीको उन्माद या अपस्मारसे पीड़ित कभी देखा सुना नहीं. इसके माने यह है कि ये दोनों विकार शरीर और मनसे अशक्त तथा बेताल मनके आदमियों में पाये जाते हैं. इसी लिये इन रोगियोंको केवल तीव्र और क्षोभनाशक दवाइयोंसे कभी फायदा नहीं होगा. कभी कभी तो फायदे की जगह मन और सृजितकेन्द्र इनकी शक्ति कम हो जाती है. और वह शक्ति कम होनेसे मूल रोग बढ़ जाता है. रोग बढ़ जानेपर अधिक तीव्र दवाइयां दी जायेगी और उनसे फिर रोगी का मन अधिक अशक्त हो जायेगा. इसका परिणाम मानसिक इन्द्रिय और दूसरे ज्ञानतंतुओंपर होगा. रोगी की शक्ति रोज रोज कम होती जायेगी और यहही रोगका मूल कारण होनेसे रोग दिन दिन बढ़ताही जायेगा. यह अनिष्ट चक्रनैमिकम (Vicious Circle) रोगीको सताता है. इस लिये तीव्र या शामक चिकित्सा योग्य नहीं है. यह सच्ची चिकित्सा नहीं है. इससे रोगी अपने विकारसे कभी मुक्त होना दुर्घट है.

उन्माद, अपस्मार, सृजितनाश या बुद्धिविभ्रम के विकार में सामान्यतः सर्व मानसयंत्रकी शक्ति कम हो जाती है. इस यंत्र को जिन पोषक द्रव्योंकी जरूरत रहती है उन्हे रसादि धातुओंसे यह मनोयंत्र नहीं निकाल सकता है. यह शक्तिनाश भी इसी बजह होता है. इस विकारमें यदि हम मनोयंत्र का पोषण करें या इस यंत्रको जरूरी पोषक द्रव्य पहुंचाये तब इस रोगको हटानेकी आशा है. आजकल की चिकित्सा इस उद्देशसे नहीं की जाती है. आजकलकी चिकित्सामें केवल शामक द्रव्योंका उपयोग किया जाता है और वातविकारका शमन करनेकी कोशिश की जाती है. यह चिकित्सा सफल नहीं होती है. किंतु ऊपर लिखे हुवे उद्देशके अनुसार चिकित्सा करें तो कुछ ना कुछ फायदा होगा ऐसा अनुभव है. विकारमें जब कोई इन्द्रिय, उसके पोषणके अभावसे, या उसके घटकोंकी अपने लायक द्रव्य रक्तमेंसे निकाल लेनेकी शक्ति कम होनेसे, क्षीरा हो जाता है तब इस विकारको हटानेके लिये ऐसी दवाईकी जरूरत है कि जो अपने ओज या तेजसे सब धातुओंको और उनके जरिये सर्व इंद्रियोंको शक्ति पहुंचायेगी. अभ्रकभस्म इस तरह की दवा है. अभ्रक-

भस्म शुरू करनेके बाद थोड़ेही दिनोंमें, शरीरके परमाणुओंको ओज या शक्ति प्राप्त होती है और उनकी ताकद बढ़ जाती है। उपर लिखे हुवे विकारमें स्मृतिकेन्द्रकी क्षीराता नष्ट करके उसको अपनी प्रथम शक्ति प्राप्त हो यह इलाज सशास्त्र होगा। अभ्रकभस्मसे मन के सूक्ष्म-सूक्ष्म विभागोंको धीरे धीरे ताकद मिलती है। ताकद मिलनेसे संज्ञा और आज्ञा वाहिनीओंकी निर्वलता नष्ट होती है। इसी बजह उनका क्षोभ भी छोटी छोटी बातोंसे नहीं हो सकता। क्षोभ प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है।

अर्धीगवात (लकवा) में दो अवस्था होती हैं। प्रथमकी तीव्र अवस्था शांत होने के बाद दूसरी अवस्थामें रक्तवाहिनीओंकी पूर्व-शक्ति प्राप्त होने के लिये, या बारवार मनःक्षोभ होता हो या मनःक्षोभकी आदत पड़ जाय तो इस मनःक्षोभको नष्ट करनेके लिये अभ्रक-भस्मका उपयोग होना चाहिये। इस अवस्थामें अभ्रकभस्म देनेसे रक्तवाहिनीओंके घटक सबल हो जाते हैं। जिस विकारमें आदमी केवल संशयसे ग्रस्त होता और ऐसा समझता है के खुद कोई बड़े रोगसे बीमार हो और इसी बीमारीसे क्षीरा हो रहा हो और राज्यक्षमा या दूसरा कोई विकार हो जानेकी भीतीसे नाहक चिंता करता हो तो उस आदमीको अभ्रकभस्मसे जरूर फायदा होगा। इसी प्रकार जिस आदमीकी आनंदके समय कभी तबियत खुश नहीं रहती हो। जिसको सब कुछ मिलता है और जिसपर सब आनंददायक प्रसंगोंकी खैरात हो रही है और जो ऐसे प्रसंगमें भी कुछ छोटी बातें ख्यालमें रखके दुःखी रहता है ऐसे आदमीको अभ्रकभस्म देना चाहिये।

बच्चोंमें कभी कभी उनकी उमरके साथ २ उनकी विचारशक्ति नहीं बढ़ती है। कई बच्चोंको सामान्य ज्ञानभी जल्द नहीं होता। कई लड़के बिलकुल दीवाने जैसे अपने हाथों के तरफ देखते रहते हैं। कई बच्चे हाँसते नहीं, खेलते नहीं या कुछ चेष्टाभी नहीं करते, केवल रोते रहते हैं। ऐसे बच्चेका शरीर दूसरे विकारोंमें सूख जाएगा किंतु इस विकारमें शरीर तो बाहरसे कमताकद नहीं दिखता उसके मूँहपर चिंता या भीतीसे निस्तेजता और दीनता पायी जाती है। (आगे आरोग्यवर्धनी गुटी के गुराधर्म देखिये) इस अवस्थामें अभ्रक-भस्मसे फायदा होता है। किंतु इस अवस्थाका मूल कारण उपदंशका विकार हो, तो अभ्रकभस्मके साथ 'गंधकरसायन' अनंता (गौरसिर) इत्यादि दवाइयां देना चाहिये।

मस्तिष्क के कुछ विभागकी अशक्ततासे या उस विभागका योग्य विकास न होनेसे छोटे वच्चोंमें विकार हो जाते हैं. वे अपनी गर्दन न उठा सकते हैं. हाथपैरोंपर उनका अधिकार नहीं चलता. बोलनेमें भी शब्दोच्चार स्पष्ट नहीं होते हैं. शब्दोच्चार अटकता हुवा निकल आता है. इस अवस्थामें बच्चेमें पगलापन तो कुछ नहीं होता. उसकी समज अच्छी रहती है किंतु बोलने या चलनेका प्रयत्न करनेसे भी वह अच्छी तरहसे नहीं कर सकता. इसका कारण यह है कि मस्तिष्क से जो संदेश आतां है उसमें पूर्णशक्ति नहीं रहती है. बच्चेको ज्ञान तो पूर्ण रहता है और उस ज्ञान की वजह वह अपनी तरफ खूब प्रयत्न भी करता है. किंतु मस्तिष्कमें जिस विभागसे यह आज्ञा निकलनी चाहिये उसकी नाताकतीसे वह यत्न निष्फल हो जाती है. इस विकारमेंभी अभ्रकभस्मका दूसरी द्वाइयोंके साथ या स्वतंत्रतासे उपयोग होता है.

उपर लिखी हुई लक्षणोंके साथ कुछ वालकोंकी सिरकी हड्डियां कमताकद होती हैं. उनका सिर (विशेषतः आगेका भाग) बड़ा हो जाता है. कपालके अस्थि बढ़ जानेसे कपालका आकार भी बदल जाता है. इसके साथ बारबार कपालपर पसीनाका आना, मूँह में पानीका आना; पानी आनेपरभी मूँहमें छाले या जबानपर फुँसिया बगैरह न होती है, कफ अधिक होनेसे खांसीके साथ बहुत बलगम गिरता है; लड़कोंकी छातीकी हड्डिया नरम होनेसे श्वासोच्छ्वास के जोरसे उनके बीचका भाग आगे निकल आता है. बारबार उल्टी (कै) भी होती है. इन लक्षणोंमें अभ्रकभस्म देनेसे फायदा होता है. (प्रवाल, मंडूर और मृगश्टुंग देखिये).

अभ्रकभस्म एक उत्तम 'रसायन' है. 'रसायन' के माने यह है "जिस द्रव्यसे रसादि धातुओंकी पैदास अच्छी तरहसे होकर, वे सर्व शरीरमें फैल जाय और जहां जहां उनकी जरूरत हो, वहां २ वे प्रथम पैदा हुवे धातुओंसे मिल जाय. उस प्रकारके द्रव्य को 'रसायन' कहते हैं." अभ्रकभस्मका कार्य इसी तरहका है. शरीरमें जहां जहां धातुओंके पैदासमे विकार हो, या धातुओंकी पैदास कम हो, या धातुओंकी पैदास होनेपरभी वे अपने अपने स्थानोंपर योग्य प्रमाणमें न पहुंचते हो; इन सब विकारोंमें अभ्रकभस्मसे जरूर फायदा होगा. अर्थात् रस धातुसे पैदा हुवे रक्तादि स्थूल धातू जब शुरूसेही रूपतः या गुणातः विकृत हो जाते हैं तब अभ्रकभस्मसे उनकी विकृति नष्ट होती है और धातुपरिपोषणकम दुरुस्त हो जाता है. अभ्रकभस्मके

इस गुरा के कारण उसका उपयोग पांडुरोग, रक्तपित्त, अम्लपित्त, क्षतक्षय इत्यादि पुराने या तीव्र विकारोंमें अच्छी तरह से कर सकते हैं।

लड़कियोंको जबानीमें 'हारिद्रक' नामका (Chlorosis) विकार होता है। रक्तमेंसे छोटे छोटे लाल घटक कम हो जाते हैं। कुछ भी विशेष वाह्य विकार न होनेपरभी लड़कीका मूँह फीका हो जाता, बदन सूख जाता है, कभी बुखार कभी बमन हो जाती है, हाथ पैरोंके नाखून पीले पड़ जाते हैं। उनका आकारभी बदलता है और वे धीरे धीरे हरे रंगके हो जाते हैं। यह सब विकार रक्तमें लाल घटक कम होनेसेही पैदा होते हैं। रक्तकरण (लाल घटक) तथ्यार करनेका कार्य अभ्रकभस्मके साथ लोहभस्म देनेसे पूर्णत हो जाता है। इस हारिद्रक रोगका मूल कारण मानसिक हो तो उसमें अभ्रकभस्मसे जरूर फायदा होगा। कभी कभी यह कारण मानसिक हैं या शारीरिक है इसका तलाश अच्छी तरह से नहीं कर सकते हैं, या दोनों कारण शुरूसे रहते हैं। इस अवस्थामें अभ्रकभस्म और लोहभस्मका मिश्रण देना चाहिये।

पंडुरोगमें भी मानसिक कारण हो या वातवाहिनी विगड़नेसे रक्तकी (रक्तकरणोंकी) पैदास कम हुई हो तो इसमें अभ्रकभस्मसे जरूर फायदा होगा।

वातासीरमें भी ज्यादा खून गिरनेसे पंडुरोग उत्पन्न होता है। इसमें भी मूल कारण मानसिक हो (जैसे मनःसंताप) या वातवाहिनी विगड़नेसे या उनको अधिक कष पड़े हो तो इस अवस्थामें अभ्रकभस्म देना चाहिये।

आंतों की अशक्ततासे, उनके आखिरखे हिस्सेमें जो 'गुद-त्रिवली' होती है उसपर दाब आनेसे सूजन आती है, उसमेंसे खून निकल आता है और विशेषतः खून गिरनेके बाद कमजोरी मालूम होती है। इस विकारमें अभ्रकभस्मका उपयोग होता है। इस अवस्थाके दो प्रकार होते हैं। एक विकार यकृतका विगाड होनेसे, आंतोंमेंसे जो रक्तवाहिनी यकृतके तरफ जाती है उसपर दाब आनेसे होता है और दूसरा प्रकार आंतोंकी अशक्ततासेही होता है। इस दूसरे प्रकारमें अभ्रकभस्मसे फायदा होता है।

इन दोनों प्रकारोंमें आखिरमे रक्तार्श (खूनी वातासीर) पैदा हो जाती है और रोग पुराना होनेसे बारबार खून गिरनेकी आदत पड़

जाती है। इस आदत को नष्ट करनेके लिये अभ्रकभस्मका उपयोग होता है, किंतु व्यासीरके मस्से अभ्रकभस्मसे कम नहीं हो सकते हैं। मस्सोंके लिये शस्त्रकर्म, क्षारकर्म या अश्विकर्म यहही इलाज है। इनही से वे नष्ट हो सकते हैं। केवल खून गिरनेकी आदत अभ्रकभस्मसे कम होती है।

रक्तार्श के मस्से निकालनेके बाद या रक्तार्शका उपद्रवरूप, भगंदर विकार हो जाता है। इसमें भी रोगका जोर कम करनेके लिये और गुदमार्गमें जो ब्रण पड़ जाता है वह अंदरसे भर जानेके लिये अभ्रक-भस्म देनेसे बहुत रोगियोंको फायदा हुआ है।

दूसरे पुराने फुंसियो या धावोंके लिये भी शारीरिक परमाणु-ओंको ताकद देनेके लिये और धाव भरनेके लिये अभ्रकभस्म दूसरी दवाइयोंको मदद करती है।

अशक्ततासे उत्पन्न होनेवाला स्वरभेद, स्वरसाद ( आवाजका बैठना ) यह विकार स्वरवहनाडियोंकी अशक्ततासे पैदा होता है। इस विकारमें बोलनेकी ताकद कम होती है। रोगी बोलना चहाता है किंतु बोलने के समय स्नायुओंकी शक्ति कम होनेसे शब्द का उच्चार करना ढुर्घट होता है। उच्चार करें तब भी वह आवाज इतना कम होता है कि पास का आदमी भी सुनता नहीं। शब्द मानो भूंहके अंदरही रह जाता है।

- ( जसदभस्म—रोगी खुद बोलनेको चाहताही नहीं। )

फैफडँडोंकी अशक्ततासे, उरःस्थ कफविकृति होती है, और इसमें फैफडँडोंके तरहतरहके तीव्र और चिरकारी विकार उत्पन्न होते हैं। इन विकारोंमें अभ्रकभस्मका उपयोग होता है। फैफडँडोंके विकारोंमें अभ्रक-भस्मके समान दूसरी कोईभी चीज नहीं है। अभ्रकभस्म फैफडँडोंको शक्तिदायक है।

फैफडँडोंक समान हृदयको भी अभ्रकभस्मसे ताकद मिलती है। जब हृदयकी केवल अशक्तता हो याने हृदयमें कोई झंड्रियजन्य विकार ( Organic disease ) न हो तो अभ्रकभस्मसे जरूर फायदा होगा। इसी बजह हृदयके या फैफडँडोंके पुराने विकारोंमें अभ्रकभस्म देते हैं। अभ्रकभस्मका कार्य धीरे धीरे होता है। कई दिनोंतक रहते हुए बुखारमें हृदय और फैफडँडोंकी अशक्तताके लक्षण पाये जाते हैं। इस विकारमें जबतक बुखार जारी रहेगा तबतक हृदयकी और फैफडँडोंकी शक्ति कायम रहना चाहिये। इसलिये वैद्योंका यह रिवाज है कि इन-

विकारोंमें शुरुसेही अभ्रकभस्म दें. बातकफप्रधान ज्वरमें (इन्फ्ल्यू-एन्ज़ा) अभ्रकभस्मका इस तरह का उपयोग कई वैद्योंने किया है.

आजकल अभ्रकभस्मकी यह एक तारीफ सुनी जाती है कि क्षयके विकारमें वह एक खात्रीका इलाज है. किंतु आजकल जिस प्रकारका क्षयविकार दुनियामें पाया जाता है—याने जन्तुजन्य क्षय-विकार—इसमें अभ्रकभस्मसे फायदा हुवा बहूत कम नजर आता है. जन्तुजन्य क्षयविकारकी सर्वे अवस्थाओंमें अभ्रकभस्मसे अपेक्षित फायदा नहीं होता यह हमारा अनुभव है.

जन्तुजन्य क्षयविकारको छोड़कर अन्य क्षयविकारोंमें जो आयु-वैदमें लिखे हुवे हैं, (जैसे—अनुलोम और प्रतिलोम क्षय) अभ्रक-भस्मसे जरूर फायदा होता है. जन्तुजाय क्षयविकारमेंभी विलकुल शुरुसेही जब पुखार कम रहता है या पुखार का केवल आन्देशा रहता है तब कभी कभी अभ्रकभस्मसे फायदा होता है. इसके माने यह नहीं के अभ्रकभस्म जन्तुभ्र है. अभ्रकभस्मसे फैफडोंके और दूसरे अवयवोंके परमाणुओंको ताकद मिलती है और उनपर क्षयके विषारका कुछ असर नहीं हो सकता. इसी बजह रोग बढ़ता नहीं और रोगीको भी उत्साह रहता है. क्षयविकारकी प्रथम अवस्थामें केवल अभ्रकभस्म की जगह अभ्रकभस्म, मृगशृंगभस्म और गिलोय का सत्त्व मिश्रण करके वह दूध और मिश्री के साथ या दूसरे सौम्य अनुपान के साथ देना चाहिये.

दूसरे प्रकारके (निर्जन्तुक) क्षयविकारमें अभ्रकभस्म एक खात्रीका इलाज है. इस क्षयविकारका मुख्य और स्पष्ट लक्षण यहही है कि दूसरा कुछ भी कारण नजर न आने परभी शरीरके अवयव घटते जाते हैं शरीर दुबलापतला हो जाता है. क्षय का यह प्रकार कई दिनोंतक रहता है और रोगीकोभी शुरुसे उसका ख्याल नहीं रहता. इसमेंभी कभी कभी पुखार आता है किंतु वह जन्तुजन्य क्षय-विकारके माफिक नहीं रहता. दूसरी बात यह है के लैबोरेटरीमें परीक्षा करें तो इसमें क्षयविकारके जन्तु नहीं पाये जाते हैं. इस प्रकारके (निर्जन्तुक) क्षयविकारकी कौनसीभी अवस्था हो, अभ्रकभस्मसे जरूर फायदा होता है. इससे परमाणुओंकी पैदास बढ़ जाती है और नाश कम होता है.

पुराणो कफविकारोंमें भी अभ्रकभस्मसे फायदा होता है. पुरानी खांसी और उसके साथ दमा हो तो श्वासवह नलिका खराब हो

जाती है और उसमें धाव पड़ जाते हैं। इस विकारमें रोगी निःशक्त हो तो अभ्रकभस्मकी जरूरत है। इसके साथ कुछ भी कफद्दन औपध मिला दो, किंतु शहद के साथ अभ्रकभस्म दे तो भी अच्छा काम होगा।

कफवातात्मक या केवल कफात्मक श्वासविकारमें (दमा) कफ-स्थानकी अशक्तता पायी जाती है। इसमें दमाके साथ खांसी भी होती है। और खांसी करते करते गाढ़ा सफेद चिकरणा और बड़ा बलाम निकल आता है। इसमें पसीना भी वहुत आता है। पसीना थंडा होता है और वह दमाके परिश्रमसे आता है। कभी कभी परिश्रम न होने-पर भी स्वभावसेही पसीना आता है। इस हालत में अभ्रकभस्म देना चाहिये।

वृद्ध, अशक्त या दुबले पतले आदमिओंको वरसातके दिनों में या जाड़े के शुरुवातमें थंडी हवासे दमा होता है, दूसरे दिनोंमें भी, थंडीसें दमा होता है। इसमें चुपचाप घैठनेसे और हिलचाल न करनेसे आराम रहता है। इसमें भी अभ्रकभस्मसे फायदा होगा।

कभी कभी अशक्त और पंडुरोगी खियोंको अक्समात् दमा होता है और वहुत घवराट होती है। श्वास के कारण उलधाल होती है। रोगी घवराता है पवन चहाता है। जितना पवन चलावे उतना उस का मनप्रसन्न रहता है। दिनरात ऐसी तगसग बनी रहती है, इसका सूल कारण भी श्वासवाहिनिओंका संकोच हो सकता है; श्वासवाहिनिओंके संकोच के कारण जितने प्राणावायूकी शरीरको जरूरत है उतना प्राणावायु अपना शरीर न पाता है। इसलिये शरीर प्रयत्न करता है के कहांसे भी उसको पवन मिले। पवन न मिलनेसे सब शरीरके अंदर दाह (जलन) पैदा होती है और पवन लेनेको जी चहाता है। यह सब हालत प्राणावायूके कम होनेसे पैदा होती है इसलिये कुछ भी दवाई आराम नहीं दे सकती है। श्वासवाहिनिओंवा संकोच कम करके विगड़े हुवे पित्तका भी शमन करना चाहिये। इस प्रकारका कार्य अभ्रक भस्म करता है। इस विकारमें अभ्रकभस्म, चंद्रप्रभा, रुद्रघंटी और आरोग्यवर्धनी ये दवाइयां देना चाहिये। मनःक्षोभ या दूसरे मानसिक लक्षण अधिक हो तो इस अवस्थामें अभ्रकभस्मका कार्य अच्छी तरह होता है।

जिन रोगिओंको वार वार खांसीकी आदत है, जिनको वीचमें कुछ काल खांसी बंद रहती और फिर आ जाती है, जिनको जालमें एकही कालमें (विशिष्ट ऋतूमें) खांसी आती है, जिनको विशिष्ट

पदार्थके सेवनसे खांसी आती है, उन सब रोगिओंके शरीरमें ऐसी आदतें पड़ जाती है के उनकी प्रकृति केवल उन्हीं चीजोंको नहीं चहाती है। इस आदत को हटानेके लिये प्रथम इस विशिष्ट प्रकृती को सुधरना चाहिये। यह कार्य अभ्रकमस्म से होता है। इसमें एकही बात का ख्याल रखना चाहिये के अभ्रकमस्म हररोज न लेना किंतु वीचमें कुछ दिन छोड़ कर फिर कुछ दिन उसका सेवन करना चाहिये। इस विकारमें अभ्रकमस्म केवल शहद के साथ चटाना अच्छा है।

हृदयकी अशक्ततासे—थोड़े भी चलनेसे श्वास लगता है, रोगी पहाडपर नहीं चढ़ सकता है, दम नहीं छाटता, 'रुधिरामिसरण' भी अच्छी तरह नहीं चलता, नाड़ी कमजोर, मंद और अनियमित चलती है, इन लक्षणोंमें अभ्रकमस्म देनेसे फायदा होता है। रक्तवाहिनिओंका कवच पतला होता है और जिस विभागमें वह पतला हो वहाँ कफके संचयसे और जोरसे वह फूल जाती है, इस विकारमें और इसकेभी आगेकी-रक्तपित्तकी अवस्थामें अभ्रकमस्म एक खात्री का इलाज है। इसमें केवल अभ्रकमस्न की जगह, अभ्रकमस्मके साथ प्रवालभस्म और गिलोयका सत्त्व देना चाहिये। इस विकारमें प्रथम उपदंशका विकार हुआ हो तो इसी मिश्रणके साथ सारिवावलेह (गौरीसरका पाक) लेना चाहिये। अभ्रकमस्म का प्रधान कार्य शरीरके परमाणुओंको ताकद देने का है। इसलिये जिस अनुपानके साथ या द्रव्यके साथ वह दिया जाय उसका कार्य स्पष्ट हो जाता है। जैसे—दालचीनीके समान द्रव्योंके साथ देनेसे फुफ्फुस संनिपात (निमोनिया) और आंत्र संनिपात (टायफोइड) में फायदा होता है। क्यों कि इन दोनों विकारोंमें रोगके जंतू पाये जाते हैं और उनका नाश करनेकी ताकद श्वेतपरमाणुओंमें उत्पन्न होती हैं। लोहमस्मके साथ अभ्रकमस्म देनेसे श्वेतपरमाणुओंसे भी अधिक ताकद रक्त परमाणुओंमें आ जाती है। इसी लिये पंहुरोगमें अभ्रकमस्म, लोहमस्म और त्रिफला शहदके साथ दिया जाता है।

अभ्रकमस्म हृदयको उत्तेजित करती है, किंतु यह कार्य कुचलेके माफिक या कपूरके माफिक उत्तेजक नहीं है। अभ्रकमस्मसे हृदयके स्नायुपरमाणुओंको ताकद आ जाती है। जहाँ जहाँ परमाणुओंकी ताकद कम हो गयी हो वहाँ २ अभ्रकमस्म देनी चाहिये। हृदयके विकारसे जब सूजन पैदास होती है तब भी अभ्रकमस्मसे फायदा होता है।

पेट की अशक्ततासे या पित्तोत्पादक पिंड की अशक्ततासे पित्त का स्राव कम होता है और एक तरहका अपचन (बदहजमी) का

विकार होता है। इसको अशक्तताजन्य ( अशक्ततासे पैदा होनेवाला ) अपचन या अग्रिमांद्य कह सकते हैं, इस अग्रिमांद्यमें अभ्रकभस्म देनेसे पित्तोत्पादक पिंड को और आंतोको शक्ति आ जाती है और यह पुराना विकार हट जाता है। असृचि या भोजनका स्वाद न समझना इस विकारमें भी आंतोका विकार या अशक्तता कारण होती है। विशेषतः यह उपद्रव दूसरे विकारोंके बाद हो जाता है, क्षय, पांडु, कामला इत्यादि विकारोंके बाद अरुचीका उपद्रव हो तो उसमें अभ्रकभस्म जरूर देनी चाहिये। अम्लपित्तका विकार पुराना हो गया हो और उसमें सूतशेखरादि आयुर्वेदीय औषधोंसे कुछ फायदा न होता हो तो अभ्रकभस्म देनी चाहिये। अम्लपित्तके विकारमें बारबार कै करनेकी इच्छा होती है, पेटमें दर्द होता है और वमनमें खूनभी गिरता है। मांसार्बुद ( Cancer ) का विकार न हुवा हो तो अभ्रक-भस्मसे फायदा होगा। पेट का आकार बढ़ जानेसेभी कभी कभी वमन ( कै ) होती है। इसमेंभी वंगभस्म और अभ्रकभस्म देना चाहिये।

क्षयजन्य अतिसारमें भी दूसरे जन्तुघन औषधोंके साथ अभ्रक-भस्म देनी चाहिये। नीचे लिखी दवाइओंका भिशरण देनेसे फायदा होगा—अभ्रकभस्म, मौक्किकभस्म, शंखभस्म और कपर्दिकभस्म।

दूसरे भी पुराने और कष्टकारक अतिसार होते हैं, इनमें आंतोकी अशक्तता होनेसे बहुत दिनोंतक ये विकार बने रहते हैं। इस कारणसे शरीरभी दुबला पतला हो जाता है। धातुपरिपोषण कार्य ठीक ठीक नहीं होता। इस प्रकारके अतिसारमें आंतोंके स्नायु कमज़ोर होते हैं और वे बिलकुल रु के माफिक मुलायम हो जाते हैं। इनसे भलका धारणा भी नहीं हो सकता और बारबार, पतलीसी और थोड़ी थोड़ी टट्टी आती है। इसमेंभी अभ्रकभस्मसे फायदा होगा। ( सुवर्णमालिनी बसंत, सुवर्णपर्पटी देखिये )।

ग्रहरानीकी अशक्ततासे कई दिनोंतक चलते हुवे संग्रहरानीके विकारमें अभ्रकभस्मसे फायदा होगा। विशेषतः इसमें अंतर्ब्रह्म होनेसे बारबार खून गिरता हो तो अभ्रकभस्मसे जरूर फायदा होगा।

पेटमें रसवाहिनी और रसोत्पादक पिंड के विकारसे या उनके कार्यमें कुछ हरकत आनेसे पेटमें ग्रंथि ( गांठ ) बढ़ जाती है। इसमेंभी शूल ( दर्द ) रहती है किंतु वह मंद और कायम रहती है। इसके साथ ज्वरभी रहता है। रोगी अशक्त होता है। बद्धकोष [ कद्जियत ] और अपचन येह उपद्रव हो जाते हैं। इसमें भी अभ्रकभस्म देनी चाहिये।

लघुग्रहणी, तिर्यक्ग्रहणी और मध्यमग्रहणी की अशक्ततासे कव्जियत पैदा होती है। इसमें ग्रहणीका मल निकालनेका कार्य अच्छी तरह नहीं हो सकता। मल अंदरही रह जानेसे, उसमेंसे नावाजवी अपायकारक चीजें रक्तमें खींची जाती हैं। इससे रक्तादि धातु विगड़ जाते हैं। और इसका परिणाम चमडीपर और अंतस्त्वचापर भी होता है। इससे वारवार मुँहमें छाले आते हैं। हाथके ऊंगलीयोंपर लाल लाल चट्टे आते हैं। जब यह विकार खुराना होता है तब उसका स्वरूप भयानक होता है। इसमें अभ्रकमस्म देनी चाहिये।

मस्ति याने पेशावके थैली की अशक्ततासे, या अवरोधक स्नायु-ओंकी अशक्ततासे बून्द बून्द पेशाव चालू रहता है। कुछ भी पेशाव थैलीमें भर जाय तो उसको जल्द निकालने की इच्छा होती है। इसमें अभ्रकमस्मसे अच्छा लाभ होता है। पुराने सूत्रकृच्छ्रमें भी इसका उपयोग होता है। पेशावमें वारवार खूनका गिरना भी बंद हो जाता है। मधुमेहके विकारमें शरीरके घटे हुवे परमारा अभ्रकमस्मके सेवन से बढ़ते जाते हैं। इस विकारमें अभ्रकमस्मके साथ शिलाजीति, जामुनका बीज इनमेंसे एक या रोगीकी प्रकृति और दोष देखकर दूसरी दवाइयां मिलाना चाहिये। इससे मधुमेहका विकार हट जाता है, और रोगीको आराम रहता है। ( वसंतकुसुमाकर, पुष्पधन्वा, देखिये )।

भानसिक आघातसे या वातवाहिनिओंको ( नसोंको ) अधिक परिश्रम होनेसे नपुंसकत्व पैदा होता है। इसमेंभी अभ्रकमस्म देनी चाहिये। अभ्रकमस्मसे जननेन्द्रियके स्नायू जननेन्द्रियके परमारा और जननेन्द्रियको चेतन करनेवाली नसें और उनका मस्तिष्कमें स्थान, इन सब अवयवोंको शक्ति आ जाती है और नपुंसकत्व नष्ट होता है। यह अभ्रकमस्मका विशेष गुरा है।

**अभ्रकमस्म—**बढ़िया रसायन, वृष्य, मेधाजनक और योगवाही है। रसादि धातु तथ्यार करनेमें अभ्रकमस्मसे सहाय्य होता है। अभ्रकमस्मका वृष्य कार्य ( कामवर्धक कार्य ) वस्ताण्डके समान जल्द नहीं होता है। क्योंकि खर्ब धातुओंके परिपोषणसे यह कार्य होता है और इसी बजह यह परिणाम कायम रहता है। अभ्रकमस्मका योगवाही कार्य तीन तरहसे होता है।— ( १ ) दूसरे औषधोंका गुणावर्धन करना, ( २ ) उनमेंसे दोष निकालना और दोष निकालनेके समय उनके गुणा कायम रखना, और ( ३ ) दोष कम करनेके समय गुणाको बढ़ाना। इस योगवाही गुणाके कारण अभ्रकमस्म कई नुश्खेमें शामिल किया गया है। ये अभ्रकयुक्त नुश्खे बहुत शर्तियां दवाइयां हैं।

अभ्रकभस्मका कार्य औषधोंके संयोगसे कभी कभी मंद ( बहुत दिनोंतक चलनेवाला ) किया जाता है तो कभी कभी तीव्र हो जाता है. जैसे-लक्ष्मीविलास गुटी में कपूर आदि दवाइयोंके साथ मिलानेसे अभ्रक का कार्य तीव्र और जल्द हो जाता है. किंतु आरोग्यवर्धिनी में ताम्र आदि दवाइयोंके साथ मिलानेसे अभ्रक का कार्य धीरेसे होता है. लक्ष्मीविलास गुटी उसमें अभ्रकभस्म रहनेके कारण उत्तेजक होती है, तो आरोग्यवर्धिनी उसही अभ्रकभस्म से धातुपरिपोषकी या पूर्व धातुसे पर धातु बनानेवाली होती है. जैसा एक औषधके परिमारासे नुश्खेके गुण में फर्क होता है वैसाही द्रव्यसंयोगकी भिन्नतासे फर्क होता है.

**अभ्रकभस्मका कार्यः—**मस्तिष्क, वातवहमंडल, वातवाहिनी ( नसें ), फैफडे, हृदय और सर्व शरीरके परमाणु इनको ताकद देनेका, नये बनानेका और उनका क्षोभ कम करनेका कार्य अभ्रक-भस्मसे होता है.

**दोष और दूष्यः—**कफ और वात दोषके दुष्टीसे और रस, रक्त, मांस और अस्थि इन धातुओंके (दूष्योंके) विकारोंमें अभ्रकभस्म से फायदा होता है.

अभ्रकभस्मका कार्य जल्द होनेकी इच्छा हो तो उसे शहद के साथ खूब घोटना चाहिये. घोटनेसे उसके सूक्ष्मतम परमाणु बनते हैं. ये परमाणु आंतोकी अंतस्त्वचासे जल्द खींच लिये जाते हैं और रक्त में मिश्र होते हैं. इसी बजाह अभ्रकभस्मका कार्य धातुपरिपोषणाक्रम और अंतःस्नाव वढानें में अच्छा होता है.

**अभ्रमभस्मके प्रमुख कार्यः—**( १ ) तरल और तरल-तर ( सूक्ष्म ) परमाणु बनानेमें सहाय्य करना, ( २ ) शरीरके इंद्रियोंको ताकद देना, ( ३ ) उनको पोषक द्रव्य पहुंचाना, ( ४ ) वातवाहिनीओंका क्षोभ कम करना, ( ५ ) खायुओंकी नाताकती, इंद्रियोंकी दुर्बलता, ज्ञानतंतुओंकी कमजोरी नष्ट करके शरीरसंचालक प्राणा को उत्तेजित करना; और ( ६ ) सर्व इंद्रियसमूहको अपने अपने कार्य करनेकी शक्ति देना.

अभ्रकभस्मसे कभी नुकसान हुवा देखा नहीं. कभी कभी नाड़ी जल्द चलने लगती है तो कभी नाड़ीका जोर ( Pressure ) बढ़ जाता है. कुछ दिन अभ्रकभस्म बंद करनेसे ये लक्षण कम होते हैं. अभ्रक-भस्मके साथ मौकितक भस्म देनेसेमी ये लक्षण कम हो जाते हैं.

अनुपानः—जिन दूसरी द्वाइयोंके साथ यह दवा दी जाती है उनको अनुपान कहते हैं। ( जैसे शहद या आदेका रस ) अभ्रकभस्म कई अनुपानोंके साथ दी जाती है। उनकी योजना दोषदूष्यके विचारसे होनी चाहिये।

[ अभ्रकको अंग्रेजीमें—Mica और कृष्णाभ्रकको—Biotite कहते हैं। रसायन या पृथक्करण शास्त्रके दृष्टिसे अभ्रक—Double silicate of Alumina and Potas ( Sodium ) है। कभी कभी इसमें लोहा ( Iron ) और मैग्नेशिया भी पाया जाता है।

श्वेताभ्र— $K_2O$ , ३  $Al_3O_3$ , ४  $SiO_2$ —( पोटैशियम ओक्साइड, ३ अल्युमिनियम ओक्साइड, ४ सिलिकॉन ओक्साइड )。

कृष्णाभ्र—( बज्जाभ्र )—३  $MgO$ ,  $Al_2O_2$ , ३  $SiO_2$  ( ३ मैग्नेशियम ओक्साइड, अल्युमिनियम ओक्साइड और ३ सिलिकॉन ओक्साइड ), कृष्णाभ्र में कुछ थोड़ा हिस्सा लोहा भी पाया जाता है।

श्वेताभ्र—Muscovite ( मस्कोब्हाइट ) Potash mica.

कृष्णाभ्र—Biotite ( वायोटाइट ) Ferromagnesium mica..

अभ्रकभस्मका रासायनिक पृथक्करण—(१) सिलिका, (२) लोह, (३) अल्युमिनियम, (४) पोटैशियम, (५) मैग्नेशियम।

## २ कपदिका भस्म। ( कौड़ीकी भस्म )

सेवन का प्रमाण—१ से २ रत्ती।

कौड़ी तीन प्रकारकी मिलती है। सुफेद, पीली और शोणा ( बड़ी कौड़ी ) भस्म तय्यार करनेके लिये या दूसरे नुश्खेमें डालनेके लिये पीली कौड़ी लेनी चाहिये। पीली कौड़ीमेभी वजनसे भारी, मध्यम और हल्की कौड़ी होती है। डेढ़ तोला वजनकी कौड़ी श्रेष्ठ, एक तोला वजनकी कौड़ी मध्यम और पौना तोला वजनकी कौड़ी कनिष्ठ मानी जाती है।

कपदिका शुद्धि—( १ ) कौड़ी, छाँछ, आंबीलोनाका रस या नीमूका रस इनमें आठ दिन तक भिगोना चाहिये। फिर वे सफेद होनें

१ वराटिका विधा प्रोक्ता श्वेता, शोणा विधापरा ।

पीता...

॥ आयुर्वेदप्रकाश।

२ सार्धनिष्कभरा श्रेष्ठा निष्कभारा च मध्यमा ।

पादोननिष्कभारा च कनिष्ठा परिकीर्तिता ॥ रसरत्नसमूच्य।

तक उनको अम्ल पदार्थोंकी भावना देनी चाहिये. इसके बाद साफ धोनेसे वे शुद्ध हो जाती हैं.

( २ ) कांजीमें एक प्रहरपर्यंत पकानेसे कौड़ी शुद्ध होती है.

कपर्दिका भस्म बनानेकी रीतः—( १ ) शुद्ध कौड़ीको गजपुट देनेसे वह औरभी सफेद होती है. फिर इसका चूर्ण करते हैं. यह कपर्दिका भस्म है.

( २ ) शुद्ध कौड़ीको गजपुट देनेके बाद, इसका चूर्ण करना चाहिये. फिर इस चूर्णको धीगुवारके रससे और नीमूके रससे सात भावना देनी चाहिये. हरएक भावनाके बाद गजपुट देना चाहिये. इससेभी अच्छी कपर्दिका भस्म तय्यार होती है.

कपर्दिका भस्म तय्यर होनेके बाद उसका रंग विलकुल सफेद ( बगलेके परके माफिक ) होता है.

ग्रंथोक्त गुराधर्मः—

परिगामादि शूलघ्नी ग्रहणीक्षयनाशिनी

कटूषणा दीपनी वृद्ध्या नेत्र्या वातकफापहा ॥ रसरत्नसमुच्चय।

कपर्दिका हिमा नेत्रे हिता स्फोटक्षयापहा ।

कर्णाश्वावाश्विमांघ्नी पित्तास्तकफनाशिनी ॥ आयुर्वेदप्रकाश।

कपर्दिकाभस्म यह एक चूनेका सेन्द्रिय कल्प है. यह सेन्द्रिय होनेके कारण निरिन्द्रिय द्रव्योंसे जल्द और आसानीसे शरीरमें फैलता है. कौड़ी यह एक प्राणीका घर है. और यह घर, वह, शरीर-कीड़ेके शरीरमेंसे एक रस निकलता है. उससे बना दुआ है. इस लिये कौड़ीमें सेन्द्रियत्व है.

कौड़ी, शंख और शुक्रि ( सीप ) ये सब एकही वर्गके हैं. इनके भस्म पेटमें स्वादुता पैदा करते हैं. इनमेंसेभी यह गुरा कपर्दिका भस्म

१ वराटी तक्रचांगेरीजंबीराणां रसे शुभे ।

प्रक्षिप्य भावयेत्तावद्यावच्छुङ्गा न पश्यति ।

पश्चाद्वृद्धत्य गृह्णीयाद्वाराटीं शुद्धिमागताम् ॥ रसरत्नाकर।

२ वराटा- कांजिके स्विन्ना यामाच्छुद्धिमवान्तुशु ॥ आयुर्वेदप्रकाश।

३ अंगाराग्नौ स्थिता धमाता सम्यक्प्रोत्कुलिता यदा ।

स्वाडगशीता स्मृता सा तु पिष्ट्वा सम्यक्प्रयोजयेत् ॥ आयुर्वेदप्रकाश।

४ वृद्धैव्याधार. [ ग्रंथोमें कभी कभी वैद्योंकी औषधी बनानेकी पद्धति नहीं दी जाती है. ऐसी पद्धति कभी कभी आजकलके प्रचारमें पायी जाती है किंतु ग्रंथोमें नहीं मिलती है इसका ग्रंथाधार नहीं लिख सकते हैं. केवल वृद्ध वैद्योंकी प्रथा यह ही एक आधार है. इसलिये “वृद्धैव्याधार” जिखा है. ]

में अधिक है. कोष्ठगत वातके बृद्धीसे पेटका फूलना, पेटमें दर्द और शूल, खाना खायें तो वह जैसा एकही जगह पर अटका हुवासा मालूम होना, डिकारै आना, वे कभी कभी सूखी तो कभी कभी खट्टी आती है, जी मचलाता है, कभी वातकारक, भारी या तले हुवे पदार्थ खायें तो वे लक्षण बढ़ जाते हैं और अजीर्ण होता है. इस हालतमें कपर्दिका भस्म देनी चाहिये. इसी रोगमें कै ( उलटी ) ज्यादा हो और हरएक उलटीके साथ पेट अधिक फूलता हो और उसके साथ पेटका शूल भी अधिक हो तो कपर्दिकाभस्मके साथ दांडिमावलें ह ( अन्नारक पाक ) देना चाहिये.

**रसाजीर्णकी आदतमें भी कपर्दिकाभस्म एक अच्छा इलाज है.**

वात, पित्त या वातपित्त के विकारसे पैदा हुवा परिग्रामशूल कपर्दिकाभस्मसे हो जाता है. उंदुक और पित्तधंरा कला इन दोनों अवयवोंमें विकृति होनेसे परिग्रामशूलका विकार होता है. कपर्दिकाभस्मसे पित्तविकृति कम होती है और उंदुकमें ( Duodenum ) जो छाले पड़ जाते हैं वे, पुराने और बढ़ गये न हो तो, कम हो जाते हैं. यहां कपर्दिकाभस्मका ब्रारोपक कार्य होता है.

अक्षद्रवाख्यशूलमें भी कपर्दिकाभस्मसे फायदा होता है. इस शूलमें वातप्रकोपसे आनाह ( पेटका फूलना और दर्द ) हो तो कपर्दिकाभस्म और शंखभस्म मिलाकर देना चाहिये.

अम्लपित्तकी प्रथम अवस्थामें खट्टी और फेनयुक के ( बंमेन ) होती है. इस अवस्थामें कपर्दिकाभस्म देनी चाहिये. कपर्दिकाभस्म के साथ सुवर्णमाल्किभस्म दे तो और फायदा होगा.

अहरी रोगके शुरूमें या आमातिसारमें आमिका पर्चन करनेके लिये कपर्दिकाभस्म देना अच्छा है. प्रथम एक दो दिन लंघन देनेके बाद आमपाचन करना चाहिये. कपर्दिकाभस्म अकेली दे सकते हैं. नहीं तो जिनमें कपर्दिकाभस्म मिलाई है ऐसे नुश्के भी दे सकते हैं. जैसे-जातीफलादि गुटिका, प्रमदानंद रस इत्यादि. जातीफलादि गुटिकामें अफीम और जायफल इन दोनों औषधियोंका तीव्र स्तंभक कार्य है, इसलिये जातीफलादि गुटिकाका इलाज सोचमोचके करना चाहिये. आमातिसार और अहरी, इनमें शूल अधिक हो, और वह आमजन्य हो तो कपर्दिकाभस्मसे आराम होगा. अहरीरोग पुराना हो गया हो तो कपर्दिकाभस्मसे उसमें कुछ फायदा नहीं होता. विशेषतः आम और रक्त के साथ टट्टी आती हो तो कपर्दिकाभस्म न देना अच्छा है.

ग्रहणीकी प्रथम अवस्थामें भी आम और रक्त हो तो कपर्दिकाभस्म न देनी चाहिये। अगर देवे तो दूसरे स्तंभक और रक्तप्रसादक द्रव्योंके साथ देवे।

रसक्षयकी प्रथम अवस्थामें कपर्दिकाभस्म देते हैं। विशेषतः विल-कुल कम खानेसे भी अन्नका पचन न होना, मीठी भीठी डिकारें आना, उसमें बदबू होती है और कञ्जियत भी होती है। इन लक्षणोंमें कपर्दिकाभस्मसे फायदा होता है।

रक्तपित्त और क्षतक्षयके विकारमें कपर्दिकाभस्म, प्रवालभस्म और सुवर्णगैरिक (सुवर्णगेरु) का मिश्रण देते हैं। इसमें जो चूनेका अंश रहता है उससे और माधुर्योत्पादक गुणसे रक्त और रक्तवाहिनिओंका स्तंभन होता है और खून गिरना बंद होता है।

पुराने आश्रिमांद्यमें (वदहज्मी) कपर्दिकाभस्म धी के साथ या दूसरे पाचक द्रव्योंके साथ दी जाती है। जीर्णज्वर और छीहा, बृद्धिमें भी आश्रिमांद्य हो, तो कपर्दिकाभस्मसे फायदा होगा।

कर्णाश्वाव (कानमेंसे पानी निकलना) में जब वह श्वाव गाढ़ा-तीक्षण और फुनिया उठानेवाला होता है तब कपर्दिकाभस्म देनी चाहिये। प्रथम कानमें कपर्दिकाभस्म थोड़ीसी डाल दें और इसके ऊपर सिद्ध तैल या मीठा तैल छोड़ें। कपर्दिकाभस्म दूधके साथ पेटमें भी लेते हैं।

चमड़ीके जलनपरभी कपर्दिकाभस्मका जल्द असर होता है। कपर्दिकाभस्म, मुरदाङ्गसिंग, सुवर्णगेरु, गिलोयका सत्त्व, चंदन और बंसलोचन समभाग और इसमें अंडीका तेल डालके अच्छी तरह खरल करो। यह मरहम सुलायम ब्रशसे या रुईसे जली हुवी चमड़ीपर लगाना चाहिये। यहांतक के चमड़ीके ऊपर एक गाढ़ा लेप हो। जैसा जैसा यह लेप लगाया जाता है वैसाही आराम पड़ जाता है। जलन बंद होती है और बाद फोड़ेभी नहीं ऊठते हैं। चमड़ी विलकुल पहलेके माफिक हो जाती है।\*

कपर्दिकाभस्म के गुणधर्म—पित्तशामक, विशेषतः पित्तकी अम्लता अधिक हो तो कम करना, कोष्ठस्थ वातनाशक, शूलम्र और पाचक।

कपर्दिकाभस्मका कार्य—यकृत, छीहा, आमाशय और ग्रहणी इन अवयवोंपर होता है।

\* यह लेप अहमदनगर में आयुर्वेद महाविद्यालयके चिकित्सामंदिरमें कहा रोगियोंपर अजमाया गया है।

दोष और दूष्य—पित्तदोष; रस और कभी कभी रक्त.

कपर्दिकाभस्म लेनेसे कभी कभी मूँहमें छाले पड़ते हैं. तब उसमें गिलोय का सत्व मिलाना चाहिये.

### ३. कासीसभस्म ( पुष्पकासीस की भस्म )

प्रमाणा—१ से २ रक्ती.

कासीस दो प्रकारका होता है. बालुका कासीस और पुष्पकासीस. बालुका कासीस को पांसुकासीस भी कहते हैं. भस्म बनानेके लिये पुष्पकासीस लेना चाहिये।

कासीस शुद्धि:—

( १ ) भंगराके रसमें भिगानेसे कासीस शुद्ध होता है.<sup>२</sup>

( २ ) पित्त या आर्तव में भिगानेसे कासीस शुद्ध होता है.<sup>३</sup>

कासीस का भस्म बनानेकी रीतः—

( १ ) क्षारोंसे कासीस का मारणा करके अम्लद्रव्योंकी सात भावना देनी चाहिये. हरएक भावनाके बाद एक एक पुट देना चाहिये. इससे कासीसकी भस्म बन जाती है.<sup>४</sup>

( २ ) गंधक से भी कासीसका मारणा हो सकता है.<sup>५</sup>

कासीसका रंग किंचित् लाल और काला होता है.

अंथोक्त गुराधर्मः—

.....सोप्तां कथायाम्लमतीव नेत्र्यम् ।

विषानिलश्लेष्मगद्वराधनं श्वित्रक्षयधनं कचरंजनंच ॥

बलिना हत कासीसं कांतं कासीसमारितम् ।

उभयं समभागंहि त्रिफलावेल्लसंयुतम् ।

विपमांशाद्वृतक्षौद्रप्लुतं शारामितं प्रगे ।

सेवितं हन्ति वैगेन श्वित्रं पाण्डुक्षयामयम् ।

गुल्मपूर्णहगदं शूलं मूलरोगं विशेषतः ।

रसायनविधानेन सेवितं वत्सरावधि ।

आमसंशोषणां श्रेष्ठं मन्दाग्निपरिदीपनम् ।

पलितं वालिभिः सार्थं विनाशयति निश्चितम् ॥ रसरलसमुच्चय ॥

१ कासीसं बालुकादेकं पुष्पपूर्वमिथाऽपरम् ।

पुष्पादिकासीसमतिप्रशारतम् । रसरलसमुच्चय.

२ सकृद्भूंगाम्बुनाक्षिक्कं कासीसं निर्मल भवेत् ॥ (,,)

३ कासीसं शुद्धिमानोति पित्तैश्च रजसा लिया ॥ (,,)

४ क्षाराम्लमर्दितं धमातं सत्व मुञ्चति निश्चितम् ॥ (,,)

५ बलिना हतकासीसम् । (,,)

कासीसद्यमम्लोषां तिक्तंच तुवरं तथा ।  
 वातश्लेष्महरं केद्यं नैव्यं कण्डूविषप्ररुत् ।  
 मूत्रकृच्छ्राश्मरीश्वित्रनाशनं परिकीर्तितम् ॥ आयुर्वेदप्रकाश.

कासीस के माने हिराकस (कसीस) का भस्म. यह उषणा, कपायरसात्मक, अम्ल और नेत्रविकारकों फायदेमंद औषध है. इस भस्मके गुणोंमें कपायरस का अधिक उपयोग होता है. आंखके विकारोंमें-विशेषतः अभिष्यंद पूयाभिष्यंद (आंख का आना), नेत्रवरण, नेत्रकनीनीवरण इत्यादि विकारोंमें पुष्पकासीसका भस्म फायदा देती है. यह भस्म और शतधौतघृत मिलाके अच्छा खरल करो तो एक उत्कृष्ट नयनांखन बन जायेगा. इसमें जो कपायरस होता है उसका रक्तप्रसादक कार्य जल्द नजर आता है. नेत्रविकारमेंभी इसी रक्तप्रसादक गुणके कारण फायदा होता है. यह रक्तप्रसादन मुलायम चमडीपर न्या कोमल इंद्रियोंपर भी अच्छी तरह हो सकता है.

कासीसभस्म आमका संशोषण करती है और मंदायी (बदहज्मी) को हटा देती है. पाचक अशीको बढ़ाती है. रसायनविधि से कासीस-भस्मका दी और शहद के साथ सेवन करनेसे बहुत फायदा होता है. केवल कासीसभस्मसे भी आमपाचन होता है. पचनेन्द्रियमें या पचनेन्द्रियके समीपके विभागमें, रक्तधातूमें विकार हुवा हो, या इन इंद्रियोंको रक्त कम पहुंचाया जाता हो तो उससे भी बदहज्मी और आम पैदा हो सकता है. आम या बदहज्मीके कारणोंमें रक्तका कम होना यहभी एक कारण है. रक्त यह पित्तधातूका आधार है. पित्त रक्तके आश्रयसे रहता है. रक्त कम होनेके कारण पित्तधातूले पाचकपित्त कम प्रमाणमें तथ्यार होता है. कासीसभस्मके सेवनसे इस रक्तकी भरपाई की जाती है.

कासीसभस्म अशीको प्रदीप्त करती है. जब अन्नरसमें पचन करनेकी ताकद कम हो तब पचनेन्द्रियोंको उत्तेजित करके पाचकरस पूर्ववत् तीव्र करनेका कार्य कासीसभस्मसे होता है. अन्नके पचनकी क्रिया पचनके इंद्रियोंमेंसे जो भिन्नभिन्न रस पाये जाते हैं उनकी और रसायन द्रव्योंकी सहायतासे होती है. यह कार्य पित्तधातूकी मददसे होता है. कासीसभस्मके सेवनसे पित्तधातूका विकार नष्ट होता है और पित्तधातू नियमित काल और प्रमाणसे वहता है. और इसका असर-सर्व पचनेन्द्रियोंपर और पाचक रसोंपर हो जाता है.

कासीसभस्मसे आम नष्ट होता है. इसलिये आमजन्य अजीर्णा या पुराना अजीर्णका विकार या उनमेंसे पैदा होनेवाले दूसरे विकारोंमें

कासीसभस्मसे आराम मिलता है। जबानीमेंही चमड़ीका सूख जाना (वली) या शिरपर टक्कल (पलित) होना ये विकार कासीसभस्मसे कम होते हैं। उम्र कम होनेपरभी बालोंका सफेद होना और बुढापनसा मालूम हो तो कासीसभस्म देनी चाहिये। इन विकारोंमें कासीसभस्मके साथ कांतलोहभस्म, त्रिफलाचूर्ण, शहद और धी, अवस्थाभेदसे भिन्नभिन्न प्रमाणामें देनेसे वे विकार नष्ट होते हैं।

बहही नुश्खा पांडुरोगकी प्रथम अवस्थामें, विशेषतः वारवार; अजीर्ण होनेसे पांडुता प्राप्त हुई हो तो, अच्छा काम होगा।

‘धातुगत पचन’ के माने यह है कि रस या रक्तके जारिये अपने अपने जरूरतके परमाणू खींचकर सब धातू अपना आकार बढ़ाते हैं। यह पचनकी प्रवृत्ति प्रत्येक धातूमें रहती है। यह पचन कम होनेसे वह धातूभी कम होता जाता है। इस विकारमें क्षयरोगके कीड़े जरूर मिलेंगे ऐसा नियम नहीं है। क्षयरोगके कीड़े न हो तो कासीसभस्मसे जरूर फायदा होगा। विशेषतः उपर लिखे हुवे नुश्खेसे अधिक फायदा होगा।

बातज गुल्म और शूलके विकारमें कासीसभस्म देते हैं। यह कार्य-भी अग्निप्रदीपन होनेसे गुल्मका पचन होनेपर सफल होता है। साथ-साथ शूल भी नष्ट होता है।

ग्रहणीके विकारमें जो सेन्ड्रिय विषार निर्माण होते हैं उनको नष्ट करनेवाली कई दवाइयाँ हैं। इनमेंसे कासीसभस्म भी एक अच्छा इलाज है। ये दवाइयाँ दो प्रकारकी होती हैं। जैसे—आरोग्यवर्धिनी, कप-र्दिकाभस्म, ताम्रभस्म इत्यादि दवाइयाँ उष्णा, तीक्ष्णा और रसायन होती हैं। दूसरी कासीसभस्मके माफिक कषायरसात्मक, शामक और रसायन होती हैं। विशेषतः सेन्ड्रिय विषारोंसे जलन पैदा होती हो तो इन शामक दवाइयोंका कार्य अच्छी तरह होता है। जलन के साथ पेटका फूलना, वायूका निस्सरण न होना, वायूके संचयसे पेटमें आवाज होना इत्यादि लक्षण हो तो दूसरे दवाइओंकी अपेक्षा कासीसभस्मसे अधिक काम होगा।

पुराने निजबग्ना (फोडे, फुन्सी) में कभी कभी कासीसभस्मसे फायदा होता है। विशेषतः रक्त और मांस धातु दूषित हुवे हो और पित्त दोष बढ़ गया हो तो यह एक पेटमें देनेका इलाज है। बाहरसेभी दूसरी दवाइयाँ लगाना चाहिये। विशेषतः फोडेमें जलन हो और फोडेके किनारेपर छाले या छोटी छोटी फुँसिया हो, वे बिलकुल लाल-

रंगकी हो और स्वावके साथ खून निकलता हो तो बाहर लगानेके दबाइश्रोंके साथ पेटमें कासीसभस्म देनी चाहिये।

नेत्रगत ब्रह्म—विशेषतः आंखके माडी (कनीनी) पर ब्रह्म हो तो—कासीसभस्म आंखमें और पेटमेंभी देनी चाहिये।

कासीसभस्मका विशेष गुरुा—रक्तके रक्तपरमारु बढाना।

दोष—दात, और कफ।

दूष्य—रस; रक्त और रक्तपरमारु।

स्थान—यकृत्, पूर्णि, आमाशय, ग्रहणी और नेत्र।

कासीस भस्मसे कभी कभी जी मचलाता है और कै होती है।

#### ४ जसदभस्म (जसत की भस्म या पुष्पांजन की भस्म)

प्रमाणा ३ से २ रत्ती।

जसदके दो प्रकार होते हैं। एक जसद और दूसरा शबक।<sup>१</sup>

जसदकी शुद्धि—

(१) जसद गरम करके (उसका पानी होता है) दूधमें डालनेसे शुद्ध होता है। वह दूधमें डालते वर्षत छानना चाहिये और इस तरह इक्कीस बार दूधमें डालना चाहिये।<sup>२</sup>

(२) जसद गरम करके तेल, छांछ, गोमूत्र, कांजी और कुलथी के काढ़ेमें सात सात बार डालनेसे शुद्ध होता है।<sup>३</sup>

(३) जसद गरम करके विजोराके रसमें सात बार डालनेसे शुद्ध होता है।<sup>४</sup>

(४) मनुष्यका मूत्र, घोड़ेका मूत्र, छांछ या कांजी में जसदका पानी डालनेसे जसद शुद्ध होता है।<sup>५</sup>

जसदकी भस्म बनानेकी रीतः—

(१) जसदके वजनसे चौथा हिस्सा शुद्ध पारा और शुद्ध गंधक लेकर उन दोनोंको प्रथम धीकुमारके रसमें और बादमें नीमूके रसमें

१ खर्पर द्विविधं प्रोक्तं जसदं शबकं तथा ॥ ग्नचडाशु

२ जसदं गालयेस्युवे द्वाधमाव्ये तु हालयेत ॥

एकविंशतिवारांश्व. खर्परः शुद्धिमान्तुपाद ॥ (,,)

३ तैले तक्रे गवांमूत्रे काञ्जिके च कुलात्मिके।

सप्तधा सप्तनिर्वापाद् सर्वलोहं विशुद्ध्यति ॥ योगरत्नाकर।

४ खर्पर परिसंतप्त सप्तवारं निमज्जित,

बीजपूरसस्यान्तर्निर्मलत्वं समशुते ॥ रसरलसमुच्चय

५ चूमूत्रे वाऽश्वमूत्रे वा तक्रे वा काञ्जिकेऽथवा।

प्रताप्य माजितं सम्यक् खर्परं परिशुद्ध्यति ॥ रसरलसमुच्चय

खरल करके इनसे जसदके छोटे छोटे पतले ढुकडे को लेप करो और शराव संपुष्टमें डाल कर इसको गजयुट देओ। इससे जसदकी भस्म बन जायेगी।<sup>१</sup>

(२) जसदके ढुकडे बनाके उनको एक प्रहर तक अफीमके पानीमें या हींगके पानीमें रखें। बाद लोहेके कढाईमें या खपरेमें रख-कर अग्निपर चढाओ। जब पिघल जायेगा तब लोहेके डावसे (चमचेसे) दो घंटे तक हिलाओ। जसदकी अच्छी भस्म बन जायेगी।<sup>२</sup>

(३) जसद गरम करके जब पिघल जाय तब उसमें मालकांगनी का पंचांग (पत्ते, फूल, फल, मूल और छाल) डालकर, उसको लोहेके डावसे अच्छी तरह घोटो। पीले रंगकी जसदभस्म बन जाती है।<sup>३</sup>

इन सब रीतिसे बनाये हुवे भस्ममें धातुका चूर्ण तो बन जाता है। तब भी वह सेन्द्रिय शरीरमें अच्छी तरहसे नहीं खींचा जाता है। भस्मको सेन्द्रियथत्व प्राप्त होनेके लिये, इसको खानेके नीमूके रससे, हल्दीके काढेसे और धीकुमारके रससे प्रत्येक १४।१४ बार भावना देनी चाहिये। हरएक भावनाके बाद अग्निपुष्ट देना चाहिये और अग्निपुष्टके बाद खरलमें अच्छी तरह मर्दन करना चाहिये।

भस्म अच्छी बनी या नहीं इसकी परीक्षा यह है कि उसमें ऑसिड या नीमूका रस डालने पर उसमे कुछभी विकृति नहीं होती है। उसमे फैन नहीं आता और उसका रंगभी नहीं बदलता। वह निश्चित होती है। ऐसी भस्म शरीरमें अच्छी तरह फैलती है। अच्छा मर्दन (खरल) हुवों

१ जसदस्य चतुर्थांशं पारदं गंधकं तथा ।

मर्दयेत्सल्वके सम्यक् कन्यानिवृत्तरसे पृथक् ।

लेपयेत्तेन पत्राणि गजाह्वे पाचयेत् पुटे ।

एकेनैव पुटेनैव भस्मसाज्जसदं भवेत् ॥ रसचडाशु ॥

२ जसदं कणाश कृत्वा यामैकमवगाहयेत् ।

आहिकेनजले किंवा रामठस्थोदकेऽपि वा ।

तदोद्धृत्य खरांगारे खर्षरे गालयेन्द्रिष्ठक् ।

घर्षयेष्टोहदवर्याऽथ भस्म स्यात्थटियुग्मतः ॥ रसचडाशु ॥

३ वृद्धवैयाधार। (मालकांगनीके छोटे छोटे रोपे होते हैं। उनके पत्ते गहरे हरे रंगके और डंडा तुलसीके डंडेके मांकिंग द्वयोंह रंगको होता है। फूल छोटे और सफेद रंगके होते हैं और फल युंडनाके फलके समान छोटा और गोल, पहले हरे रंगकों और पकनेसे लाल और पीले रंगका होता है। फलमें कालासा बीज रहता है। उसका तेल निकालते हैं तेल पीले रंगका होता है और इसको हमारे मुळुखमें “किंकणेल” कहते हैं।

या नहीं यह पहचाननेके लिये भस्म पानीमें छोड़ दो. अच्छी भस्म पानीमें तैरती है.

यह भस्म पीले रंगकी या थोड़ी लाल रंगकी बन जाती है. खाप-रियामें मिट्टीका मिश्रण अधिक रहता है. ऐसा जसदभस्ममें नहीं होता. जसदभस्म शुद्ध और बनस्पतीमारित होनेसे उसमें अधिक गुण पाये जाते हैं. हम सुवर्णामालिनीवसंतमें भी जसदभस्म डालते हैं.

जसदभस्म का रंग पीली मिट्टीके समान रहता है.

ग्रंथोक्त गुराधर्मः—

जसदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफपित्तनुत् ।

चाक्षुप्यं परमं मेहपांडुश्वासं च नाशयेत् ॥ रसचंडागु.

कच्चे जसदभस्मके दोषः—

अपक्वं जसदं रोगान्प्रमेहाजीर्णमारुतान् ।

वमिं भ्रमं करोत्येतच्छोधयेन्नागवत्ततः ॥ „

जसददोषपर इलाजः—

वलाभयां सितायुक्तां सेवते यो दिनत्रयं ।

जसदस्य विकारस्तु शान्तिमायाति नान्यथा ॥

जसदभस्म तुरट और शीतल है. कफपित्तका नाश करता है. आंखेके लिये हितकारक है. मधुमेह, पांडुरोग, श्वास इत्यादि विकार जसदभस्मसे जल्द नष्ट होते हैं. सर्वोंगज्वरमें भी जब घदनमें जलन पैदा होती है, क्षयकी प्रथम अवस्थामें जब थोड़ासा ज्वर रहता है, तो जसदभस्मसे वह कम हो जाता है. रसवाहिनी और रसवहर्पिंड इनके विकारमें जसदभस्म एक उत्कृष्ट इलाज है. गलरोग, गंडमाला, अपची और आंतोंकी सूजनमें भी जसदभस्मसे फायदा होता है.

आंतोंकी सूजनसे एक तरहका अतिसार (दस्त) उत्पन्न होता है. इसमें उल्टी भी होती है और रोगी बहुत क्षीण होता है. इसमें और आंत्रिक संनिपातमें एकही प्रकारके लक्षण होते हैं और सूल होनेका संभव है. किंतु दूसरे कुछ लक्षण भिन्न हैं. आंत्रिक संनिपातमें ज्वरकी मुद्रत होती है और उतने दिनोंतक विकार कायम रहता है. आंतोंकी सूजनमें (आंत्रशोथज्वर) पेटमें तीव्र शूल होता है इतना आंत्रिक संनिपातमें नहीं होता. आंत्रशोथज्वर में जवानपर बड़े बड़े छाले पड़ जाते हैं और कभी कभी जवानकी अंतस्त्वचा निकल जाती है और उसका रंग लाल और वह बनाये हुवे चमड़ेके माफिक मुलायम रहती है. आंत्रिक संनिपातमें जवानपर पीले और सफेद रंगका

पड़दा आता है. बीचका और पीछेका हिस्सा काला (जैसा जल गया हो) और किनारेका लाल रहता है. जबान रुक्ष और खरस्पर्शी (गौके जीभके माफिक उपर कांटे होते हैं) होती है. आंत्रिक संनिपातमें केवल ज्वर या उसके उपद्रवोंसे मृत्यु आता है. तो आंत्रशोथज्वरमें अशक्तता अधिक होनेसे मृत्यु होगा. आंत्रशोथज्वरमें रोगीकी आवाज बिलकुल क्षीण हो जाती है और बोलनेका यत्न करे तो भी शब्द सुनने नहीं आता है. मूँह मुझ्हांता, कालासा दिखता है. हातपैर हिलानेतक भी ताकद नहीं रहती यह अवस्था भयंकर है किन्तु इसीमें जसदभस्मसे फायदा होता है.

जसदभस्मका कार्य आंत्रशोथमें किस तरह होता यह हम कह नहीं सकते. इसके लिये प्रयोग करना चाहिये और प्रयोगके साधन आज मौजूद नहीं हैं. किन्तु यह संभव है कि जसदभस्मका तुरट गुरा और शीतत्वादि गुरा इनसे यह कार्य होता होगा. जसदभस्मके कार्यकी उपपत्ति निश्चित न समझनेपर भी आंत्रशोथमें इससे बहुत फायदा होता है इसमें शंका नहीं. १ रक्ती जसदभस्म और ६ रक्ती चीनी मिलाकर खूप खरल करो और इस मिश्रणाकी छ पुड़िया बनाओ. आंत्रशोथमें एक एक पुड़ी दो दो घण्टेसे छांछके साथ खिलाओ. आहार केवल छांछही होना चाहिये. छांछ रोगीको न सहन हो तो दूध देना चाहिये. दूध देते हो तो औषध भी दूधके साथ देना चाहिये. दूध और छांछ इनमें कोईभी न सहता हो तो सत्तूका पानी, या धानके लाघा का मंड देना चाहिये. केवल इतनाही आहार होना चाहिये. तालिमखानेका पानीभी इसमें फायदा करेगा.

गलेमें गांठकी सूजन होती है. यह रोग पुराना होनेपरभी या दूसरे पुराने कंठरोगमें जसदभस्मसे फायदा होता है. बलय, वृंद, बलाश इन रोगोंमें जसदभस्मसे कुछ भी फायदा नहीं होता है. किन्तु स्वरच्छन, विदारिका, गिलायु, अधिजिव्ह, उपजिव्ह इत्यादि विकार कम होते हैं. स्वरसाद और स्वरभंगमें भी जसदभस्मसे अच्छा कार्य होता है. ये विकार उपदंश रोगके उपद्रव हो तो जसदभस्म नहीं देनी चाहिये. क्षयजन्य, कफजन्य या रसवह पिंडके विगाडसे पैदा हुवे हो तो जसदभस्मसे फायदा होगा.

पोथकी, अभिष्यंद, बर्त्म, शुंडिका इत्यादि नेत्रविकारोंमें भी जसदभस्मसे फायदा होता है. इ तोला शतधोतदृत या गौका ताजा मक्खन और १ रक्ती जसदभस्म अच्छी तरह खरल करके उसका

अंजन बनाओ. यह अंजन दिनमे दो तीन बार आंखमे डॉलनेसे कनी-नीके पासके ब्रण और आंखोकी पलकोंके अंदरके ब्रण सुधर जाते हैं. इसी अंजनसे उपर लिखे हुए नेत्रविकार भी अच्छे हो जाते हैं.

नाडीब्रण, भगंदर, दुष्प्रण इत्यादि विकारोंमें भी जसदभस्म खानेसे फायदा होगा.

क्षयरोगकी एक विशिष्ट अवस्थामे भी जसदभस्मसे फायदा होता है. इस अवस्थामे उरःक्षत होता है और रोगी कहता है कि फेफड़ोंमेसे कुछ भाग निकल गया हो ऐसा अंदेशा होता है. क्षयरोग विषार सर्व शरीरमे फैलता है, और उसके संचयसे खून विगड जाता है. विगडे हुवे खूनसे ज्वर पैदा होता है और वह ज्वर तीव्र होता है. सुबह पसीना आता है और ताकद बिलकुल नहीं रहती. साथ साथ बल-मांसविहीनत्वही होता है. इस हालतमे शिलाजीत के साथ जसदभस्म देनी चाहिये. इससे क्षयरोगका विषार तथ्यार होनेका कार्य बंद होता है. रोगीको आराम रहता है.

जसदभस्मका मेहरोगमें भी उपयोग होता है. मेहरोगके दूसरे प्रकार और मधुमेहमें आयुर्वेदशास्त्रके वृष्टीसे फर्क है. जसदभस्मसे मेहमे और मधुमेहमे भी लाभ होता है. पित्तभूयिष्ट लक्षण अधिक हो तो जसदभस्म देनी चाहिये. सब शरीरमें अंदरसे ताप का अंदेशा, हाथपैरोंका जलन, सर्व शरीरमे जलन, किंतु थर्मामीटरसे देखें तो ताप बिलकुल नहीं होता है, प्यास बहुत लगती है किंतु थोड़े पानीसे वह मिट जाती है. शरीरमे ऐसी पीड़ा होती है के मानो गरम गरम सूखें घुस जाती हो, जीभ कड़ी और सूखी होती है, गलेमे गांठकी सूजन न होनेपरभी दर्द और गलेक रोकना, शक्तिपात, कुछ भी काम करनेको जी नहीं चहाता, पेशावमे शक्ति कम होनेपरभी थकावट अधिक होती है. (पेशावमे शक्तिका प्रमाण अधिक हो तो—नागभस्म देना चाहिये.) सिरमे चक्कर, सृतिनाश, विचार करनेकी शक्ति नहीं रहती है, कुछ भी विचार थोड़ी देरतक करे तो विचारोंका गोलमाल होता है, सिरमे गरमाई पैदा होती है और अधिक विचार करे, तो एकदम विचार बंद हो जाते हैं और सुन्नसा मालूम होता है. ये लक्षण पित्तजन्य मेहके हैं. पित्तजन्य मेह छ प्रकारके होते हैं:—क्षार, नील, काल, पीत (हारिद्र), रक्त और विल (मांजिष्ठ). इन सब प्रकारोंमें जसदभस्मसे जरूर फायदा होगा.

प्रमेह विकारमे जल्द इलाज न करे तो मधुमेहका विकार शुरू होता है। इसमे भी जसदभस्मसे लाभ होगा। आजकलके उपपत्तीसे 'इन्फूलिन' नामके द्रव्यका (जो स्वादुपिंडमेसे निकलता है) एकही इलाज मधुमेहमे हो सकता है। शरीरमे इस इन्फूलिनकी उत्पत्ति कम होनेसे रक्तमे शक्तर अधिक रह जाती है। उसका पचन नहीं होता है। रक्तमे अधिक शक्तर होनेसे वह मूत्रपिंडोंसे मूत्रमे निकाली जाती है। पेशावमे शक्तर आ जाती है। यह इन्फूलिन वाहरसे देकर अंदरकी कमताई पूरी की जाती है और इस वाहरके इन्फूलिनसे रक्तमेसे शक्तर शरीरके घटकोंमे खींची जाती है और उसका पचन होता है। मधुमेहके विकारमे पेशावमे शक्तर जाती है और रक्तमेभी अधिक शक्तर रहती है। यह सब इन्फूलिनके कमताईका परिणाम है। इसी उपपत्ती (कारणमीमांसा) को सच माने तो इन्फूलिन यह एकही इलाज मधुमेहमे हो सकता है। किंतु इस उपपत्तीका और आगे विचार करे तो दूसरे इलाज भी मधुमेहके विकारमे लाभदायक होनेकी आशा दिखती है। स्वादुपिंडमे जो इन्फूलिन कम पैदा होता है वह किस कारणसे होता है। स्वादुपिंडका यह विकार किस प्रकारका है इसका भी विचार करना चाहिये। आयुर्वेदशास्त्रका दोषदूष्यविचार इस बाबतमे श्रेष्ठ है। दोषदूष्यकी विकृतिसे ही इस स्वादुपिंडमे इन्फूलिन कम बनता है और इस दोषदूष्यकी विकृतीको नष्ट करनेसे धातुसाम्य प्रस्थापित होगा। और यहही इलाज मधुमेहमे या दूसरे विकारोंमे श्रेष्ठ माना जाएगा। इस उपपत्तीका विवेचन करनेको यहां अवकाश नहीं है। केवल इतनाहि लिख सकते हैं कि मधुमेहमे मधुद्रावक (इन्फूलिन) यह एकही इलाज नहीं है। जसदभस्मके माफिक दूसरे इलाज भी मौजूद हैं।

पांडुरोगमे भी हाथपैरोंका जलन और रसवाहिनी या रसवह पिंडका विकार हो तो पित्तदोषको कम करनेके लिये जसदभस्म देना चाहिये।

गलेमे गांठ हो या पेटमे गांठ हो और इससे श्वासकी वीमारी बढ़ गयी हो, या श्वास और इस गांठमे कुछ साहचर्य (संबंध) हो तो जसदभस्मसे फायदा होगा।

जसदभस्मका कार्यः—दोष-कफ और पित्त; दूष्य-रस और मूँस, स्थानः—रसवाहिनी, रसवहग्रंथी, आंत्र, गल, नेत्र, मूत्रपिंड (वृक), स्वादुपिंड, यकृत् और उरस्।

## ५. ताम्रभस्म.

प्रमाणा २ से १ रक्ती.

ताम्रके दो प्रकार होते हैं—नेपाल और म्लेच्छ.

नेपाल ताम्र श्रेष्ठ है।<sup>१</sup>

ताम्रका शोधनः—

( १ ) गोमूत्र, नीमूका रस या इमलीकाकल्क और सोहागा-इनमें तांबेके पतले पतले पत्रे एक प्रहर तक पकानेसे ताम्रकी शुद्धि होती है।<sup>२</sup>

( २ ) तांबेके पतले पत्ते बनाके वे गोमूत्रमें उबलानेसे ताम्र शुद्ध होता है।<sup>३</sup>

( ३ ) तांबेके पत्तेको नीमूका रस और सैंधानोनसे लेप देना चाहिये, फिर आश्रीमें तपाकर सौवीरकमें बुझाना चाहिये, इस तरह सातवार करनेसे ताम्र शुद्ध होता है।<sup>४</sup>

( ४ ) तांबेके पत्तेको नीमूका रस और सैंधानोनसे लेप देकर वह आश्रीमें तपाकर निर्गुण्डीके रसमें आठवार बुझानेसे ताम्र शुद्ध होता है।<sup>५</sup>

( ५ ) तांबेके पत्तेको शूहरका रस, आकका रस और नमकसे लेप देना और आश्रीमें तपाकर निर्गुण्डीके रसमें तीन बार बुझाना इससे भी ताम्रकी शुद्धि होती है।<sup>६</sup>

१ म्लेच्छं नेपालकं चेति तयोर्नेपालसुत्तमम् ॥ रसरत्नसमूच्यम्.

२ गोमूत्रेण पचेयामं ताम्रपत्रं दृढाग्निना ।

साम्लक्षारेण संशुद्धि ताम्रं प्राप्नोति सर्वथा ॥ निघटरत्नाकर.

३ गोमूत्रेण पचेयामं ताम्रपत्रं दृढाग्निना ।

शुद्धते नात्र संकेहः ॥ रसरत्नसमूच्यम्.

४ ताम्रं निर्मलपत्राणि लिप्वा निंबवम्बुसिधुना ।

धमात्वा सौवीरकक्षेपाद्धि शुद्धत्यष्टवरतः ॥ रसरत्नसमूच्यम्.

यैवस्तु निस्तुपै पक्वै सौवीरं संधितं भवेत् ।

५ निंबवम्बुपःलिप्तानि तापितान्यष्टवरकम् ।

विशुद्धयंत्यर्कपत्राणि निर्यण्ड्यारसमज्जनाद ॥ र. स. (अक्ष = ताम्र).

६ वज्रीहृष्टे सलवरणैस्ताम्रपत्रं विलेपयेत् ।

अश्वौ संताप्यनिर्गुण्डीरसैः संसेचयेत् विश्वा ।

शुद्धर्क्षीरसेचैर्वा शुल्वं शुद्धि प्रजायते ॥ योगरत्नाकर.

( ६ ) तांबेके बिलकुल छोटे टुकडे लेकर वे छांछमे ५०८ दिन रखना. हररोज धोकर फिर छांछ बदलना चाहिये. पांच दिनके बाद धोकर फिर सुखाना चाहिये. और तेलमे २४ घंटे तक रखना चाहिये. फिर अग्रीमे रखके जबतक तेल जलजाय और वह गरम होके लाल रंगका हो तबतक तपाना चाहिये. लाल होनेपर उसपर थोड़ासा छांछ सींपकर उसको हिलाना और फिर छांछ सींपना चाहिये इस तरह बार बार करनेसे ताम्र शुद्ध होता है.<sup>१</sup>

**ताम्रका मारणा:**—( भस्म बनानेकी रीत ).

( १ ) पारा और गंधक की कजली बनाके उसको नीमूके रसमें घोटना और उसका लेप तांबेके शुद्ध किये हुवे पत्तेको देना. उनको मिठ्ठीके कटोरेमे डालके उपर एक कटोरा रखके उसके उपर गीली मिठ्ठीसे लिपटा हुवा कपडा लपेटना ( शरावसंषुट ). उसे सुखाकर अग्रीमे डालना चाहिये. इस तरह तीन गजपुट देनेपर ताम्रकी भस्म होती है.<sup>२</sup>

( २ ) तांबेके बजनका पारा और उतनाही गंधक, गंधकका आधा हिस्सा हरताल, हरतालका आधा हिस्सा मनसील लेकर कजली बनाना. इसमेसे थोड़ा भाग गर्भयंत्रमें रखके उसपर ताम्रके शुद्ध टुकडे रखना. फिर उनपर कजली रखना. फिर टुकडे और फिर कजली इस तरह सब ताम्र रखा जाय. इसको एक प्रहरतक आंच देकर वह ठंडा हो जानेपर उनका चूर्ण बनाना. यह चूर्ण ताम्रभस्म है. ( सोमनाथी ताम्रभस्म )<sup>३</sup>

( ३ ) एक भाग गंधक और एक भाग शुद्ध ताम्र लेना. एक मिठ्ठीका कटोरा लेकर उसमें पथमे आधा गंधक डालकर तांबेके टुकडे डालना. फिर वाकी आधा गंधक डालकर, दूसरे कटोरेसे ढंकना. फिर मिठ्ठीसे लिपटा हुवा कापड लपेटकर तीन प्रहरतक गजपुटसे

१ शुद्धवैद्याधार.

२ जम्बीररससंपिण्ठ रसगंधकलेपितम् ।

शुल्वपत्रं शरावस्थं चितुटैर्याति पञ्चताम् ॥ रसरलसमुच्चय.

३ शुल्वतुल्येन सूतेन बलिना तत्समेन च ।

तदधौशेन तालेन शिलया च तदर्धया ।

विधाय केजलीं शुल्क्षणां भिन्नकंजलिसंनिभाम् ।

यन्वाध्यायविनिर्दिष्टगर्भयन्वोदरांतरे ।

कजलीं ताम्रपत्राणि पर्यायेण विनिक्षिपेत् ।

प्रपञ्चेयामपर्यंतं स्वाङ्गशीति प्रचूर्णयेत् ॥ रसरलसमुच्चय.

आंच देना. ठंडा होनेपर उसका चूर्णा करना. और कपड़ेसे छान लेना. यह ताम्रभस्म है।<sup>१</sup>

(४) ताम्रके शोधनके छट्ठे प्रकारसे शुद्ध किया हुवा ताम्र लेकर उसको तिलबन, उत्तरा, सफेद वस्त्र और नीमूका रस इनकी चौदा चौदा भावना देकर गजपुट देनेसे मोरके परके रंगकी ताम्रभस्म तथ्यार होती है।<sup>२</sup>

### ग्रंथोक्त गुराधर्म—

(१) तत्तद्रोगहरानुपानसहितं ताम्रं छिवल्लोन्मितम् ।

संलीढं परिरामशूलमुदरं शूलं च पाण्डुज्वरम् ॥

गुलमप्तीहयकृत्क्षयान्निसदनं मेहं च मूलामयम् ।

दुष्टां च ग्रहणां हरेदध्रुवमिदं तत्सोमनाथाभिधम् ॥ रसरत्नसमुच्चय ॥

(२) सेव्यं सम्यक्वेलमेकप्रमाणां कासं श्वासं हन्ति गुलमप्रमेहां ।

पिप्पली मधुना सार्धं सर्वदोषहरा परा ।

दुर्नामग्रहणारोगान्निहन्ति च रसायनम् ॥ रसचडाशु ॥

(३) ताम्रं शीतं निहन्याद् ब्राह्मिजठरानाहसंष्टीहपांडु— ।

श्वासश्लेष्मास्ववातक्षयपवनगदं शूलयुग्मं च गुलमम् ॥

कुष्ठान्यष्टादशाऽपि स्मरवलरुचिकुद्रक्तमेदोऽम्लपित्त— ।

च्छेदि प्रोक्तं त्वशुद्धं कुमिदरासुगाधमानकुष्ठाधिकारी ॥

बृह्योगतरगिणी, यो. र. इ०

(४) ताम्रं तीक्षणोष्णामधुरं कषायं शीतलं सरम् ।

कफपित्तक्षयः पाण्डुकुष्ठद्वं च रसायनम् ।

परिरामशूलमशीसि मन्दान्नित्वं विनाशयेत् ॥ र र.

(५) पिप्पली मधुना सार्धं सर्वरोगेषु योजयेत् ।

श्वासं कासं क्षयं पाण्डुं अग्निमान्यमरोचकम् ।

गुलमप्तीहयकृन्यूच्छर्षूलपक्त्यर्थमुत्तमम् ।

दोपत्रयसमुद्धूतानामयाज्ञयति ध्रुवम् ॥ र र स.

१ शुद्धं शुल्वं गंधकं वै समांशं पूर्वे स्थाल्यां स्थापयेहंधकार्थं ।

मध्ये शुल्वं स्थापनीयं प्रयत्नात्स्योदर्धं वै गंधनूर्णस्य चार्थं ॥

स्थालीमुखे चूर्णघटीं निवेश्य लेपं तथा सैधवमृत्सनयाऽपि ।

शुल्यां च कुर्यादथ वन्धिमेवं यामत्रयेषौ चुपाचितं भवेत् ॥

शीतीधूतं दोपहीनं तदेव कृत्वा चूर्णं गालितं वस्त्रखण्डे ॥ र प्र. सु.

२ दृद्धवैद्याधार.

३

अच्छे बने हुवे ताम्रभस्मका रंग मयूरकण्ठ जैसा ( मोरके गले के रंग सा ) नीला होता है।<sup>१</sup>

ताम्रभस्मका प्रमुख उपयोग यह है कि शरीरमें जो भिज्व भिज्व अंथि होते हैं उनकी सूजन हो या वे बढ़ गये हो तो उनका आकार कम करना और उनके परमाणुओंको ताकद देकर उनकी शक्ति बढ़ाना। विशेषतः यकृत् और लीहा इनकी वृद्धिमें ताम्रभस्मसे बहुत फायदा होता है। ताम्रभस्मसे उनके बढ़े हुए परमाणु घटने लगते हैं और जो करीब करीब मर गये हैं उनको ताकद आजाती है। वे अपना काम करने लगते हैं। जो बिलकुल नाकामके हो वे दूसरे परमाणुओंसे अलग किये जाते हैं। ताम्रभस्म लेनेसे वह प्रथम यकृतमें ही जाती है और फिर यकृतसे सब शरीरपर फैलती है। इस लिये ताम्रभस्मका असर प्रथम यकृत् और पित्ताशय पर होता है। पित्ताशयका संकोच होगया हो या पित्तका स्राव गाढ़ा हो गया हो या पित्ताशयके अंदर कुछ विकार होकर पेटमें दर्द हो, तो इस तरहकी पेटकी दर्दमें ताम्रभस्मसे फायदा होगा। इससे यकृतपित्तका स्राव अच्छी तरह और नियमित हो जाता है। पित्ताशयमें कभी कभी पित्तके कंकर बन जाते हैं और इससे शूल होता है। इसमें भी ताम्रभस्म देनेसे वे कंकर धीरे धीरे पिघल जाते हैं। ताम्रभस्म इस विकारमें करैलेके पत्तोंके रसमें देनी चाहिये। यकृत्के भिज्व भिज्व विकारोंमें विशेषतः जिनमें यकृत्के परमाणु बढ़ गये हो वहां ताम्रभस्म जरूर देनी चाहिये।

लीहा ( टिली ) के वृद्धीपरभी ताम्रभस्म अच्छा काम देती है। गुलम, अष्टीला इत्यादि विकारोंमें भी उन अंथिओंका क्षत्रणा करनेके लिये ताम्रभस्मका उपयोग होता है। गुलमके विकारमें ताम्रभस्मके साथ कुमारी आसव या दूसरा कुछ सौम्य विरेचन देना चाहिये। आसाशयका कर्कटग्रंथि या मांसार्बुद ताम्रभस्मसे कम होता है। कर्कटग्रंथि या मांसार्बुदके लिये आयुर्वेदकी दो दवाइयां हैं। एक ताम्रभस्म और दूसरी वंगभस्म। इनमेंसे ताम्रभस्म वातप्रधान या कफप्रधान दोष-वृद्धीमें देनी चाहिये। पित्तवृद्धि हो और पित्तप्रधान दोष अंथिओंमें लीन हुए हो तो वंगभस्म देनी चाहिये। ताम्रभस्मसे मांसार्बुदके दोषोंका स्राव होता है। खून गिरता हो तो उसमें ताम्रभस्म न देनी चाहिये, वहां वंगभस्मकी जरूरत है।

---

१ ताम्रभस्म धूपमें रखवे और देखे तो उसका रंग मोरके परके माफिक दिखता है। उसमें चंद्रिका ( चमक ) नहीं रहती है। दर्हा में मिलानेसे उसका रंग बदलता नहीं होता। इस तरहकी भस्म अच्छी समझनी चाहिये।

उदररोगमें भी ताम्रभस्मका उपयोग होता है। सामान्यतः उदर-रोग तीन इंद्रियोंमें दोषप्रकोप होनेसे पैदा होता है। (१) हृदयकी विकृति (२) यकृतकी विकृति और (३) मूत्रपिंडकी विकृति। आजकल इस बातपर वादविवाद हो रहा है कि प्रथम हृदयका विगाड होनेपर यकृतका विकार होता है या प्रथम यकृतका विकार होनेपर हृदय विगड जाता, और उदररोग पैदा होता है? इसमें सच बात यह है कि जिन दोषोंकी विषमतासे यकृतका विकार होता है उनहींसे हृदयकाभी विकार होता है। “स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः॥ स्थानांतरारणि च प्राप्य विकारान्कुरुते बहून्॥” इस न्यायसे यकृत और हृदय इन स्थानोंमें एकही प्रकारकी दोषविकृति होती है। इसलिये कौनसा दोष बढ़ गया है यह देखकर ताम्रभस्म या दूसरी दवाइयां देनी चाहिये। कफप्रधार्में या कफवातप्रधान दोषदुष्टीमें ताम्रभस्मसे फायदा होगा। ताम्रभस्ममें मूलतः मूत्र उत्पन्न करनेका गुण नहीं है। जलोदरके विकारमें शरीरमें भरा हुवा पानी निकालनेकी जरूरत है। पानी निकालनेके मार्गोंमें मूत्रमार्ग प्रधान है। मूत्र बढ़ानेमें ताम्रभस्मका साक्षात् कुछ भी कार्य नहीं होता। इसलिये ताम्रभस्मके साथ दूसरी मूत्रल दवाइयां देनी चाहिये। घुर्ननवा देनेसे यह लाभ होगा।

ताम्रभस्मके साथ शामकमूत्रल दवा देनेपरभी विरेचन औषध देनेसे पानी निकलनेका दूसरा एक मार्ग खुला हो जायेगा। कभी कभी केवल ताम्रभस्मसे भी दस्त आते हैं। विशेषतः पित्तप्रकृतीके आदमीको दस्त आते हैं। क्योंकि ताम्रभस्म पित्तको बढ़ाती है और उसके तीव्रत्वादि गुण बढ़ जाते हैं। इसलिये ताम्रभस्मके साथ अमलताश का गूदा या कुटकीके समान द्रव्य देनेसे पित्तका विरेचन अच्छी तरह होगा और दस्त भी पानीके माफिक आयेंगे।

ताम्रभस्मसे रक्तका जोर भी बढ़ जाता है। इसी बजह ताम्रभस्म देनेके बाद कभी नाकसे या गलेसे खून निकलने लगता है। मूत्रपिंडके विकारसे जलोदर हुआ हो और इसमें ताम्रभस्म दें तो मूत्रपिंडकी सूजन अधिक बढ़ जाती है और पेशाव कम निकलता है। जलोदरका पानी बाहर नहीं निकलता लेकिन अधिक बढ़ जाता है। मूत्रपिंडका पूयवृक्ष नामका एक विकार है। इसमें ताम्रभस्मसे फायदा होता है। मूत्रपिंडमें जो मवाद जम जाता है वह कम होकर धीरे धीरे मूत्रपिंड अपना काम अच्छी तरह कर सकता है। इसमें भी ताम्रभस्म देनेका प्रमाण बहुत कम होना चाहिये। साधारणा मूत्रविंकारोंमें ताम्रभस्मका उपयोग न करना ही ठीक है। जलोदरके विकारमें भी विशिष्ट

प्रकारके जलोदरमें ताम्रभस्मसे फायदा होगा. सबमे नहीं. यकृतोदर, कफोदर और पुष्पोदर इन तीन उदर विकारोंमें फायदा होगा. इनमें भी ऊपर लिखे हुवे दोष और दूष्य होने चाहिये.

हैजाके विकारमें भी ताम्रभस्मसे फायदा होता है. हैजामे जब खूब दस्त आते हैं तब हाथपैरोंमें ऐंठन आती है. यह ऐंठन ताम्रभस्मसे कम होती है. किंतु इस हालतमें ताम्रभस्म विलकूल कम प्रमाणामें और बार बार देनी चाहिये. ऐंठन जल्द बंद हो जायेगी. बमन, शूल और अम भी इससे कम होगा. ऐंठन बंद होनेके बाद माध्यिकभस्म, शंखभस्म, कामदुधा इत्यादि दवाइयां देनी चाहिये.

अम्लपित्तमें भी ताम्रभस्मसे फायदा होता है. इस विकारमे कै कम होती है किंतु इसमे पित्तके कारण जलन अधिक होती है, चक्कर और पेटमें शूल बहुतही तीव्र होते हैं. जिस प्रकारके अम्लपित्तमे कै अधिक है, और दर्द या तकलीफ कुछ नहीं हो उसमे सुवर्णामाध्यिक भस्मसे फायदा होगा. इस प्रकारमे बान्ती (कै) खट्टी या मीठी होती है और पित्तका संचय भी अधिक होता है. ताम्रभस्मसे जिस प्रकारका अम्लपित्त शान्त होगा उसमे पित्तका प्रमाणा कम होता है किंतु कम होनेपरभी वह तीक्ष्णा और जलन पैदा करनेवाला होता है. इन लक्षणोंको कम करनेके लिये ताम्रभस्म देनी चाहिये. इससे पित्तका स्वाव होता है और वह शरीरके बाहर निकल जाता है याने ताम्रभस्म एक किस्मका विरेचन है. ताम्रभस्मका प्रमाणा कम होना चाहिये और साथ साथ कुछ स्नेह भी देना चाहिये. तब इससे फायदा होगा. यकृतपित्तका स्वाव कम होनेसे एक किस्मका अतिसार उत्पन्न होता है. उसमें भी ताम्रभस्मसे फायदा होता है.

गर या सेन्द्रिय विषार पेटमें जानेसे जो विकार पैदा होता है उसमे संशोधनकी जरूरत पड़ती है. इस विकारमे वह गर या सेन्द्रिय विषार किस जात का या किस प्रकार का है इसका ख्याल रखना चाहिये. मदोत्पादक विषार पेटमें जानेसे या कुछ गर के कारण वेहोशी उत्पन्न हुई हो तो ताम्रभस्म देनेसे उसका शोधन होगा. सेन्द्रिय विषार भी शरीरमें संचित होनेसे वेहोशी उत्पन्न होती है. उसमें भी ताम्रभस्मका कार्य होता है. आमाशय और पक्वाशय इन दोनोंका संशोधन ताम्रभस्मसे होता है. दोष-कफमूलिष्ठ होने चाहिए.

अष्टीला आदि ग्रंथी कोष्ठमे ( पेटके ऊपरके हिस्सेमें ) बढ़ गये हो, या उनके बढ़ जानेसे कोष्ठद्रवशूल या दूसरे कोष्ठशूल उत्पन्न हुए

हो तो ताम्रभस्म देनी चाहिए. वहुत बड़ा और कठिगा गोला भी धीरे धीरे कम हो जाता है.

पांडुरोगमे कभी कभी प्लीहा और यकृत् इन दोनोंकी या इनमें से एक की वृद्धि हो जाती है. पांडुरोगमे चमड़ीका रंग पीला होता है किंतु इस प्रकार में वह फीका रहता है. चमड़ी पर तेल लगाये जैसी स्थिरता, सूजन और सुफेदसा रंग रहता है. सर्व शरीरपर थोड़ी थोड़ी सूजन होती है, और इसका कारण भी प्लीहा या यकृत् का विकार होता है. इसमें पित्तकी क्षीराता और कफकी वृद्धि हो तो ताम्रभस्म देनी चाहिए.

कफज गुल्म या अर्धीला वहुत बढ़ जाने पर भी ताम्रभस्मसे कम होती है.

मांस खानेवाले आदमीको भेहका विकार हो तो दूसरे औषधोंकी अपेक्षा ताम्रभस्मही अच्छी होगी. ताम्रभस्म देनेसे जो पित्त उत्पन्न होता है उससे मांसका पचन आसानीसे होता है इसी कारण वह मेहके विकारमें भी काम देता है.

ग्रहणी विकारमें पित्तकी उत्पत्ति कम होती है और जितना पित्त उत्पन्न होगा वह भी तीक्ष्णातामे कम होता है, इस अवस्थामें दृष्टी विलक्षण सुफेद पानीमें आटा मिलाये जैसे रंगकी ( विशेषतः वाजरी के आटेके रंगकी ) और चिकनी आती है. इसमें बदबू भी होती है. जी मचलाता और कभी कभी उल्टी ( कै ) भी हो जाती है. वह कै भी सुफेद, चिकनी और दुर्गंध होती है. इस विकारमें ताम्रभस्मसे फायदा होगा.

ताम्रभस्मके गुणाधर्मः—यह कडक, तीक्ष्णा, उषणा, भेदन करनेवाली और पित्तका स्वाव बढ़ानेवाली है. इस लिये इसका उपयोग सम्हालके करना चाहिये. कोई कहते हैं कि ताम्रभस्म वहुत उत्तेजक होनेके कारण नषुंसकत्वनाशक है. किंतु यह गुण हमने कभी देखा नहीं है. इसलिये इस विकारमें ताम्रभस्म न देना ही अच्छा होगा.

ताम्रभस्म निरुत्थ ( जलानेसे जिसमें तांबा न मिलता हो ) लेनी चाहिये. कच्ची ताम्रभस्म लेनेसे अम, प्रलाप, कै, कभी कभी ज्वर, दस्त, शूल और रक्तस्राव होता है.

यह भस्म—गर्भिणी, सूतिका, वाल, वृद्ध, क्षतक्षीरा, क्षयके विकारसे क्षीरा और बासीर के रोगी ( विशेषतः खूनी बासीर के रोगी ), इनको कभी न खिलानी चाहिये.

ताम्रभस्म कच्छी रहनेसे जो विकार होंगे उनमे लक्षणोंके भेदसे उन लक्षणोंके विपरीत कार्यकारी औपध देना चाहिये. विशेषतः मौकिक भस्मसे अधिक फायदा होगा.

**ताम्रभस्मका कार्य**

**दोष—कफ.**

**दूष्यः—रस, रक्त और मांस.**

**स्थान—यकृत्, पीहा, उंडुक, पित्तधरा, पकवाशय, ग्रहणी और कोष्ठग्रंथी.**

**कार्य—**पित्तका स्राव बढ़ता है. इसके तीक्ष्णत्व और ऊषणात्व, ये गुण बढ़ जाते हैं. रक्तका ( नाडीका ) जोर बढ़ता है. रक्तस्राव भी अधिक होता है. इसलिये कफ वृद्धिसे कार्य होता है.

## ६. त्रिवंग भस्म.

**प्रमाणा—१ से २ रक्ती.**

रंगा, सीसा और जसद, अलग अलग शुद्ध करके सम ग्रसारामे मिश्र करना. इसमे हल्दी ( पीसी हुई ) डाल कर सूख घोटना. इससे गर्दे पीले रंग की भस्म तैयार होती है. इसको त्रिवंग भस्म कहते हैं. इसको हल्दी के काढ़ेसे और धीगुवार के रससे चौदा चौदा भावना देनी चाहिये. हरएक भावनाके बाद अस्त्रिपुट देना चाहिये. भस्म निरुत्थ हो जानेतक ये भावना और पुट चालू रक्खे. कौनसीभी भस्म जवतक निरुत्थ न हो तबतक उसका उपयोग न किया जाय. अच्छी तरह बन गयी हो तो त्रिवंगभस्म का रंग गर्दे पीला हो जाता है.

त्रिवंगभस्म से ताकद आती है और नपुंसकत्व और सिरागत वात विकार नष्ट होते हैं.

मेह विकारोंमे मे भी इश्कुमेह, हरिद्रामेह और लालामेह इनमे त्रिवंगभस्म अच्छा कार्य करती है. बार बार पेशाव करनेकी इच्छा, पेशाव का प्रमाणा भी बढ़ जाना, इन लक्षणोंमे त्रिवंगभस्म का सेवन कुछ दिनोंतक करना चाहिये. इसका प्रमुख कार्य पेशावके उत्पत्तीपर होता है. मधुमेहमें भी इसका उपयोग करते हैं किंतु उसमे केवल नागभस्मसे अधिक फायदा होगा. मधुमेहमें भी प्रथम गठियावात ( संधिवात ) की वीमारी हो या कई दिनोंके पहले संधिवात होगया हो या सिरमे दर्द, या पेटशूल या दूसरा कोई पुराना विकार होनेके बाद उपद्रव के तरीकेसे मधुमेह होगया हो तो केवल नागभस्मकी जगह

त्रिवंगभस्म देना ही योग्य है. मधुमेहकी भी आखीरी अवस्था हो और प्रमेहपीटिका का उपद्रव हो तो, न तो नागभस्म और न त्रिवंग-भस्मसे कुछ हो सकेगा. इसमे केवल सिलाजीतसे ही फायदा होगा.

त्रिवंगभस्म यह एक वढिया वाजीकर (जननेंद्रिय को ताकद देनेवाला) औपर्युक्त है. नपुंसकत्वमेंभी उससे लाभ होगा. अतिवीर्यपात, बहुत अधिक र्खीसंग, इन आदतोंसे जननेंद्रिय र्खीव शिथिल हो जाता है और नपुंसकत्व प्राप्त होती है. वार वार स्वप्नदोष होना और उससे नपुंसकत्व प्राप्त होना, या यौवनके उत्साहके कारण बहुत र्खीसंगसे नपुंसकत्व उत्पन्न होना इन विकारोंमे त्रिवंगभस्म बहुत लाभ पहुंचाती है. यह भस्म वीर्यको बढ़ाती है और जननेंद्रियके स्नायूको ताकद पहुंचाकर शिथिलता नष्ट करती है. नपुंसकत्व न होने पर भी जिनको स्वप्नदोष होता है या विना किसी कारण वीर्यस्राव होना इन विकारोंमे भी त्रिवंगभस्मसे फायदा होता है. नपुंसकत्वका एक प्रकार ऐसा है कि जननेंद्रियका उत्तेजन वाज बखत तो ठीक रहता है किंतु र्खीके पास जानेसेही वह नष्ट हो जाता है. घबराट होती है और चिंता भी रहती है. इस विकारमे त्रिवंगभस्मका सेवन करनेसे लाभ होगा.

स्त्रियोंके वंध्यात्व (वांश्वपन) मे भी त्रिवंगभस्मसे फायदा होता है. गर्भार्शय या योनिमार्ग मे कुछ रुकावट हो और उस रुकावट के कारण वंध्यात्व उत्पन्न हुआ हो तो उस रुकावट को निकालनाही उचित है. किंतु ऐसी रुकावट न होनेपरभी अंडकोष की अशक्तता या संकोचसे, अथवा फलवाहिनीओंकी अशक्तता या संकोचसे, या इन इन्ड्रियोंका विकास पूर्ण न होनेसे वंध्यात्व उत्पन्न हुआ हो तो त्रिवंग-भस्म देनी चाहिए, अण्डकोष का विकास न होनेसे स्त्रियोंके विशिष्ट इंद्रियोंकी भी वृद्धि नहीं होती है. जैसे-नितंव भाग की वृद्धि न होनेसे उनका आकार बेड़ाल होता है. स्तनोंकी वृद्धि न होनेसे छातीका आकार भी उच्चत नहीं होता ऐसी र्खीमे विशिष्ट र्खीभावना म होनेसे उसके मूँहपर भी जनानी झाँक नहीं रहती है. वाहरसेही-केवल देखनेसेही-इस रोगका निदान कर सकते हैं कि इस र्खीके अंडकोषोंका विकास नहीं हुआ है. इस विकारमे तो त्रिवंगभस्म ने कमाल की है.

स्त्रियोंके अंतरिन्द्रियोंको त्रिवंगभस्मसे शक्ति मिलती है. जल्द और बहुत गर्भधारणा होनेसे, या गर्भपातकी आदत होनेसे, स्त्रियोंके अंतरिन्द्रियोंको अशक्तता आ जाती है और इसी अशक्ततासे

वाह्येन्द्रियोंपर असर होता है और सब शरीर सूख जाता है इसमेंमी त्रिवंगभस्मसे फायदा होगा.

कभी कभी खियोंको कम उम्रमें खींच प्राप्त होता है, या कम उम्रमें बहुत संभोग होनेके कारण अंतरिन्द्रियोंको धका लगता है और वे दुबले हो जाते हैं। इससे यह होता है कि या तो गर्भधारणा नहीं होती; या गर्भ रहे तोभी वह पूर्ण नहीं बढ़ता, थोड़ेहि दिनोंमें गर्भस्थाव या गर्भपात हो जाता है। अगर पूर्ण दिन भी होगये तो बच्चा विलकुल दुबलापतला होता है। इस विकारमें भी गर्भशायको शक्ति देनेके लिए और उसका गर्भधारणा का कार्य सुकर होने के लिए त्रिवंगभस्म देनी चाहिए।

अत्यंत कामवासना या वार वार संभोग होनेके कारण खियोंके जननेंद्रियोंसे सुफेद, चिकरणा और पतलासा स्थाव निकलने लगता है। वह कभी कभी इतने अधिक प्रमाणमें होता है कि उस खींको बड़ी तकलीफ होती है। कभी कभी केवल संभोगके विचारसेही बहुत स्थाव निकल आता है। कभी कभी दूसरे प्राणिओंका संभोग देखकर, या ऐसी वाते सुनकर या उनके केवल स्मरणसेही यह स्थाव आ जाता है। त्रिवंगभस्मके सेवनसे यह स्थाव बंद हो जाता है।

लड़कियोंको बूरी आदतोंसे या मासिकस्थाव शुरू होनेके पहले ही संभोग होनेसे, जननेन्द्रियमें अशक्तता आती है, और वे जल्द थक जाती हैं। जननेन्द्रियमेंसे पानीके माफिक स्थाव निकल आता है और वह स्थाव कभी कभी बहुत होता है। इसमें त्रिवंगभस्म देनेसे वह स्थाव भी बंद हो जाता और इंद्रियोंकी ताकद भी बढ़ जाती है।

स्नायू और सिरा-नात वायूके विकारसे सर्व शरीरमें-विशेषतः वातवाहिनिओंमें दर्द पैदा होती है। नसोंका आँखुंचन होता है, उनमें पीड़ा होती है और वे स्पर्शमें कठिन होती है। उनकी शक्ति कम होनेके कारण आदमी अपने हाथपैर उठा नहीं सकता और उनसे काम लेनेमें भी बड़ी तकलीफ हो जाती है। एक औरके नसोंकी अशक्ततासे और दूसरी ओरकी नसोंका कार्य अधिक होनेसे हाथपैर टेढ़े हो जाते हैं। सारा बदन टेढ़ा होता है। हाथपैरोंमें कंप होता है। इस विकारमें भी त्रिवंगभस्मसे फायदा होगा।

**त्रिवंगभस्मका कार्यः—**

**दोष—वात और वातपित्त.**

दूष्य—रक्त, मांस, अस्थि और शुक्र.

स्थान—सहस्रार, वातवाहिनी, वातवहमंडल, शुक्रस्थान, गर्भाशय और अङ्गड़कोष.

## ७. नागभस्म ( सीसेकी भस्म )

देनेका प्रमाणा— $\frac{1}{2}$  से १ रत्ती.

सीसा दो प्रकारका होता है. एक कुमार और दूसरा शमल. इसमें कुमार सीसाश्रेष्ठ है और वह ही रसायनमें से लिया जाता है.

सीसेकी शुद्धि:—

( १ ) कतरे पत्तेकी निर्गुणीके रसमें उसी पेड़के जड़का चूर्ण और हल्दीका चूर्ण मिलाकर सीसेके पानीमें ( तपानेसे पतला हुवा सीसा ) तीन बार डालनेसे सीसा शुद्ध हो जाता है.<sup>१</sup>

( २ ) जिसके तलमे छेद है ऐसा एक वरतन लेकर उसमें आकका रस डालके, सीसेका पानी तीन बार डाल दिया जाय. उससे सीसा शुद्ध होता है.<sup>२</sup>

( ३ ) त्रिफलाका काढा, धीगुवारका रस, या कण्हेरीके पत्तेंका रस लोहेके कढाईमें डालकर, उसपर खैरके अश्मीसे तपा हुवा सीसा सात बार डालनेसे सीसा शुद्ध होता है. हरवर्षत रस नया लेना चाहिये.<sup>३</sup>

( ४ ) हल्दी, हुंवरू फल, तालिमखाना, जंगली तुलसीका बीज, दारुहल्दी, त्रिफला, इमली, शिवलिंगी, भटकट्टैया, ब्राम्ही और जीरा, इनमेंसे जितनी मिलेगी उतनी चीजें लेकर उनकी राख बनाना, वह तीन

१ नागंच द्विविर्धं प्रोक्तं कुमारं शमलं तथा ।

कुमारं रसमार्गेषु योजनीयं गुणाधिकम् ॥ रसचडाग्य

२ सिंधुवारजटाकांतिहरिद्राचूर्णकं क्षिपेत् ।

द्रुते नागेऽथ निर्यण्ड्यालिवारं निक्षिपेद्यसे ।

नाग शुद्धो भवेदेवम् ॥ रसरलसमुद्धय

३ नागोद्रुतोऽग्निसंयोगाद्रविद्धुग्धे निपातित ।

सच्छिद्रहंडिकासंस्थलिवारं शुद्धिमाप्नुयात् ॥ योगरत्नाकर.

४ फलत्रिकजकपाते वा कुमारीरसे वा ।

करविरसलिले वा गालयेत्सप्तवारम् ।

खदिरदहनतत्त्वं लोहपत्रे स्थितं सत् ।

तदनु सपदि नागो जायते शुद्धभाव ॥ रसचडाग्य

कांटेवाले थूहरके रसमे मिलाकर उसका लेप सीसेके पत्तोंको देना चाहिये, फिर उस सीसेका पानी बनाके उसी राखमे डालना। इस तरह सात बार करनेसे सीसा शुद्ध होता है।<sup>१</sup>

(५) तेल, छांछ, गोमूत्र, कांजी या कुलथीका काढा, इनमे सीसेका पानी सात बार डालनेसे सीसा शुद्ध होता है।<sup>२</sup>

### सीसेकी भस्म बनानेकी रीत<sup>३</sup>

(१) शुद्ध मनसील अङ्गूष्ठेके रसमे खरल करके उसका शुद्ध सीसेके पत्तोंको लेप करना चाहिए। फिर उनको कुंभपुट तीन बार देनेसे सीसेकी भस्म बनती है।<sup>४</sup>

(२) केचवे और अगस्तिया (हथिया) के पत्तोंको पीसकर उनका लेप शुद्ध सीसेके पत्तोंको करके उनको अशीमे रखना। जब पिघल जाय तब अङ्गूष्ठा और आँगा का क्षार सीसेके बजनसे चौथा हिस्सा, उसमे डालकर एक प्रहर अङ्गूष्ठेके रसमे खरल करना। फिर उसका एक गोला बनाके लघुपुट देना। इस तरह सात बार पुट देनेसे सिंदूर रंगकी सीसेकी भस्म बन जाती है।<sup>५</sup>

(३) शुद्ध मनसील नागरवेल के पत्तोंके रसमे खरल करके शुद्ध सीसेके पत्तोंको लेप देना। और वे मिट्टीके कटोरेमे धरके दूसरे कटोरेसे

२ निशादुम्बुरबीजानि कोकिलाक्ष कुवारिकम्।  
गौरीफलाम्लिकाचंडीक्षुद्राब्राह्मी सजीरकम्।  
यथालाभेन भस्मैकं वज्रीक्षीरेण भावयेत्।  
तन्मध्ये भावितं नागं शुद्धे सेकंतु सप्तधा ॥ र. र.

३ तैले तक्रे गवां मूत्रे कांजिके च कुलथके ।  
सप्तधा सप्तनिर्वापात्सर्वलोहं विशुद्धयति ॥ योगरत्नाकर।

३ त्रिभि कुंभपुटैनगिं वासास्वरसमर्दित ।  
सशिलो भस्मतामेति तद्रज सर्वमेहजित ॥ र. म

४ भूभुजंगमगस्त्यं च पिष्टा पात्रं प्रलेपयेत् ।  
तद्रसं विद्वते नागे वासापामार्गसंभवम् ॥  
क्षारं विभिश्रयेत्तनुं चतुर्थांशं गुरुक्तित ।  
प्रहरं पाचयेच्छुल्यां वासादन्त्या च धट्टितः ॥  
तत उद्भूत्य तच्चूर्णं वासानीरेण मर्दयेत् ।  
उटेत्युनं समुद्धृत्य तेनैव परिमिदयेत् ॥  
एवं सप्तपुटाक्षांगं सिंदूरं जायते ध्रुवम् ॥

ढक कर भिट्ठीसे लिपटे हुवे कपड़ेसे लपेटकर उनको लघुपुट देना। सीसेकी निरूप्त भूत्म वन जाती है। लघुपुट वर्तीस वार देना पड़ता है।

( ४ ) पीपलकी और इमलीकी छाल लेकर जलाना और वह राख समझाग लेकर उससे चौगुना सीसा लेना। प्रथम लोहेके कढाईमे सीसाका पानी बनाके उससे थोड़ी थोड़ी राख डालकर लोहेके ढंडेसे खूब धोटना। एक प्रहर तक धोटनेके बाद उससे समझाग मनसील मिलाना, और नीमूके रसमे या कांजीमें धोटकर लघुपुट देना। ठंडा होनेपर फिर खरल करके और नीमूके रसमे या कांजीमें धोटनेके बाद उसके इन ( बीसवा हिस्सा ) मनसील डालके फिर लघुपुट देना। इस तरह साठ लघुपुट देनेसे नागभस्म तथ्यार होगी।<sup>१</sup>

( ५ ) शुद्ध मनसील आंकके रसमे भिलाके उससे शुद्ध सीसेके पत्तोंको लेप करो। और लघुपुट देओ, इस तरह जब तक भस्म तथ्यार हो जाय तब तक पुट देना चाहिए।<sup>२</sup>

( ६ ) औंगा, कौहा और पीपल के छाल की राख बनाके बह सीसेके समान लेना। लोहेके कढाईमे प्रथम सीसेका पानी बनाकर उसमे वह राख थोड़ी थोड़ी डालकर पलाशके ढंडेसे धोटना। सात दिनतक ऐसा करनेसे सीसेकी भस्म बन जाती है।<sup>३</sup>

( ७ ) औंगेके नये पत्ते या हल्दीका चूर्ण सीसेके पानीमें डालकर कैवडेके ढंडेसे खूब धोटना। इससे सीसेका सिंटूरके समान रंगका चूर्ण

१ तांदूलीरससपिष्ठशिलालेपात्पुनः पुनः ।

द्वार्वेशद्वि पुटैर्नार्गो निरूप्त्यो याति भस्मताम् ॥

२ अभ्यत्थचिचात्वग्भस्म नागस्य चतुरंशत् ।

क्षिपेक्षागं पचेत्पात्रे चालयेष्ठोहचाढुना ।

यामाङ्गस्म तदुद्धृत्य भस्मतुल्या भन शिला ।

जम्बीररानालैर्वा पिष्ट्वा रुद्धवा पुटे पचेत् ।

स्वांगशीतं पुन पिष्ट्वा विशत्यंशशिलायुतम् ।

अस्तेनैव हु यामैर्कं पूर्ववत्पाचयेत्पुटे ।

एवं पष्टिषुटै पक्ष्यो नाग स्यात्पुनिरुथित ॥ रसरलसमुच्चर

३ शिलया रविद्वृधेन नागपत्राणि लेपयेत् ।

मारयेत्पुर्योगेन निरुत्थं जायते तथा ॥ रसरलसमुच्चर

४ अपामार्गार्जुनाश्वत्थभस्मभिर्जयेद् दृढम् ।

लोहपात्रे हु सप्ताहं तुल्यं भस्मानि चाशु च ।

दंडे पलाशके चैत्र वियते नाड्र संशयः ॥

बन जाता है. यह निरुत्थ नहीं है. निरुत्थ होमेके लिये ओंगाके पत्ते, मालकांगनीका पंचांग ( पत्ते, फूल, फल, लकड़ी और जड़ ), नीमूका रस, हल्दीका काढ़ा, क्षार और धीगुवार का रस इनमे प्रत्येक चौदा चौदा बार भावना देनी चाहिए।<sup>१</sup>

यह धातु भस्म बनानेमे वडी तकलीफ देती है. थोड़ीसी अधिक आंच दी जाय तो एकदम पिघलकर पूर्ववत् धातु बन जाती है और फिर शुरूसे भावना या पुट देना पड़ता है. इस लिए हरएक अग्निपुटके पहले, भावना देनेके समय जो कुछ कचरा रह गया हो उसे फेंक देना चाहिए. और सीसेका मल हो तो वह फिर उसमे मिलाकर अच्छी तरह बौंटना चाहिए, धीरे धीरे सीसेकी निरुत्थ भस्म बन जाएगी.

#### ग्रन्थोक्त गुराधर्मः—

( १ ) सतिक्तमधुरो नागो मृतो भवति भस्मसात् ।

आयुष्कीर्तिं वीर्यवृद्धिं करोति सेवनात्सदा ॥ र. र.

क्षयपवनविकारे गुलमपाण्डवामयेषु ।

अमकूमिफलशूले मेदकासामयेषु ॥

अहरिणुदगदे वै नष्टवह्नौ प्रशस्तो ।

शुभविधिकृतनागः कामपुष्टिं ददाति ॥ र. च.

( २ ) नागः समीरकफपित्तविकारहंता ।

सर्वप्रमेहवनराजिकृपीटयोनिः ॥

उष्णाः सरोरजतरंजनकृद्वराशार्णैः ।

गुलमअहण्यतिसुतिक्षणादांशुमाली ॥ वृ. यो. त.

( ३ ) नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति ।

व्याधिं विनाशयति जीवनमातनोति ।

वन्हि प्रदीपयति कामबलं करोति ।

मृत्युं च नाशयति संततसेवितः सः ॥ आ. प्र

( ४ ) अत्युप्सां सीसिकं स्तिग्धं तिक्तं वातकफापहम् ।

प्रमेहतोयदोषधनं दीपनं चाभवात्तुत् ॥ यो. र.

( ५ ) अशीतिर्वातजान्नोगान्धनुर्वातं विशेषतः ।

कफरोगानशेषांश्च मूत्ररोगांश्च सर्वशः ॥

श्वासं कासं क्षयं पाण्डुं श्वयथुं शीतिकाज्वरम् ।

अहरणीमामदोषं च वह्निमांश्च सुदुर्जरम् ।

सर्वानुदकदोषांश्च तत्तद्रोगानुपानतः ॥ र. र. स.

नागभस्म जबतब निरुत्थ न हो, तबतक उसका सेवन न किया जाय. अनिरुत्थ भस्म लेनेसे पेटशूल होनेका संभव है. अच्छी बनी हुई निरुत्थ नागभस्मका रंग लालसा काला या पीला रहता है.

“नागस्तु नागशतुल्यवलं ददाति।” यह गुरापाठ ग्रंथकारोंने दिया है. इसके माने सिर्फ यह है कि नागभस्मसे ताकद बढ़ती है. नागभस्मके सेवनसे रसधातूसे लेकर शुक धातूतक सर्व धातू यथाक्रम वह जाते हैं और उनकी पुष्टि होनेसे सर्व शरीर पुष्ट हो जाता है. धातु-ओंके जरिये इंद्रियोंको बल प्राप्त होता है और अश्वीका बल भी बढ़ता है.

आमाशयका आकार बढ़ जानेसे अम्लपित्तका विकार होता है. सुबह पेटसे या गलेमे जलन होती है, प्यास लगती है और कै करानेकी इच्छा होती है. ये सब अम्लपित्तके लक्षण हैं. अंतःपरिमार्जनसे (पेटसे रवड़की नली या मलमलका कपड़ा छोड़कर धोनेसे) यह विकार कम होता है. एक बार अंतःपरिमार्जन करके बाद नागभस्म दिया जाय तो तुरन्त फायदा होगा. नागभस्मसे आमाशयका आकुंचन होनेको मदद होती है. आमाशयका ब्रण और उसके कारण जो अम्लपित्त पैदा होता है इन दोनों विकारोंमें नागभस्म अच्छा इलाज है. वहां भी रोग बहुत दिनका पुराना हुआ हो और रोगी अशक्त और दुखला पतला हो तो नागभस्म जरूर देनी चाहिए.

कोई समझते हैं कि अपचि या गंडमाला ये विकार केवल एक स्थानमेंसे पैदा होते हैं और वहांही रहते हैं. किंतु यह भूल है. जिन ग्रंथिओंका विकार होता है और सूजन होती है उनमे दोषदुष्टि तो है ही किंतु सर्व शरीरमें भी उन दोषोंका विकार रहता है. यह स्थानिक विकार नहीं है, प्राकृतिक है. इस विकारमे कभी कभी ऐसी अवस्था आती है कि शरीरके सर्व धातू सूख जाते हैं. चमड़ी सूख जाती है. और सर्व शरीर जैसी केवल हड्डी और चमड़ी रह गयी हो वैसा दिखता है. गंडमाला या अपचीमे ग्रंथिओंकी सूजन होती है और वे कठिरा और चमड़ीसे ऊपर उठायी हुई दिखती है. इस अवस्थामे सर्वसे बढ़िया इलाज नागभस्म ही है. नागभस्म शुरू करनेके बाद थोड़ेही दिनोंमें ग्रंथिओंकी कठिराता कम होती है और दूसरे धातू धीरे धीरे बढ़ते जाते हैं. जिन दोषोंसे यह विकार शुरू होता है उनपर नागभस्मका असर होता है.

प्राकृतिक वातविकारोंमें भी नागभस्मसे फायदा होता है. प्राकृतिक रोगोंका लक्षण यह है कि वे बहुत दिनोंतक शरीरको तकलीफ

देते हैं. कुछ दिन कम होते हैं और फिर बढ़ जाते हैं. कुछ प्राकृतिक विकार तो कभी कभी विलकुल नष्ट हुवेसे दिखते हैं और थोड़ासा कुपथ्य होनेसे फिर बढ़ जाते हैं. दूसरे प्राकृतिक विकार कम अधिक प्रमाणमें सब दिन बने रहते हैं. पहले प्रकारके उदाहरण-जैसे उन्माद या अपस्मार. दूसरे प्रकारके-जैसे मधुमेह, गंडमाला, क्षयरोग इत्यादि. उनमेंसे दूसरे प्रकारके प्राकृतिक विकारोंसे नागभस्म देनेसे फायदा होता है. पहले प्रकारमें अन्धकभस्म और दूसरेमें नागभस्म, ऐसा इन दोनों की चिकित्सामें फर्क है.

मधुमेहके विकारमें नागभस्मसे बहुत फायदा होता है. मधुमेहका विकार सर्व शरीर, दोष और धातुओंकी विकृतीसे उत्पन्न होता है. आयुर्वेदशास्त्रके मतसे मधुमेहमें तीन दोष, भेद, मांस, रक्त, शुक्र, अप्धातु, ओज, वसा, लसीका, मज्जा, रसधातु इत्यादि सर्व विकृत होते हैं और उनका, एकका दूसरेपर, असरहोनेके कारण मधुमेह उत्पन्न होता है. शरीरमें सचेतन परमाणुओंकी उत्पत्तीमें विगड़ होता है और इसी बजह रस धातूसे लेकर शुक्र और ओज धातू तक विछिति फैलती है. केवल एक इंद्रिय या रस धातू दुष्ट नहीं होता. सब धातू विगड़ जाते हैं यह आयुर्वेदका कहना है.

इसी सिद्धांतके अनुरोधसे चिकित्सा करना हो तो अपना प्रथम कर्तव्य यह है कि त्रिदोष या परमाणुओंकी उत्पत्ती ने जो विकृति हो उसे नष्ट करें इस विकृतीको नष्ट करनेसे परमाणुओंसे बने हुवे धातु-ओंकी दुष्टि अपनेचाप नष्ट होगी. त्रिदोषमे जो विकृति इस विकारमें पायी जाती है वह दो प्रकारकी होती है. एक अप्धातु-उत्पादक और दूसरी अप्धातु-शोषक. मधुमेहमें प्रथम प्रकारकी दुष्टि रहती है. नागभस्म शुरु करनेसे प्रथम यह फायदा होता है कि प्यास की तकलीफ कम होती है. दूसरा यह है कि मधुमेह विकारका प्रमुख लक्षण जो पेशावमें शक्कर निकलनेका है वह धीरे धीरे कम होता है. धातुओंकी ताकद बढ़नेके कारण यह कार्य होता है. इस समय रोगी केवल दुष्धाहार सेवन करे तो तुरन्त फायदा होगा. मधुमेहके उपद्रव विकारोंमें नागभस्मके साथ शिलाजीत देना चाहिए.

मधुमेहके रोगी दो प्रकारके होते हैं. एक स्थूल और दूसरे कृश-स्थूल शरीरके रोगिओंमें भेद धातूकी विकृति रहती है. शरीर बड़ा होने परभी उनमें ताकद कम रहती है. इस प्रकारके रोगिओंको नागभस्म देना

चाहिये. रोगी कृश हो और साथ साथ पेटमें जलन आदि पित्तलक्षण हो तो जसदभस्मसे फायदा होगा.

कोष्ठशूल ( पेटशूल ) में भी नागभस्म देते हैं. यहभी विकार एक विशिष्ट प्रकारका होना चाहिए. इस प्रकारमें आंतोकी और दूसरे कोष्ठ-गत इन्द्रियोंकी ताकद कम होती है. वे अपना कार्य अच्छी तरह नहीं करते हैं और इस कमजोरीके कारण उनकी हालचाल कम होती है. इस कोष्ठशूलमें वातप्रधान या वातपित्तप्रधान विकृति रहती है. कैं कभी कभी होती है किंतु सब मैला एकदम नहीं निकल आता. कैं थोड़ी होने परभी तकलीफ अधिक होती है. रंग बनानेके कारखानेमें काम करने वाले मजदूरोंको कोष्ठशूलका विकार होता है. उसमें भी नागभस्मसे फायदा होता है.

बद्धकोष्ठ ( कव्जियत ) से टट्टी खुली नहीं आती है. इसका एक प्रकार आंतोकी अशक्ततासे उत्पन्न होता है. दूसरे प्रकारोंमें कभी शुक्र धातु क्षीरा होता है और कभी दूसरे धातू क्षीरा होते हैं. इस दूसरे प्रकारमें टट्टी की इच्छाभी नहीं होती है. पहले प्रकारमें टट्टीकी इच्छा होती है किंतु आंतोकी अशक्तताके कारण मल बाहर नहीं निकल सकता. पहले प्रकारके बद्धकोष्ठमें नागभस्मसे फायदा होता है.

हड्डियोंके भीतर जो ब्रण होता है, जिसको अस्थिगत ब्रण कहते हैं, उसमेंभी नागभस्म देते हैं. अस्थिधातूकी वृद्धीके लिए जिन द्रव्योंकी जरूरत है उनको आंतोंसे लेकर अस्थिधातूतक पहुंचानेका कार्य नागभस्म कर सकती है. यह द्रव्य पार्थिव या निरिन्द्रिय घटकोंसे बनता है.

दोषोंकी दुष्टि अस्थि और मज्जा धातुओंमें होगी तो हड्डी क्षीरा और मुलायम हो जाती है. हड्डियोंपर बड़े फोड़े जैसी सूजन आती है. वह कठिन होती है और हड्डिओंसेही बनती है. हाथ पैरोंके सन्धि या जोड़ोंके पासके अस्थि बढ़ जाते हैं. कभी कभी शुरूसे या बादमें हड्डियोंमें तीव्र शूल रहता है. सन्धिओंमें भी शूल रहता है, बुखार, कैं और बेचैनी आदि लक्षण भी होते हैं. यह विकार कभी कभी गर्भिणीको और कभी कभी प्रसूतीके बादभी बहुत सताता है. आयुर्वेदके सिद्धांतसे यह अस्थिमज्जागत वातप्रकोप है. इससे वे लक्षण होते हैं. इसमेंभी नागभस्मने अच्छा काम किया है. आमता, गोखरु और मिश्रीके चूर्गोंके साथ नागभस्म देनेसे तुरन्त फायदा होगा.

अशक्तताके कारण उत्पन्न हुआ बद्धकोष्ठ और उसके बाद उत्पन्न हुवी बवासीर इन दोनोंमें नागभस्म देते हैं. इस प्रकारके बवा-

सीरमे गुदा के किनारेपर सूजन आती है और अंदरका भाग बाहर निकल आता है (गुदब्रंश). यह भाग प्रयत्न करनेपरभी अंदर नहीं जा सकता. ववासीरके मस्से विलकुल मुलायम रहते हैं. उनमे कुछ भी खूनका जोर नहीं रहता. टट्टी फिरनेके समय जोर करनेकी ताकद नहीं रहती है. कृत्रिम उपायसे टट्टी कराना पड़ता है. इस प्रकारकी अशक्ततामे नागभस्म देनी चाहिये. शुक्रपात्र अधिक करनेसे भी इस तरह की अशक्तता आती है. बद्धकोष्ठ होता है. इस प्रकारमे नागभस्मकी अपेक्षा वंगभस्मसे अधिक फायदा पाया जाता है.

पित्तज गुलम या रक्तगुलम मे ताकद बढ़ानेके लिये नागभस्म देते हैं. पित्तगुलमके आरंभसेही नागभस्म दी जाय तो उसका बढ़ना बंद होता है और आकार वहाँी कायम रहता है. रक्तगुलमकी प्रथम अवस्थामें कुछ भी चिकित्सा न करनी चाहिए. रक्तगुलम पुराना होनेपर उसकी चिकित्सा सफल होती है. (रक्तगुलमे पुरारात्वं सुखसाध्यस्य लक्षणाम्।)

अहरणी और अतिसार इन दोनो विकारोंमे रोगको हटानेके लिये शरीरको ताकद नहीं रहती है. इसी बजह रोग बहुत दिनोंतक कायम रहता है, और शरीर अधिक क्षीरा होता है. इस विकारमे ज्वर न हो तो नागभस्म देनी चाहिये.

नागभस्म, लोहभस्म, अब्रकभस्म और सुवराम्भस्म ये चारों 'जीवनीय' मानी जाती हैं. 'जीवनीय' के माने यह है कि जो जीवनको उपकारक (मददगार) हो. सच कहे तो अन्न (पोषक अन्न) जीवनीय है, किंतु जबतक हजम न हो तबतक वह जीवनीय नहीं है. अन्नमे जो भूतांश रहते हैं उनका पचन करके वे शरीरमे खींचे जाते हैं. ऊपर लिखी हुई चार भस्में इस तरह कार्य करती है कि शरीरके परमाणुओंको ताकद पहुंचाकर उनसे अन्नांश खींच लेनेका कार्य करती है. इस गुणके कारण उनको 'जीवनीय' कहते हैं. नागभस्म स्नायु, मांस और पेशिओंको ताकद देती है और इसलिए उसको 'जीवनीय' कहना चाहिए. स्नायु, मांस और पेशिओंकी ताकद नष्ट हो तो नागभस्मसे जरूर फायदा होगा.

नागभस्ममे वृद्धत्व (नपुंसकत्वनाशक) गुण है. किंतु जन्मसे नपुंसकत्व हो तो उसमे नागभस्मसे कुछ फायदा नहीं होगा. मधुमेहके विकारमे अशक्तता पायी जाती है और उस अशक्तताके कारण कभी कभी नपुंसकत्व प्राप्त होता है. इस प्रकारके नपुंसकत्वमे नागभस्मसे फायदा होगा. अंडकोश के ग्रंथिओंकी अशक्ततासे नपुंसकत्व प्राप्त

हुआ हो तो नागभस्मके साथ सिलार्जीत, सुवर्णभस्म इत्यादि द्वाइयां देनी चाहिए. पुण्यधन्वा नामक रसमे नागभस्मके साथ दूसरी द्वाइयां रहती है. यह भी नपुंसकत्व नाशक है.

बातवाहिनीओंकी क्षीराता, मानसिक क्षीराता इत्यादि विकारोंमें पांडुरोगका उपद्रव हो तो वह अब्रकभस्मके सेवनसे शांत होगा. रक्त-स्राव या मासिकस्राव अधिक होनेसे या मृद्गक्षणा या क्लमिरोग (कीड़े) के कारण पांडुरोग उत्पन्न हुआ हो तो लोहभस्मसे वह नष्ट होगा. किंतु प्रमारण बनानेकी क्रिया या धातुपरिपोषणाक्रिया कम हुई हो, सर्व इंद्रियोंमें अशक्तता हो या हृदयकी अशक्तता हो. इनमे पाण्डुरोगका उपद्रव होनेपर नागभस्मसेही फायदा होगा. अब्रकभस्म या लोहभस्म के साथ मिलाकर नागभस्म दे सकते हैं.

पुराने पक्षाधात (लकवा) के विकारमे, विशेषतः शाखाध्वित (हाथपैरोंमे) सिरा, स्नायु, कण्डरा इनकी अशक्तता हो और हाथ-पैरोंमें विशेषतः अंगुलियोंमें कुछ पकड़नेकी या उठानेकी ताकद न हो तो नागभस्म देनी चाहिये.

मधुमेह, दूसरे प्रकारके मेह या अशक्तता पैदा करनेवाले दूसरे व्याधी, इनमे आखिरकी अवस्थामे चक्र का आना और मस्तिष्कमे विचारोंकी गडवड होना. रोगी विचार नहीं कर सकता. विचार करने लगेगा तो वीचमे एकदम विचार वंद होते हैं, सुन्नसा मालूम होता है. ज्ञानेन्द्रियोंकी क्षीरातासे या मस्तिष्कको खून पूरे प्रमारणमे न मिलनेसे ये लक्षण होते हैं. केवल विचार करनेमे गडवड होती है इतनाही नहीं किंतु कई रोगिओंमें अनैच्छिक कर्म करनेमें भी गडवड होती है. जैसे पेशाव भरा हुवा हो तब भी पेशाव करनेकी इच्छा नहीं होती है. घंटों-तक वह दुःखसे हँरारा रहता है फिर भी पेशाव करनेका ख्याल नहीं रहता. पेशावकी रुकावटसे तकलीफ होती है तब भी वह दीवानेके माफिक पेशाव करनेका ख्याल नहीं रखता. इस प्रकारके विक्रममे नाग-भस्मसे इतना फायदा होता है कि एकही खुराखमे रोगीका अपने इंद्रियोंपर तावा रहता है.

मधुमेहकी आखीरी अवस्थामे संन्यास (Coma) का उपद्रव होता है. इसमेंभी कभी कभी नागभस्मसे फायदा होता है. याने दूसरी द्वाइयोंकी अपेक्षा नागभस्म अधिक उपकारक है.

हृदयकी अशक्ततासे या फैफड़ोंकी अशक्ततासे एक प्रकारकी खांसी आती है. इसमे वर्डी तकलीफ होती है और खांसी करते वस्त

आवाज भी जोरसे नहीं निकलता. कफ भी नहीं आता है. खांसी दिनरात चली रहती है. इसमें नागभस्म देनेसे आराम होगा.

मांसार्दुदके (Cancer) विकारमें नागभस्मके सेवनका प्रयोग देखना चाहिए. विशेषतः वातप्रधान रोग हो शूल अधिक हो तो नागभस्मसे कुछ फायदा होगा.

नागभस्मके गुणाधर्म—

दोष—वातदोष, विशेषतः व्यानवायु.

दूष्य—रसधातूसे शुक्र धातू तक.

स्थान—सहस्रार, संज्ञावाहिनी, आज्ञावाहिनी, स्नायु, आमाशय, अंतःस्नावक पिंड.

नागभस्मके सेवनसे कभी कभी कोषशूल पैदा होता है.

### C. प्रवालभस्म (मूँगा की भस्म).

प्रभारा ३ से २ रत्ती.

कंदूरीके पके हुवे फलके समान (पके बिंबके समान) रक्त, गोल, लंबे, तेलिया रंगके, जिनमें कीड़े न हुए हो, इस तरहके प्रवालके कंडे (टुकडे) भस्मके लिए अच्छे होते हैं।<sup>१</sup>

प्रवाल की शुद्धि—

१ क्षारवर्गसे प्रवाल की शुद्धि होती है.<sup>२</sup>

२ चमेलीके पत्तोंके रसमें दोलायंत्रसे एक प्रहर उबलानेसे मूँगा शुद्ध होता है.<sup>३</sup>

३ नींवूके रसमें एक प्रहर रखनेसे मूँगा शुद्ध होता है.<sup>४</sup>

नींवूका रस या छांछ छानके लेना चाहिये. नींवूका रस अधिक खट्टा हो तो उसमें पानी मिलाके फिर मूँगा रखना चाहिये. नींवूके रसमें या छांछमें मूँगा डालनेसे प्रथम उसमेसे थोड़ासा हवाके माफिक आवाज निकलता है. कभी कभी यह आवाज जोरसे आने लगता है और चूनेके माफिक मूँगा पानीमें पिघल जाता है. यह न होना चाहिए.

१. पवर्विंदीफलच्छायं वृत्तायतमवक्रकम् ।

स्विग्धमव्रणकं स्थूलं प्रवालं सप्तधा शुभम् ॥ र. र. स

२ विदुमं क्षारवर्गेण (शुद्धते । ) । र. र. स.

३ स्वेद्येद्वोलिकायंत्रे जयंत्या स्वरसेन च । मारितुकाप्रशालानां यामैर्कं शो धनं भवेत् । शार्ङ्गधर

४. वृद्धवैद्याधार.

नीम्बूके रसका प्रमाणा कम अधिक होनेसे मूँगा का रंग गुलाबी या फीका होता है।

### भस्म बनानेकी रीतः—

१ लकुच्चफल (बढ़ारफल) के रसमे भनसील, हरिताल और गंधक मिलाके खरल करो और उनमे शुद्ध मूँगा डालके पुट दो। आठ पुटके बाद प्रवालभस्म बन जाएगी।<sup>१</sup>

२ धीगुवारका रस, चौलाईका रस और स्थीका दूध, इनमे तपा हुवा मूँगा सात बार (प्रत्येकमे) भिगोनेसे प्रवालभस्म तय्यार होगी।

३ कुलथीके काढेसे, या तिलीके तेलमे, या छांछसे या गोमूत्रमे खरल करके अशी देनेसे प्रवालभस्म बन जाती है।<sup>२</sup>

४ मिट्ठीके कटोरेमे धीगुवारका रस डाल दो, उसके ऊपर शुद्ध मूँगा डालकर फिर धीगुवारका रस और गूदा डाल दो। दूसरे कटोरेसे बंद करके मिट्ठीसे लिपटे हुए कपड़ेसे लपेटकर थोड़ीसी आंच दो। ठंडा होनेपर निकालो। मूँगा सफेद होगा। फिर गुलाब पानीमे खरल करो। इस रीतसे अग्निपुटी प्रवालभस्म बन जाएगी।<sup>३</sup>

५ शुद्ध प्रवालका चूर्ण बनाकर कपड़ेसे छान लो। फिर गुलाब पानीमे इकीस दिन तक खरल करो और रातको चाँदके किरणासे सुखाओ। इससे गुलाबी रंगका प्रवालभस्म तय्यार होगी।<sup>४</sup> इसको, चंद्रपुटी प्रवालभस्म कहते हैं।<sup>५</sup>

### ग्रंथोक्त गुराधर्मः—

१. क्षयपित्तास्त्रकासद्धं दीपनं पाचनं लघु ।

विप्रभूतादि शमनं विद्वुम् नेत्ररोगनुत् ॥ र. र. स.

२. प्रवालं मुुरं साम्लं कफपित्तादिदोषनुत् ।

वीर्यकान्तिकरं स्त्रीणां धृते मंगलदायकम् ॥

क्षयपित्तास्त्रकासद्धं दीपनं पाचनं लघु ।

विप्रभूतादिशमनं विद्वुम् नेत्ररोगजिन् ॥ आ. प्र.

३. पित्तास्त्रादि श्वासकासादि रोगाह्नन्दादेवं दुर्निवारं विवर्च ।

भूतोन्मादाद्येत्ररोगान्विहन्पात्सय कुर्यादीपनं पाचनन्च ॥ र. प्र. सु।

४. लकुच्चद्रावसापिदै शिलागंधकतालकै । वज्रं विनाऽन्यरत्नानि त्रियन्तेऽष्टपुटै खलु । र. र. स.

५. कुमार्यास्तंदुलीयेन रत्न्येनन्च निषेचयेत् । प्रत्येकं सप्तवेलंच तस्तप्तानि कृत्स्नग । मौक्तिकानि प्रवालानि तथा रत्नान्यशेषत । क्षणाद्विविधवर्णानि त्रियन्ते नात्र संशयः ॥ शा. स.

६. उक्त माक्षिकवन्धुका प्रवालानिच सारयेत् । शा. स.

७ और ८. शुद्धवैद्यधार.

९ इस रीतसे बताये हुवे प्रवालभस्मके गुराधर्म इस ग्रंथमे लिखे हैं।

प्रवालभस्म, कपर्दिक भस्म, शंखभस्म ये सब चूनेके कल्प हैं। प्रवाल की भस्म अग्निसंस्कारसे बनाते हैं। अग्निसंस्कार न करनेपर कुछ प्रकारसे प्रवालभस्म बनायी जाती है। ( जैसे-प्र. ५ ) यह भस्म जितनी सूक्ष्म और वारितर ( पानीमे डालनेपर न हूँवती है ) हो उतनी कार्य-कारी होगी। भरम वारितर होनेसे उसके परमाणु अलग होते हैं और शरीरमे शीघ्र फैलते हैं। यह भस्म बनानेमें कभी कभी गलियां होती हैं और भस्मसे रोगीको कुछभी आराम नहीं मिलता। चूनेका कल्प होनेपर भी वह गुरामे सौम्य और शीतवीर्य ( ठंडा ) है। अग्निपुटी प्रवाल-भस्मसे चन्द्रपुटी प्रवालभस्मकी अपेक्षा सौम्यत्व गुरा कम है किंतु दीपनादि गुरा अधिक होते हैं। यहां जो गुरा बतलाये हैं वे अनग्नि-कृत ( चन्द्रपुटी ) प्रवालभस्मके हैं। आगे अग्निकृत प्रवालभस्मके कुछ गुरा लिखेंगे।

प्रवालभस्म-मधुर, साम्ल और दीपन है। मधुरके माने यह नहीं है के वह स्वादमे मीठा लगेगा। उसके आखीरी परिणाम मधुर रसके समान शामक, बूँहरा, प्रसादन इत्यादि होगे। इसी वजह प्रवालभस्मको माधुर्योत्पादक कह सकते हैं। इन ( शामक, शीतवीर्य और प्रसादन ), गुराओंके कारण अनेक विकारोंमे अच्छीतरह लाभ उठां सकते हैं। अच्छे प्रवालभस्मका रंग फीका गुलाबी होता है।

ज्वरकी प्रथम अवस्थामे ( आमावस्थामे ) लंघन करना चाहिए। लंघनके बाद ज्वर का पचन करनेके लिए प्रवालभस्मका सेवन करें। “ ज्वरादिपाचन कषाय ” की अपेक्षा प्रवालभस्म देनेसे लाभ होगा। बुखारका दौरा अधिक हो तो प्रवालभस्मसे फायदा होगा। ज्वर मेरितप्रधान लक्षण हो—जैसे जलन, प्यास, कै, बडबडना, चक्करका आना, निद्रानाश, सिरमे दर्द इत्यादि—तो उसमे प्रवालभस्मके गुरा अच्छी तरह पाये जाएंगे। प्रवालभस्मके साथ गिलोयका सत्व देते हैं। दूसरे संसर्गों ज्वरोमे या विषमादि ज्वरोंमेंभी पित्तके लक्षण अधिक हो, ज्वर का जोर अधिक हो, बुखार  $103^{\circ}-106^{\circ}$  तक हो तो प्रवालभस्मका जरूर उपयोग करना चाहिए। अधिक बुखारमे त्रिभुवनकीर्ति के समान तीव्र और पसीना उत्पन्न करनेवाली दवाइयां न देनी चाहिए। देना हो तो सोचमोचके और बिल्कुल कम प्रमाणमे देना या उनके साथ प्रवालभस्म मिलाके देना। पित्तप्रधान सन्निपात ज्वरमे सन्निपातकी दवाइयां तो जरूर हैं फिर भी पित्त दोष कम करनेके लिए और बुखार भी कम रखनेके लिए प्रवालभस्म देनी चाहिए।

‘चेचक ( माता ), छोटी चेचक इत्यादि वीमारित्रोंमें या जंतुजन्म दूषित ज्वर या आगंतुक ज्वरमें सारे शरीरमें जलन हो या बुखारका जोर अधिक हो तो प्रवालभस्मका जरूर उपयोग करे. सेन्द्रिय विषार शरीरमें फैलनेसे जो तीव्र ज्वर आता है उसमें भी प्रवालभस्म दें. इससे विषारका तीव्रत्व नष्ट होगा और ज्वरभी कम होगा. सारांश यह है कि ‘पित्तदोषप्रधान ज्वरमें’ प्रवालभस्म देनी चाहिए.

क्षय ( तपेदिक ) के तीनों अवस्थाओंमें प्रवालभस्मका उपयोग कर सकते हैं. क्षयरोगका प्रारंभ इतना धीरेसे होता है कि उसका निदान प्रथम अवस्थामें करना मुश्किल होता है. विशेषतः सर्व शरीरमें जलन और सूखी खांसी प्रथमसेही रहती है. इस अवस्थामें क्षयरोगका अंदेशा रखके प्रथमसेही प्रवालभस्म दे तो आगेका सर्व भयानक दृश्य नष्ट होगा. किंतु इस अवस्थाका ख्याल शायद ही होता है. जबसे ज्वर कायम रहने लगता है, खांसी बढ़ती जाती है और रोगीका वजन घटने लगता है तब क्षयरोगका निदान निश्चित होता है. इस अवस्थामें भी बुखार अधिक हो, प्यास लगती हो, सूखी खांसी और खांसते खत्त फैफड़ोंमें रोगके फैलावके लक्षण हो, कासश्वासादि लक्षण हो तो प्रवालभस्म देनेसे फायदा होगा. प्रवालभस्मके साथ मृगशृंगभस्म और गिलोयका सत्त्व देना चाहिये. क्षयरोगकी तीसरी अवस्थामें भी यह मिश्रण दे सकते हैं. ज्वरका अधिक होना, खांसीकी तकलीफ भी अधिक होना, फैफड़ोंमें जख्म होनेसे बलगममें खूनका निकलना, नहीं तो बलगम पीला या हरे रंगका और उसमें बदबू होना, सर्व शरीरपर-विशेषतः-माथेपर-पसीना आना, पसीना सुवह अधिक आना, बेघैनी और प्यास, रोगीका शरीर कृश और मूँह फीका, इन लक्षणोंमेंभी प्रवालभस्म गिलोयके सत्त्व के साथ देते हैं. कभी कभी प्रवालभस्मके साथ सुवर्णभस्मभी देनी पड़ती है. किंतु यह ख्याल सदैव रखना चाहिए कि क्षयरोगकी तीसरी अवस्थामें कोईभी इलाज रामबारा नहीं कह सकते हैं.

रक्तपित्त नामके विकारमेंभी प्रवालभस्मका बहुत उपयोग होता है. इस विकारमें प्रथम पित्तका प्रकोप होता है और पित्तदोषका विदाह होनेपर रक्तका विदाह होता है. क्योंकि पित्तका आश्रय रक्त है. ( पित्त विदग्धं स्वगुरौर्विद्यादाशु शोणितम् । ) रक्तका विदाह होनेपर रक्तमें पित्तके तीक्ष्णौष्ण्यादि गुरा बढ़ते हैं याने रक्त दुष्ट होता है. रक्तकी नलियां भी दुष्ट होती हैं, पतली होती हैं और उनमेसे रक्त बाहर निकल आता है. इसी बजह मुहसे, नाकसे, गुदमार्गसे, योनिमार्गसे

और चमड़ीपर जो छोटे छोटे छिद्र होते हैं उनमें से भी खून निकलने लगता है. वह चाहे दिनरात निकलता हो या कभी कभी निकलता हो. इसके साथ साथ भिन्नभिन्न आदमियों के भिन्न भिन्न प्रकृति और दोष के अनुसार भिन्न भिन्न लक्षण पाये जाते हैं. उनमें लक्षणों के अनुसार भिन्न-भिन्न चिकित्साभी करनी पड़ती है. किंतु इन सब लक्षणों का मूल कारण जो विद्युत पित्त वह प्रवालभस्म से ही ठीक होगा. पित्त के तीक्षणों परादि दूसरे गुण भी कम होते हैं, पित्त का सामय प्रस्थापित होता है और रक्त का भी प्रसादन होता है. इस विकारमें प्रवालभस्म अकेली दे सकते हैं या प्रवालभस्म, सुवर्णमाध्यिकभस्म और हल्दीका चूर्ण सम्माग भिन्न करके दे सकते हैं. हल्दीका कार्य स्तंभक है इसलिये वह रक्तपित्त के आरंभमें न देनी चाहिये. दूसरे विकारोंमें संकर या उपद्रव रक्तपित्त का हो (ऐसा संकर या उपद्रव आंत्रिक संचिपातमें हो सकता है) तो प्रवालभस्म अच्छा काम देगी.

रक्तपित्त का एक प्राकृतिक भेद भी रहता है. जन्मसे ही किसी की प्रकृति ऐसी रहती है कि कुछ भी चोट लगे या जख्म हो या गर्भीके दिनोंमें नाकसे खून निकलता हो, तो वह स्वाव बहुत देर तक चालू रहता है. मामूली चोटके कारण खून निकले तो साधारण आदमीमें आधिकसे आधिक दो मिनिट तक खून निकलेगा, उसके बाद वह गाढ़ा बन जाएगा और जख्म जुड़ जाएगी. किंतु इस प्रकृतीके आदमीका रक्त गाढ़ा होता ही नहीं. इसलिये छोटीसी भी चोट लगे तो रक्तस्वावके मारे वह हैरान हो जाता है. यह विकार खियोंमें बहुत कम प्रमाणमें रहता है. क्योंकि इन रोगियोंको हर महिनेमें मासिक स्वाव के बहुत इतना खून निकलेगा के करीब करीब प्राणान्तिक अवस्था होगी. हमारा अंदाज है के इस विकारमें प्रवालभस्म देनेसे कुछ लाभ होगा. प्रवालभस्मके साथ सुवर्णमाध्यिकभस्म देनेसे ही आधिक फायदा होगा.

कभी कभी किसीको नाकमें से खून निकलनेकी आदत पड़ती है. कभी कभी केवल गर्भीके दिनोंमें यह खून निकलता है. खियोंमें कभी कभी मासिक स्वावके साथ नाकमें से खून निकलता है. कभी कभी गर्भवती खियोंमें भी नाकमें से खून निकलने लगता है. सब प्रकारोंमें प्रवालभस्मका सेवन असृतके समान है. बहुत काल तक प्रवाल लेनेसे यह आदत भी नष्ट हो जाती है.

रक्तपित्तकी तीव्र अवस्थामें प्रवालभस्म आधिक प्रमाणमें और दिनमें आधिक बार देनी चाहिये. किंतु पुराने विकारमें या जन्मसे ही वह विकार हो तो कम प्रमाण देना चाहिए. सूक्ष्म प्रमाणमें दे तो बहुत

फायदा होगा। इसका अनुपानभी भिन्नभिन्न लक्षणोंके अनुसार अलग अलग होगा।

कासके-खांसीके-विकारमें भी प्रवालभस्म देते हैं। इस प्रकारके खांसीमें पित्तदोषकी विकृति रहती है। छातीमें जलन, ज्वर, मुँह सूखना, मुँहमें कडवापन, प्यास ( वह इतनी होती है के प्यास के मारे जी हैरान होता है ), कै पीले रंगकी होती और उससे गलेमें जलन पैदा होती है, खांसते खांसते कै हो जाती है। मुँहपर और सारे शरीरपर फीकापन जान पड़ता है, हाथपैरोंमें इतनी जलन होती है कि रोगीको कुछ सूझता नहीं, जैसे हाथ पैरोंपद लाल मिर्च लगायी है। सर्व शरीरकी चमड़ी सूख जाती है। इस तरहके कास में मीठे अनारके रस के साथ या अनारके मुरव्वेके साथ या मिथ्रीके पाकमें प्रवालभस्म देनी चाहिये।

अधिजिव्ह, उपजिव्ह और गलशुण्डिका इन रोगोंमें गलेमें जलन होती है, सूखी खांसी आती है। खांसीसे बड़ी तकलीफ होती है और खांसते खांसते कै हो जाती है। कै करते वहत मुँह में जलन होता है। इस प्रकारमें भी प्रवालभस्म देनी चाहिये।

छोटे बच्चों की कुकर खांसीमें भी प्रवालभस्म देते हैं। इसमें खांसीका जोर बहुत होता है इतना कि नाकमेंसे, मुँहमेंसे और कानमेंसे खून निकलने लगता है। मुँह विलकुल लाल हो जाता है और मुँहपर सूजन आती है। इन लक्षणोंमें प्रवालभस्मसे बहुत लाभ होगा। प्रवालभस्मके सेवनसे गला और सप्तपथ ( Pharynx ) इनकी सूजन कम होती है।

‘फैफड़ोंमें जख्म हो और उससे खांसी आती हो तो वह प्रवालभस्मके सेवनसे कम होगी। इसमें सूखी खांसी, जलन, कफमें खून गिरना ये लक्षण होते हैं। जख्मभी धीरे धीरे भर आती है। कभी कभी प्रवालभस्म के साथ ‘लाक्षा’ ( लाख ) देनी पड़ती है तो कभी कभी केवल प्रवालभस्मसे ही कार्य होता है।

गर्भिणी लीके खांसीमें और खांसीके साथ होनेवाली वांती ( कै ) में प्रवालभस्म एक अच्छा इलाज है। गर्भ जब बढ़ता जाता है तब उसकी हड्डिया बननेके लिये चूनेके कल्पोंकी जरूरत पड़ती है। ये माताके अन्नसे ही भिल सकते हैं। माता इस तरहका आहार न ले तो उसको खुदकी हड्डियोंसे वे चूनेके कल्प निकालके गर्भकी हड्डियां बनाना पड़ता है। फल यह होगा कि माताके अवयवोंमें कमताई होगी। विशेषतः रक्त, पचनेद्वित्र और हड्डियां इन पर यह असर होता है। फीकापन, हाथपैरोंमें दर्द, पैरोंपर सूजन और पीड़ा, थोड़ा भी आहार पचन न

होना, पेटका फूलना, कै, इत्यादि लक्षण होते हैं। इस अवस्थामें प्रवाल-भस्मसे फायदा होता है। कई खियोंके बच्चे जन्मसेही दुबले पतले होते हैं। उनकी चमड़ी सूख जाती है और इसी वीमारीसे मर जाते हैं। ऐसी खियोंको गर्भके शुरूसेही प्रवालभस्म दें तो तगड़े बच्चे पैदा होंगे। क्योंकि उनकी हड्डियाँ और दूसरे अवयवोंका बढना अच्छी तरह न होनेसेही इस विकारका प्रारंभ होता है। हड्डियाँ, रक्त और मांस बढनेको प्रवालभस्मसे मदद होती है। और गर्भ बढ़ता जाता है। गर्भपाल रस का कार्य इस कार्यसे भिन्न है।

अग्निपुटी प्रवालभस्म या चन्द्रपुटी प्रवालभस्म खट्टे नीमूके रस के साथ सेवन करनेसे आहार का पचन होता है। अग्निमांद्य या अग्निसाद, अरोचक ( मुँह में स्वाद नहीं रहना ) ये विकार दो प्रकारके होते हैं। किसीमे कफदुष्ट होती है तो किसीमे पित्तदुष्ट होती है। पित्तदुष्ट हो तो प्रवालभस्म, कामदुधा, और प्रवाल पंचामृत देना चाहिए। कफ-दुष्ट हो तो अग्निकुमार, हिंगवादि चूर्ण इत्यादि औषधोंसे फायदा होगा। मुँहका स्वाद कडवा हो, मुँहमे बदबू हो या गलेमे जलन हो तो इस विकारमे प्रवालभस्म देनी चाहिए। इससे पाचक पित्त योग्य प्रमारामे बहता है, और पचनक्रिया बढनेसे अग्निमांद्य हट जाता है।

अग्निमांद्यकी चिकित्सा न करे तो उससे रसाजीर्ण का विकार उत्पन्न होता है। इस विकारमें भोजनके समय सिर्फ अन्न देखतेही मुँहमे पानी आता है और भोजनकी इच्छा नष्ट होती है। कभी कभी तो अन्नके खुशबूसेही पानी आने लगता है और रोगी भोजन नहीं चहाता। कोई कोई तो केवल अन्नका नाम सुन कर दुःखित होते हैं। रोने लगते हैं। इतना अन्नका द्रेष ( अन्नद्रेष ) रहता है। हरवर्षत बेचैनी रहती है और पेटमे भारीपन रहता है। इन लक्षणोंमे अग्निपुटी प्रवालसे फायदा होगा।

रसक्षय या अनुलोम क्षय नामके विकारमे अनग्निकृत प्रवाल-भस्मका अधिक उपयोग होता है। इससे रसादि धातुओंमे जो अग्नि ( धात्वग्नि ) रहते हैं वे बढ जाते हैं और सब धातुओंकी उत्पत्ति अच्छी तरह होती है।

**प्रवालभस्म—विशेषतः** अग्निपुटकी प्रवालभस्म—एक अच्छा ‘दीपन’ औषध है। इससे पेटमे पाचक रस का कार्य व्यवस्थित हो जाता है। पित्तदुष्टसे ‘अग्निसाद’ ( पाचक अन्नीकी अशक्तता ) का विकार हो तो उसमे प्रवालभस्मसे काम होगा। पित्तकी दुष्टी कम करनेके

कारण उसका साम्य प्रस्थापित होता है और उसकी पाचक शक्ति भी बढ़ जाती है। इस प्रकार यह दीपन कार्य होता है।

पित्ताभिष्यंद् यह एक नेत्रविकार है। इसमें आँखें सुख हो जाती हैं, उनमें जलन होती है, दर्द और सूजन भी रहती है और पीड़ाके मारे दिनरात नींद नहीं मिलती। इसमें प्रवालभस्मका उपयोग होता है। प्रवालभस्म और सुवर्णामाक्षिक भस्म इनका मिथ्रा मिथ्रा और धीके साथ या दूधके साथ पीनेको देना चाहिए।

आँखोंमें जलन, हाथ पैरोंमें जलन, पेशावका जलन (जो पूयप्रमेह या पूयशुक्रके कारण न हो), पेशावका रंग लाल या गहरा, सर्व शरीरमें विशेषतः चमड़ीमें जलन इत्यादि लक्षण गर्भीके दिनोंमें उत्पन्न हो या गरम पदार्थ खानेसे उत्पन्न हो या रातको नींद न लेनेसे पैदा हो तो इनमें प्रवालभस्म देनी चाहिए। इस अवस्थामें 'मौक्तिकभस्म' से भी फायदा होता है किन्तु वे बढ़ जाने पर जलन अधिक हो तो उसका उपयोग करना चाहिए।

पित्तोन्माद या भूतोन्माद मेंभी प्रवालभस्म का उपयोग होता है। उन्मादमें प्रथम मन विकृत होकर पश्चात् शरीरको विकृत करता है या प्रथम शरीरमें कुछ व्याधी उत्पन्न होकर उसका असर मनोदेशपर होनेसे मनभी विकृत होता है, और मन में दोष पैदा होनेसे उन्मादका विकार होता है। दूसरे प्रकारका उन्माद गर, तीव्र मद्य, गांजा, भांग इत्यादि पदार्थोंके सेवनसे उत्पन्न होता है। प्रथम प्रकारमें मानसिक दुष्टीसे जो उन्माद होता है वह मानसिक चिन्ता, दुःख, भय, शोक इत्यादिके कारण उत्पन्न होता है। दूसरे प्रकारके उन्मादमें प्रवालभस्मसे फायदा होगा, क्योंकि तीव्र मद्यार्क या दूसरे तीव्र विषारेंके सेवनसे शरीरमें पित्तदुष्टी होती है। और पित्तदुष्टीके लिये प्रवालभस्म यहही एक अकसीर इलाज है।

पेटमें सेन्ड्रिय विषार (गर) जानेसे, उसमें पित्तदुष्टी होती है और उन्माद होता है। इससे रोगी हैराना हो जाता है, विलकुल पागल बन जाता है। इस प्रकारके उन्मादको कोष्टस्थ सेन्ड्रिय विषार (गर) कारण हो तो आरोग्यवर्धीनी, चन्द्रप्रभा, शिलाजतु इन औषधोंके साथ प्रवालभस्म देनी चाहिए।

भूतोन्मादमें भी पित्तका अनुषंग हो तो प्रवालभस्म देनी चाहिए। जिन खियोंका स्वभाव तामसी होता है। थोड़े कारणसेभी जो कुछ होती है, उनको प्रवालभस्म देना योग्य है। उन्मादके दौरेके साथ नाक-

मेसे खून गिरना, मुँह लाल होना, नसो का फूलना इत्यादि लक्षण हो तो प्रवालभस्म से आराम मिलेगा।

बच्चोंको मृद्धस्थि ( Rickets ) नामका रोग होता है। इसमेंभी प्रवालभस्म से फायदा होता है। विलकुल छोटे ( तीन चार महिने उम्रके ) बच्चेसे लेकर बड़े ( १०-१२ साल उम्रके ) लड़कों तक यह दे सकते हैं। इसमें रोगीका ( बच्चेका ) शरीर सूख जाता है, हथपैरोंकी हड्डिया मात्र चमड़ीसे लपेटी रहती है, पेट बड़ा और फूलाहुवा रहता है, चमड़ी सूख जाती है। हाथपैरोंकी विशेषतः पैरोंकी हड्डिया नरम हो जानेके कारण टेढ़ी होती है। टट्ठी बार बार और थोड़ी थोड़ी आती है। थोड़ासा बुखारभी आता है। इन लक्षणोंमें रोगीको प्रवालभस्म और गिलोयका सत्त्व मिलाके देना चाहिए। इसीमें खांसी अधिक हो तो मृगश्यंगभस्म लाभदायक होगी, प्रवालभस्म यह एक चूनेका सैद्धिय कल्प होनेसे मृद्धस्थी में उसका असर होता है क्योंकि मृद्धस्थीके विकारमें चूनेके सेन्द्रिय कल्पोंकी कमताई रहती है। और ये चूनेके कल्प प्रवालभस्म सब इन्द्रियोंको पहुँचाती है, जिससे हड्डियां फिर सख्त और कठिन हो जाती हैं, मृद्धस्थीमें शुरूसे आखीरी अवस्था तक प्रवालभस्म गुराकारी है।

‘पारिगर्भिक विकारमें’ भी प्रवालभस्म देते हैं। ( माताके पेटमें गर्भ हो, और वह अपने प्रथम बच्चेको पिलाती हो तो वह बच्चा दूध हजम नहीं कर सकता। इस विकारको पारिगर्भिक कहते हैं।) इसमें बच्चा विलकुल सूख जाता है। उसको कै और दस्त होते हैं। थोड़ा बुखारभी रहता और वह दिनरात रोता है। इस अवस्थामें प्रवालभस्म देनी चाहिये। ( अपचन और अतिसार हो तो सर्वांगसुंदर देना चाहिये। )

बच्चोंके दंतोद्भव विकारमेंभी प्रवालभस्म गुरा देगी। बच्चेको दांत निकलनेके दिनोंमें यह तकलीफ होती है। विशेषतः यह बीमारी बहुत दिनोंसे चली आयी हो, बुखार, कै और पीले रंगके खराब दस्त आते हो तो प्रवालभस्म जरूर देनी चाहिए। जिन बच्चोंको प्रत्येक दांत निकलनेके समय तकलीफ होती है उनको दांत निकलनेके पहिलेही प्रवालभस्म शुरू करनी चाहिए। ( दंतोद्भव विकारमें बात-बृद्धिके लक्षण हो और दस्त हरे रंगके शाकके पानी जैसे हो तो कनकसुंदर देना चाहिए। )

जब बच्चा मा का दूध पीता है तब कभी कभी माताको भी कुछ विकार होते हैं। सर्व शरीरका फीकापन, अशक्तता, हाथपैरोंके जोड़ोंमें और दूसरी हड्डियोंके जोड़ोंमें पीड़ा इत्यादि लक्षण हो तो प्रवालभस्म

देनी चाहिए. कभी कभी सब वच्चे दुबले पतले पैदा होते हैं और जम्मके बाद मृद्गस्थि विकारसे मर जाते हैं. इस हालतमें माताको अगर प्रवालभस्म खिलाये तो आगेके वच्चे जरूर बच जाएंगे.

प्रवालभस्मकां प्रमुख गुण यह है कि पित्तदोषकी दुष्टि हो तो उसका साम्य प्रस्थापित करें. इसलिए जिन विकारोंमें पित्तके तीक्ष्णात्व, ऊषात्व इत्यादि गुण बढ़ गये हो उन विकारोंमें प्रवालभस्म अधिक गुणाकारक होता है. पित्त बढ़नेसे सिरमें दर्द हो तो इसमें कै और गलेमें जलन इत्यादि पित्तके लक्षणा पाये जाते हैं. इसमें प्रवालभस्म अच्छा कार्य करेगी. पित्तज अम्लपित्तमेंभी बहुत कड़वी पीले रंगकी कै होती है, जलन होती है, चक्कर, झुंगी, सिरमें दर्द इत्यादि पित्तके लक्षणा होते हैं. इसमेंभी प्रवालभस्म देनी चाहिए. प्रवालभस्मके सेवनसे पित्तकी तीव्रता और अम्लता कम होती है, माधुर्य उत्पन्न होता है और इसीसे जलन आदि लक्षणा कम होते हैं. कामदुधाका भी यह कार्य है किंतु कामदुधाका स्तंभक कार्य होता है.

प्रवालभस्म शुक्रदोषमेंभी गुणाकारी है. शुक्रदोषमेंभी शुक्रस्थान का दोष हो तो इससे फायदा होगा. अंथिशुक्रका विकार हो या पूयशुक्र हो तो इससे कुछ आराम नहीं मिलेगा. किंतु थोड़ीसी देर तक धूपमें जानेसे, या अंगारके पास बैठनेसे, या गर्म मसालेदार चीजें खानेसे या रातको जागनेसे स्वप्नदोष होता हो, या कुछ कारण-न होनेपरभी शुक्रस्थाव होता हो तो प्रवालभस्म जरूर लाभदायक होगी.

जवानीमें बूरी आदतोंसे शुक्रस्थान दुबला हो जाता है. मनभी इतना दुबला होता है कि खीके विषयमें कुछभी बाते सुने तो तुरन्त शुक्रस्थाव होने लगता है. सच कहे तो इस तरहके रोगिको कामेच्छा का सत्यसुख मालूम भी नहीं हो सकता. क्योंकि खीसंगकी पूर्ती या प्रारंभ करनेके पहलेही शुक्रस्थाव हो जाता है. केवल इंद्रियलालसा होती है और वह भी इतनी के हम लिख नहीं सकते हैं. केवल खी ( वह अपनी रिश्तेदार होने परभी ) देखनेसे मनका उत्तेजन होकर शुक्रस्थाव होता है. केवल कंकराँका आवाज सुनकर भी यहही बात होती है. कौनसीभी खी थोड़ीसी सुंदर हो या अच्छा कपड़ा पेहनकर जा रही हो तो उसको रास्तेमें एक क्षणा देखनेसेभी मन उत्तेजित होता है और शुक्रपतन होता है. ऐसी हालतमें विशेषतः मन की अशक्ततामें प्रवालभस्म विशेष उपकारी है. वंगभस्म शुक्रस्थानको ताकद देती है तो प्रवालभस्म उसका उत्तेजन कम करती है. शामक है. इसलिए कभी कभी ये दोनों मिलाके देना यडता है.

‘सुजाख या आतशक की पुरानी वीमारीसे मूत्रमार्गपर असर हो जाता है। इसकी बजह पेशावमे जलन, पेशावका रंग सुख्ख होना; उसमे और सर्व शरीरमे जलन, हाथपैरोंमे और आँखोंमे जलन, दाँतोंके मसूडोंमेंसे खून निकलना, मसूडोंकी सूजन इत्यादि लक्षण हो तो प्रवालभस्म और सारिचा ( गौरीसर ) देनेसे आराम होगा।

आतिमैथुनसे या पुराने सुजाख या आतशकसे स्त्रियोंकोभी मूत्र मार्गमे ऊपर लिखे हुए विकार होते हैं। इसमे भी प्रवालभस्म लाभदायक है।

मूत्रमार्गके माफिक अपत्यमार्गमेंभी सुजाख और आतशकके वीमारीसे विकार होते हैं, अंदर जलन होता है, फोडे आते हैं, गर्भशयमे जलन और फोडे होनेसे उसका कार्य ठीक नहीं चलता, गर्भ नहीं रह सकता अगर रहे तोभी कुछ दिनोंके बाद गर्भस्त्राव या गर्भपात हो जायगा। इन लक्षणोंमें प्रवालभस्म उपकारक है।

स्त्रियोंके प्रदर नामके विकारमे योनीसे स्त्राव निकलता रहता है, गर्भशयकी विकृतीसे या योनिमार्गकी विकृतीसे यह विकार उत्पन्न होता है। यह विकृतीभी अनेक प्रकारकी होती है, रक्तप्रदर में अंदरकी रक्तवाहिनियां फूट जाती हैं तो श्वेतप्रदरमे दूसरे विभागोंसे स्त्राव निकल आता है। इसलिए प्रदरकी चिकित्सा करनेके पहले यह देखना चाहिए की अंदर कौनसे विभागकी और किस प्रकारकी विकृति है, चिकित्सा भी दोनो प्रकारकी होनी चाहिए, पेटमेंभी औषध देना चाहिए और उत्तर वस्तीसे ( पिचकारीसे ) योनिमार्ग और गर्भशयमी धोकर साफ रखना चाहिए, स्त्रावके लक्षण और दूसरे लक्षणों काभी अच्छी तरह ख्याल करके पेटमे दबाई देनी चाहिए।

प्रदरका स्त्राव पानीके माफिक पतला हो, बदबूदार हो, गरम हो कर जैसे उबलता हुवा पानी अंदरसे आता हो, इसीसे जलन हो और जहाँ ज़ुहाँ चमडीपर यह स्त्राव लग जाय वहाँ फोडे फुंसिया आती हो, चमडीको स्पर्शभी सहन न हो, उसमे छाले पड गये हो और जलन हो, यह योनिमार्गका जलन कभी कभी इतका होता है कि मैथुन अशक्य हो जाता है। इस अवस्थामे बहुत रोगियोंको प्रवालभस्म और उशीरासव से लाभ हुवा देखनेमे आया है।

रक्तप्रदरमे और अत्यार्तव ( मासिक स्त्राव अधिक होना ) मेंभी ऊपर लिखे हुए लक्षण हो तो प्रवालभस्म से फायदा होगा।

बवासीरमेंभी रक्तार्श और पित्तार्श ऐसे दो प्रकार होते हैं। इन दोनो प्रकारोंमें पित्तके लक्षण अधिक हो तो प्रवालभस्म देनी चाहिए।

प्रवालभस्म, गिलोय का सत्व और नागकेसर इनका योग्य प्रमाणामे मिथ्रण करके दूधके साथ या मखबन और मिश्रीके साथ देनेसे जरूर फायदा होगा।

विषके सेवनके बाद आदमी वच जाय तबमी उस विपके परिणाम उसके शरीरमे कायम रहते हैं। विशेषतः संखिया, रसकर्पूर इत्यादि तीक्षणा और तीव्र विपार तो बड़ी तकलीफ देते हैं। विपके लक्षण तो तीव्र नहीं होते हैं किंतु शरीरको स्वास्थ्य नहीं मिलता, पेशाव गरम आता है, उसमे जलन होती है, पेटमे, छातीमे, पीठमे या सर्व शरीरमे जलन होती है। हाथपैरोंमे जलन और नाकमेसे खून गिरनेकी आदत पड़ जाती है। चक्र आती है। इस विकारमे प्रवालभस्म गुराकारी है।

अग्निपुटी प्रवालभस्मके गुणधर्म ऊपर कुछ वर्णन कर चुके हैं। यह भस्म अनश्चित प्रवालभस्मकी अपेक्षा कुछ तीक्षणा और ऊपरा है। किंतु इसमे पाचन और दीपन ये गुरा अधिक पाये जाते हैं। आमाशय या पक्वाशयमे शूल, जलन, अपचन और अपचनसे उत्पन्न हुवा अतिसार इन लक्षणोंमे अग्निपुटी प्रवालभस्म देनी चाहिए।

### प्रवालभस्मके गुणधर्म।

दोष—पित्तदोष ( तीक्षणात्व, उपरात्व, अम्लत्व-गुरावृद्धि )

दूष्य—अस्थि, मज्जा, हृद्वरक्त और मांस।

स्थान—आमाशय, पचनेन्द्रिय, वातवहमंडल और मनोदेश।

### ९. मंडूरभस्म (लोहकिणी की भस्म.)

मंडूरके माने लोहकिणूँ<sup>१</sup> लोहाको अश्वीमे तपानेसे उसके ऊपर जो एक लाल या काले रंगका जंग आता है उसको लोहकिणूँ कहते हैं<sup>२</sup> यह कई किस्मका होता है। सो ( १०० ) सालसेभी पुराना हो तो वह अच्छा मंडूर है। अस्सी सालका मध्यम, साठ सालका कनिष्ठ और उसीसे कम सालका हो तो वह त्याज्य ( नाकाम ) समझना चाहिए<sup>३</sup>।

१. मंडूर लाल या काला होता है

२. ध्वायमानमयो वहौ परित्यजति यं मलम् ।

स किणूसंज्ञां लभते तदनेकविधं मतम् ॥ वृ. यो. त.

३. शताद्वमुत्तम किणू मध्य चाशीतिवार्षिकम् ।

अधमं पष्टिवर्षीयम् ततो हीन विषोपमम् ॥ रसार्णव

## मंडूरका शोधन, और भस्म बनानेकी रीत.

( १ ) गोमूत्रमे त्रिफलाका काढा बनाओ और लोहकिट्ठ तपातपाकर बार बार उस काढेमे दुःखाओ. उसका अपने आप चूर्ण बन जाएगा. चूर्ण तैयार होनेके बाद खरलमे उसको अच्छी तरह पीसना चाहिए. इसीको मंडूरभस्म कहते हैं।<sup>१</sup>

( २ ) वहेडेके लकडीके बरतनमे लोहकिट्ठ डालके, वहेडेके लकडीसे ( या कोयलेसे ) उसको अग्नि देना चाहिए. तपनेसे वह जब सुख्ख हो जाय तब उसपर थोड़ा थोड़ा गोमूत्र डालना चाहिए. सात बार ऐसा करनेसे मंडूरभस्म बन जाती है. महीन पीसकर कपडेसे अच्छी तरह छान लेनी चाहिए.<sup>२</sup>

( ३ ) मंडूरको शुद्ध करनेके बाद गोमूत्र और त्रिफलाके काढेसे उसको प्रत्येक सात बार भावना देनी चाहिए. प्रत्येक भावनाके बाद अग्निपुट और अग्निपुटके बाद खरल करना चाहिए. इस तरह बनाई हुई मंडूरभस्म बहुत गुणकारक है.<sup>३</sup>

### ग्रंथोक्त गुणधर्मः—

तच्चूर्णं मधुना लीढं पांडुं हन्ति सकामलम् । रसाणंव.

किट्ठं कषायं शिशिरं पांडुश्वयथुशोषजित् ।

हलीमकं कामलां च हरते कुंभकामलाम् ॥ बृ. यो. त.

ये गुणा मारिते मुण्डे ते गुणा मुण्डकिट्ठके । र. र. स.

मण्डूरं शिशिरं रुचयं पाण्डुश्वयथुशोषजित् ।

हलीमकं कामलां च छीहानं कुंभकामलाम् ॥ योगरत्नाकर.

मंडूरभस्म बनानेके लिये जितना पुराना लोहकिट्ठ मिल सकेगा। उतना पुराना लेना चाहिए क्योंकि वहही श्रेष्ठ है. जहां पुराने लोहेके कारखाने हो या तोफके कारखाने हो वहां जमीनके अंदर पुराना लोहकिट्ठ मिल सकता है. न मिलें तो नया लेना चाहिए. किंतु वह श्रेष्ठ नहीं

१. गोमूत्रशिफलाक्वाथ्या तत्क्वाथे सेचयन्च्छन्नै. ।

लोहकिट्ठं उत्तसं तु यावज्जीर्यति तत्स्वयम् ।

तच्चूर्णं जायते पेष्य मंडूरोऽयं प्रयोजयेत् ॥ र. र. स.

२. अक्षांगारैर्धमेतिकिट्ठं लोहजं तद्वां जलै ।

सेचयेदक्षपात्रान्तं तस्वाः पुन पुन ।

मण्डूरोऽयं समाख्यातश्चूर्णं श्लभ्ण नियोजयेत् ॥ र. र. स.

३. वृद्धवैद्याधार.

है मंडूरभस्म वनानेके लिए लोहभस्मकी अपेक्षा कम दिन लगते हैं। वनी हुई मंडूरभस्मका रंग काला और थोड़ा सा लाल रहता है।

वालमंडूर, भौममंडूर और मधुमंडूर इनमें बहुत थोड़ा फर्क है। वह फर्क वनानेके रीतमें होनेसे हम यहाँ तीनोंका वर्णन एकही जगह देते हैं। वालमंडूर वनानेमें गोमूत्रके पुट अधिक नहीं देते हैं। भौममंडूर में सुवर्णामालिकका थोड़ा सा मिश्रण रहता है और मधुमंडूर वनानेके समय मधुर वर्गके वनस्पतिओंके पुट दिये जाते हैं। इतनाही उनमें फर्क है। (इन तीनों मंडूरभस्मोंका वर्णन हम बृद्धवैद्य परंपराके अनुसार देते हैं। इसको अर्थोंमें आजतक हमको कुछ आधार नहीं मिला है।) इनमें बहुत कम फर्क होनेसे सबहीको हमने 'मंडूरभस्म' यह संज्ञा दी है।

मंडूरभस्म यह एक लोहेका प्रकार है। यह भस्म शरीरमें लोहभस्म की अपेक्षा जलद हजम होती है और शरीरमें फैलती है और भी यह एक बात है कि लोहकिछु किछुकी अवस्थामें अधिक कालतक रहनेके कारण उसका असर खून पर-विशेषतः रक्त परमाणुओंपर-अच्छा और जल्द हो जाता है। इसमें दुसरी एक बात यह है कि वच्चोंके लिए यह दूसरी दवाइयोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

मंडूरभस्मके सेवनसे खून में रक्तपरमाणु (लाल रंगके परमाणु) बढ़ जाते हैं। भिन्न भिन्न अनेक कारणोंसे ये रक्त परमाणु कम होते हैं। इससे खून का रंग बदल जाता है। चमड़ीभी पीलीसी नझर आती है। इसीको पांडुरोग कहते हैं। रक्तपरमाणु कम होनेके कारण खून का प्रवाह जलद चलने लगता है। हृदय जलद चलता है और नाड़ीभी जलद रहती है। एक मिनटमें १०० वारतक नाड़ी चलेगी। इसका कारण यह है कि रक्तपरमाणुओंका कार्य प्रारावायूको सर्व शरीरके अवयवोंतक पहुंचानेका है। रक्तपरमाणु तादादमें कम होंगे तो थोड़े परमाणुओंको अधिक काम करना पड़ेगा। वार वार फैफड़ोंसे प्रारावायु लेकर अवयवोंकी ओर खींचना पड़ेगा। इसलिए हृदयकोभी जलद जलद काम करना पड़ता है। पांडुरोगमें यहही बात होती है। लोहभस्म और मंडूरभस्मके सेवनसे रक्तपरमाणु बढ़ते जाते हैं। आयुर्वेदशास्त्रका यह मत है कि मंडूरभस्मसे रंजक पित्तकाकार्य व्यवस्थित होता है और रक्तपरमाणु बनते हैं। आजकलके वैद्यकशास्त्रका कहना है कि मज्जाधातूसे (हड्डियोंके अंदरके लाल मगजमें) रक्तपरमाणु पैदा होते हैं और मज्जाधातूका कार्य बढ़ाना यहही एक योग्य चिकित्सा है। कुछभी हो, मंडूरभस्मसे रक्तपरमाणु बढ़ने हें यह बात तो सच है। पित्तज पांडुविकारमें इस भस्मसे अधिक प्रायदा होता है। इसके कपाय गुराकी

वजह नाडीका वेग भी कम होता है और फीकापनभी कम होता है। पांडुरोगकी कुछभी दबाई लो; उसमे लोहका कुछ कल्प विशेषतः मंडूर मिलाया जाता है।

कामला या कामीन के विकारमें पित्तके लक्षण अधिक होते। मंडूरभस्मका बहुत उपयोग होता है। इस विकारमे हाथपैरोंपर पीलापन नजर आता है। आँख पीले पड़ जाते हैं और पेशाव भी पीला पीला निकल आता है। मूँत्रेन्द्रियकी चमडी काली पड़ती है और दस्त विलकुल सुफेद और पानीमे आटा मिलाये जैसे जान पड़ते हैं। इस विकारमे मंडूरभस्म देनी चाहिए। मंडूरभस्मके साथ कुमारी आसव, या मूलीका रस और चीनी देनेसे आराम होगा। यह भस्म सुवर्णामाल्कि भस्मके साथभी दे सकते हैं।

पांडुरोग बढ़ जानेसे या पुराने कुंभकामलाके विकारमें सर्वांगशोफ ( सर्व शरीरपर सूजन ) उत्पन्न होता है। इसका कारणभी रक्तपरमारु कम होना यहही है। यह सूजन आँखोंके पटलोंपर, मुँहपर, हाथपैरोंपर होती है। रक्तपरमारु कम होनेके कारण रक्तमे पानीका प्रमाण अधिक रहता है और वह पानी चमडीके अंदर निकल आता है। इसी वजह सूजनपर अंगलीसे दबावें तो गड्ढा पड़ जाता है और वह जल्द नहीं भर आता। इस प्रकारकी सूजनमे पांडुरोग हो या पांडुरोगसेही वह उत्पन्न हुई हो तो मंडूरभस्म बहुत गुराकारी होगी। इसके सेवनसे रक्तपरमारु तादादमे बढ़ जाते हैं, वे बढ़ जानेसे हृदयका भी कार्य व्यवस्थित और नियमसे होने लगता है और चमडीके अंदर भरा हुवा पानीभी खींच लिया जाता है। सूजन कम होती है। कामलाके विकारमेंभी सूजन आती है। कामलाका विकार बहुत दिनांतक रहनेसे शरीरपर पांडुरोगके समान परिसाम होकर यह सूजन पैदा होती है। इसमेंभी मंडूरभस्मके साथ पुनर्नवा ( गदहपूरा ), शिलाजीत इत्यादि औषध मिलाकर देना चाहिए।

कामला बहुत दिनतक रहनेसे दूसराभी एक विकार पैदा होता है। शरीरकी चमडी रुक्ष हो जाती है, उसका रंग बदलता है और उसपर छाले पड़ जाते हैं। इसीको 'कुंभ कामला' कहते हैं। इसमेंभी मंडूरभस्मसे कार्य होगा। कुंभकामलाय कृत् ( जिगर के ) विकारोंके बाद भी हो सकती है। विशेषतः यकृत् का मांसार्दुद विकार होनेपर कुंभकामला उत्पन्न हुई हो तो ताप्यादि लोह, ताम्रभस्म, वंगभस्म इत्यादि दबाइयां देनी चाहिए। मंडूरभस्मसे कुछ फायदा नहीं होगा। दूसरी दबाइयोंसेभी यह विकार साध्य होना दुर्घट है।

पांडुरोगके भी लाघरक, आलस, पालिक, कुंभस इत्यादि प्रकार होते हैं। उनमें भी उनके लक्षणोंको देखकर मंडूरभस्म देनी चाहिए।

चमड़ीका रंग हरा या काला या पीला पड़ जाता है। ताकद और काम करनेकी इच्छा विलकुल कम होती है। आँखोंपर नींदसी रहती है। अग्निमांद्य और कै होती है। उसमें बदू, थोड़ासा ज्वर, नामर्दाई, सर्व शरीरमें पीड़ा, जलन, प्यास, मुँहका स्वाद नष्ट होना और चक्र इत्यादि लक्षण जिस विकारमें पाये जाते हैं उसको हली-मक कहते हैं। इसमें भी मंडूरभस्म गुराकारी है।

खियोंको जवानीमें हारिद्रक नामका विकार होता है। इसमें भी मंडूरभस्मसे लाभ होगा। किंतु मानसिक विकारके कारण यह उत्पन्न हुआ हो तो अन्नकभस्म देनी चाहिए। दूसरे कारणोंसे उत्पन्न हो तो मंडूरभस्म और लोहभस्मसे काम होगा।

बच्चोंको जब प्लीहावृद्धि (टिली) और यकृतवृद्धि (जिगर) का विकार होता है तब उन विकारोंके लायक दवाइयां देना जरूर है। फिर भी साथ २ ताकद बढ़ानेके लिए और रक्त बनानेके लिए मंडूरभस्म देना अच्छा है। मंडूरभस्म कुमारी आसवके साथ देनेसे अधिक लाभ होगा।

जीर्णज्वर (पुराना ज्वर) में यकृत प्लीहावृद्धि हो, या यह वृद्धि न होनेपर भी अशक्तता हो तो मंडूरभस्मके सेवनसे वह नष्ट होगी। लघु-मालिनीविसंत और मंडूरभस्म मिश्र करके खिलानेसे अधिक फायदा होगा। फुफ्फुसावरणाके शोथमेंभी (फैफड़ोंके ऊपर एक पड़दा रहता है उसकी सूजनके विकारको Pleurisy कहते हैं) विकार पुराना हो और चमड़ीपर पीलापन हो तो लघुमालिनीविसंत और मंडूरका मिश्रण देनेसे आराम मिलेगा।

बच्चोंके सृद्धस्थि नामके विकारमें भी, प्रवालभस्म, गिलोयका सत्व और मंडूरभस्म मिलाके देनेसे फायदा होता है। विलकुल छोटे दो महिने के बच्चे को भी यह मिश्रण देसकते हैं।

मृद्भक्षणाजन्य पांडु, याने मिट्टी खानेसे जो पांडुरोग उत्पन्न होता है, वह बहुतसे बच्चोंमें और जिनको मिट्टी खानेकी आदत हो ऐसे खियोंमें भी पाया जाता है।<sup>१</sup> इस विकारमें आंतोंके अंदर धीरे धीरे मिट्टी जमा हो जाती है। इसमें मंडूरभस्मसे फायदा होता है किंतु प्रथम एक दस्तावर द्वार्दे देकर वह मिट्टी निकालना जरूरी है और इसके

<sup>१</sup> खियोंको भी मिट्टी खानेकी आदत रहती है। अच्छे खानदानके घरके खियोंको भी यह आदत हमने देखी है।

वाद मंडूरभस्म दे सकते हैं. पित्तप्रधान और कफप्रधान पांडुरोगमे यह अच्छा कार्य करती है.

लड़कियोंको जवानीकी उम्रमे आनेपरभी कभी कभी मासिक स्राव शुरू नहीं होता. वे दुबली पतली रहती हैं. मुँहपर फीकापन और गालोंपर सूजन रहती है. रोज थोड़ा थोड़ा बुखारभी रहता है किंतु पांडुरोग नहीं होता. इन लक्षणोंका कारण कुछ एक विकार है ऐसा नहीं. बचपनसे खानेपीनेकी योग्य व्यवस्था न होनेके कारण या मृद्गस्थिका विकार होनेसे या कभी कभी अतिसार या संग्रहरारीका विकार या यकृत का विकार होनेपर, वे विकार बहुत दिनोंतक रहनेसे या वे अच्छे होनेपरभी, पहलेके माफिक ताकद नहीं आती है. इसका असर बचपनमे जान नहीं पड़ता किंतु जब जवानीमे शरीरके अवयव बढ़नेका वर्णन आता है तब वे बढ़ते नहीं. खूनमे ताकद नहीं रहती है. अंडकोश, इसी उम्रमे अपना कार्य करने लगते हैं. उनकी भी वाद नहीं होती है. स्त्रियोंके स्तनभी उन्नत नहीं होते हैं. मासिक स्राव न होनेका भी यह ही कारण है. मासिक स्राव दूसरे कारणोंसे भी बंद होता है. उनमे मंडूरभस्मसे फायदा नहीं होगा. प्रथम लिखे हुए लक्षण हो तो त्रिफला, धी और शहदके साथ मंडूरभस्म देनी चाहिए.

थंडीताप या विषमज्वर बहुत दिनोंतक रहनेसे पांडुरोग उत्पन्न होता है. उसमे भी मंडूरभस्मसे लाभ होगा.

दूसरा एक जल्द बढ़नेवाला तीव्र पांडुरोग आजकल अधिक नजर आता है. इसमे प्रथम ज्वर आता है और बहुत दिन तक यहही ज्वर कायम रहता है. कै होती है. कभी कभी पतले जुलाव होते हैं. और आदमी दिन २ फीका पड़ जाता है. इसमे मंडूरभस्मसे आराम होगा. इसके साथ २ ज्वरके लिए अमृतारिष्ट, प्रवालभस्म या गिलोयका सत्त्व देना चाहिए.

बार बार खून गिरनेसे जो फीकापन उत्पन्न होता है उसमे सुवर्णामास्थिकभस्म और मंडूरभस्म बहुत लाभ पहुँचाते हैं. यहही बात मासिक स्रावके बावत है. मासिक धर्ममे अधिक खून गिरनेसे या प्रसूतीके समय बहुत खून गिरनेसे पांडुता आती हो तो मंडूरभस्मसे वह जरूर कम होगी. विशेषतः पांडुताके साथ २ हाथपैरोंपर सूजन हो तो अधिक लाभ होगा.

षेटमे किंडे होनेसे जो पांडुरोग उत्पन्न होता है उसमे प्रथम अज्ञवाँइन का अर्क या कपूर या दूसरी कोई कूमिन्न औषधी देकर, वाद त्रिफलाके साथ या अकेली मंडूरभस्म देनी चाहिए.

शरीरमे खूनकी पैदाइश कम होनेके कारण या रक्त परमाणु-  
आँका प्रमाणा कम होनेसे मनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। विचार  
नहीं सूझते। कुछ भी थोड़ीसी वात मनके विरुद्ध हो तो संताप  
आता है। रोगी चिड़चिड़ाता है। आँख और सिरमे भारीपन और नीद  
या तंद्रा भी रहती है। इसमे भी मंडूरभस्मसे उत्तम कार्य होगा।

**मंडूरभस्मके गुणाधर्म—**

**दोष—पित्त (रंजक).**

**दूष्य—रक्त, मांस, मज्जा.**

**स्थान—यकृत, प्लीहा, फैफड़ा, स्वादुपिंड इत्यादि।**

मंडूरभस्मके सेवनसे कभी कभी जी मचलाता है और कै होती  
है। मंडूरभस्मके साथ सुवर्णामाल्किक भस्म देनेसे ये लक्षण कम होते  
हैं। अच्छे मंडूरसे भी ये लक्षण कभी कभी पाये जाते हैं।

## १०. मौक्तिकभस्म ( मोती की भस्म ).

प्रमाणा १ से १ रस्ती।

सुफेद, लघु, स्निग्ध, सूर्यके समान जिसमे चमक है, जिसमे  
मैला न हो, भारी वजनका, और गोल, मोती सबसे बढ़िया है।<sup>१</sup>

**मोतीका शोधनः—**

( १ ) चमेलीके रसमे दोलायन्न रीतीसे पकानेसे मोती शुद्ध  
होता है।<sup>२</sup>

( २ ) अम्लवर्गके द्रव्योंसे या चमेलीके रससे मोती शुद्ध  
होता है।<sup>३</sup>

**मोतीकी भस्म बनानेकी रीत—**

( १ ) बढ़ारफलके रसमे मनसिल, हरताल और गंधक मिलाके  
खरल करके शुद्ध मोतीको पुट देना। ऐसे आठ पुट देनेसे मौक्तिकभस्म  
बन जाती है।<sup>४</sup>

१ ल्हादि श्वेतं लघु स्निग्धं रश्मिवक्षिर्मलं महत्।

ख्यातं तोयप्रभं वृत्तं मौक्तिकं नवधा शुभम् ॥ र. स.

२ स्वेदयेद्वैलिकायन्वे जयन्त्या स्वरसेन च ।

मरिणमुक्ताप्रवालानां यामैकं शोधनं भवेत् ॥ शा. स.

३ शुद्धयत्यस्तेन मारिण्यं जयन्त्या मौक्तिकं तथा ॥ र. र. स.

४. लकुच्चद्रावसंपिटै शिलागन्धकतालकै ।

वज्रं विनाऽन्यरत्नानि त्रियन्तेऽष्टपुटै खलु ॥ र. र. स.

( २ ) धीगुवारके रसमें, चौलाईके रसमें और खीके दूधमें प्रत्येक सात सात बार, गरम किया हुवा मोती बुझानेसे मोतीकी भस्म बन जाती है।<sup>१</sup>

( ३ ) कुल्थांके काढेमें, तिलके तेलमें, छांछमें या गोमूत्रमें खरल करके पुट देनेसे मोतीकी भस्म तैयार होती है।<sup>२</sup>

( ४ ) अस्लवर्गके द्रव्योंसे प्रथम मोती शुद्ध करके उसकी अच्छी तरहसे पीसकर ( या छोटे छोटे टुकड़े बनाकर ) गुलाबपानीमें सात दिन खरल करता चाहिए। इससे ऊफेद मौक्तिकभस्म बन जाती है।<sup>३</sup>

#### ग्रंथोक्त गुराधर्म—

कफपित्तक्षयध्वंसि कासश्वासाश्चिमांद्यनुत् ।

पुष्टिदं वृष्यलायुष्यं दाहज्ञं मौक्तिकं मतम् ॥ र. र. स.

कासं श्वासं वह्नियांदं क्षयं च हन्याद्युष्यं वृहरां पित्तहरि ।

दाहश्लेष्मोन्मादवातादिरोगान् हन्यादेवं सेवितं सर्वकाले ॥

मौक्तिकभस्म अग्निसंस्कारसे बनाना अच्छा नहीं। कई लोग अग्निसंस्कारसे मौक्तिकभस्म बनाते हैं किंतु इसका उपयोग शंखभस्म, कपर्दिकभस्म या शौक्तिकभस्मसे अधिक नहीं होता। अग्निसंस्कारविरहित केवल गुलाबपानीमें मौक्तिकभस्म बनानेकी रीत सबसे अच्छी हैं। इस रीतसे बनाई हुई मौक्तिक भस्ममें ग्रंथोंमें लिखे हुए सब गुराधर्म पाये जाते हैं।

मौक्तिकभस्मके गुराधर्मः—शीतवीर्य, सूत्रल, मूत्रमार्गके और सर्व शरीरके जलनका नाश करनेवाली और पित्तशामक, इसका रंग विलकुल सफेद बगलेके परके माफिक होता है।

बहुत कष्ट उठानेसे, चिंतासे, क्रोधसे, बहुत जागनेसे, मानसिक अम करनेसे या गर्भीकी वजह सिरमें दर्द शुरू होती है या हमेशा परेशानी रहती है। इन कारणोंसे मन इतना चंचल होता है कि कुछमी

१. कुमार्यास्तंडुलीयेन रतन्येन च निषेचयेत् ।

प्रत्येकं सप्तवेलं च तपतपानि छत्सनश ।

मौक्तिकानि प्रवालानि तथा रत्नान्यशेषत ॥

क्षणाद्विविधर्णानि त्रियन्ते नाऽब्र संशय ॥ शा. स.

२. उक्तमाक्षिरवन्मुक्ता प्रवालानिच मारयेत् ॥ शा. सं.

३. दृढ़वैद्याधार—नीमके रसमें थोड़ा पानी डालकर उसकी खटाई कम कर देनी चाहिए। इसमें २४ घंटेतक मोती रखकर, २४ घंटेके बाद स्वच्छ पानीसे धोलेना चाहिए। सूख जानेपर खरलमें रखकर अच्छी तरह पीसना। पीसनेके बाद गुलाबपानीसे सातवार भावना देकर चंद्रप्रकाशमें लुखाना।

बात मनके विरुद्ध हो, रोगी एकदम विगड़ जाता है। विचार करनेकी ताकद नष्ट होती है। शब्द, स्पर्श आदि इंद्रियार्थभी मन सहन नहीं कर सकता। थोड़ीभी आवाज सुननेसे या थोड़ाभी विचार करनेसे सिरमें चक्कर आती है। सारे शरीरमें और सिरमें जलन उत्पन्न होती है। इन्हींके कारण निद्रानाशका उद्भव या दूसरे कारणोंसे उत्पन्न होनेवाला निद्रानाश इत्यादि विकारोंमें मौक्किकभस्मके सेवनसे बहुत लाभ होता है।

कोई आकस्मिक हुर्दृटनासे दिलको धक्का आ जाता है, मगज विगड़ जाता है; शराब, गांजा, धूतूरा इत्यादि तीक्षणार्थीय, ऊषा और विकाशी पदार्थोंके सेवनसे सिर विगड़ जाता है और उन्मादका विकार ( पगलापन ) विशेषतः पित्तजन्य उन्माद-पैदा होता है। इन विकारोंमें मौक्किकभस्मसे बहुत फायदा होता है। मौक्किकभस्म और साक्षिकभस्म या मौक्किकभस्म और प्रवालभस्म भी मिलाके दें सकते हैं। कुब्जडा ( पेडा ) के पाकमें या ब्राह्मीके पाकमें भी मौक्किकभस्म देते हैं।

भूतोन्मादमें रोगी चिरचिराता हो, कुछ हो या झगड़ा करता हो तो उसको मौक्किकभस्मसे आराम मिलेगा।

मौक्किकभस्म अत्यंत शीतवीर्य होनेसे गर्भांके दिनोंमें इससे बहुत लाभ होता है। सर्व शरीरमें जलन, कभी कभी दिनमें बढ़ती हुई गर्भांकी वजह सर्व शरीरके संज्ञावाहिनिओंका क्षोभ होता है, बाहरकी गर्भांकी साथ २ शरीरकी गर्भां भी बढ़ जाना चाहिए यह न होनेसे नसें कमजोर होती हैं और कुछ भी ताप सहन न कर सकती हैं। इस अवस्थामें दूसरी दाहशामक दवाइयोंकी अपेक्षा मौक्किकभस्मके सेवनसे अधिक लाभ होता है। क्योंकि वातवाहिनिओंपर इसका शामक कार्य अधिक नज़र आता है।

गर्भांके दिनोंमें, धूपमें काम करनेसे, चूलेके पास या भट्ठाके पास काम करनेसे, ज्यादा मेहनतका काम करनेसे या जागनेसे, नाक, गूदा, मूत्रमार्ग या दूसरे मार्गोंसे खून गिरने लगता है। साथ साथ हाथ-पैरोंमें जलन, या सर्व शरीरमें जलन और गभराट रहती है। इसमें भी मौक्किकभस्मसे फायदा होता है।

उपर्दश ( आतशक ) या सुजाखके विकारसे ( वह विकार हट जाने पर ), मूत्रमार्गका दाह होता है। कभी कभी दूसरे कारणोंसे भी पित्तका प्रकोप होता है और पेशावके बहुत जलन होता है, कभी कभी पेशावमें तीव्र रसायन पदार्थ होनेसे भी जलन होता है। इसमें भी मौक्किकभस्म लाभदायक है।

बहुत खून गिरनेसे या दूसरे कारणोंसे, शरीरके अंदर जलन हो ( अंतर्दाह ), तो मौक्किकभस्मसे वह कम होगी. स्थिरोंको योनि-मार्गसे स्रावका निकल आना और उस स्रावके बाद जलन उत्पन्न होना, इन लक्षणोंके लिए मौक्किकभस्मसे इतना फायदा नहीं होगा जितना वंगभस्मसे. श्वासके विकारमें भी अंदर जलन हो तो मौक्किकभस्म देनी चाहिए.

आँखेके विकारोंमें, बार बार आँखों का आना, उनमें सुखी अधिक हो, आँखोंमें जलन और जैसा गरम गरम पानी और भाप निकलती हो ऐसे लक्षण हो तो मौक्किकभस्मके सेवनसे वे जलद कम हो जाएंगे.

कास ( खांसी ) के विकारसे, पित्त या कफपित्तकी वृद्धि हो और साथ २ जलन हो तो मौक्किकभस्म लाभदायक है.

राजयक्षमा ( तपेदिक ) के विकारमें भी जलन, बेचैनी, थोड़ासा बुखार, प्यास इत्यादि लक्षण हो तो मौक्किकभस्म देनी चाहिए. राज-यक्षमाकी प्रथम अवस्थामें ( शुरुसे ) जैसा प्रवालभस्मसे फायदा होता है वैसाही मौक्किकभस्मसे होता है.

श्वास ( दमा ) के कई रोगियोंको मौक्किकभस्मसे आराम मिलता है. विशेषतः श्वासके साथ २ हाथपैरोंमें, पेटसे या सर्वे शरीरमें जलन हो, मुँह सूख गया हो, प्यास और कै इत्यादि लक्षण हो, पंखेसे पवन चलानेसे कुछ आराम लगता हो तो दूसरी दवाइयोंकी अपेक्षा मौक्किक-भस्म देनेसे बहुत फायदा होगा, और श्वास कम होगा.

अम्लपित्तके विकारसे पित्त बढ़नेसे गलेमें जलन होती है. वह जलन इतनी होती है कि मानो वहां लाल मिर्च लगाई गई हो. जब कै होती है तब भी मुँहसे और गलेमें खटाई और तीव्र जलन होती है. इतनी कि रोगीको कै करने की डर रहती है. इस विकार में मौक्किक भस्म शीघ्र लाभ पहुँचाती है.

अम्लपित्तके विकारमें कभी कभी अन्तिमांघ ( वदहजमी ) होता है. इसमें भी जलन आदि लक्षण हो तो मौक्किकभस्म जल्द देनी चाहिए.

अतिसार ( दस्त ) के विकारमें, टड्डीके बख्त जलन, पीले रंगके पानीके माफिक पतले गरम २ दस्त आते हो; साथ २ पेटमें, आंतोमें, ग्रहणीमें और गुदामेभी जलन होती है. वे सब लक्षण पित्तके विकृतीके कारण हो जाते हैं. इनमें मौक्किकभस्मका सेवन करें तो पित्तकी विषमता कम होगी और साम्य प्रस्थापित होनेसे दस्तभी अपनेआप कम होगे.

खूनी व्यासीरके विकारमेंभी जलन पीड़ा, सूजन और खून का गिरना इत्यादि लक्षण हो, खून गिरनेके समय गरम गरम खून निकलता है पेसा ख्याल हो और खून के बाद अत्यंत पीड़ा और जलन हो, इस पीड़ाके मारे कभी कभी इतनी तकलीफ होती है कि वह सहन न होनेपर रोगी बेहोश हो जाता है, होशमें आनेपरसी पीड़ाके कारण फिर बेहोशी आ जाती है. इस प्रकारके लक्षणोंमें मौक्किकभस्मसे बहुत फायदा होगा.

पेशावरमें खूनका निकलना, मूत्राधात या सूत्रकृच्छ्रके विकारमें खूनी पेशावरका आना, इसके साथ २ मूत्रमार्गका जलन हो तो मौक्किकभस्मका सेवन करनेसे जलन कम होगी. मौक्किकभस्मके साथ गंगावर्तीके यत्तोंका रस देनेसे जलद कार्य होगा.

मासिक स्नाव अधिक होनेसे ( अत्यार्तव ) या योनिमार्गमें रक्तपित्तकी विकृति होनेसे खुजली, जलन और खाचकी बहुत तकलीफ होती है. इससे कभी कभी रोगी इतना हैरान होता है कि पीड़ाके मारे वह बिछौनेसे ऊठ नहीं सकता. इस विकारमें दूध और गुलकंदके साथ मौक्किकभस्म देनी चाहिए. साथ साथ शतदौत घृतमें रुई भिजाकर वह योनिमार्गमें रखना चाहिए.

योनिमार्गका दाह, वह इतना कष्टप्रद होता है कि मैथुनके समय वह असह्य हो जाता है और कभी कभी मैथुन करनाभी मुश्किल हो जाता है. इस विकारमें मौक्किकभस्मसे लाभ हुवा देखनेमें आया है. यह परीक्षित है.

अनुलोमश्य-याने रसश्य-के विकारमें, रसधातुसे लेकर आगेके धातु क्षीरा होते जाते हैं, और इसी वजह शरीर कमताकद और दुबलापतला बन जाता है. साथ साथ अतिसार ( दस्त ) भी रहता है. दस्त पानीके माफिक गरम गरम और बार बार आते हैं. भुँहमें छाले पड़ जाते हैं; या अंदरकी चमड़ी विलकुल निकल आती है. सर्व शरीरमें जलन, दृट्टिमें जलन, सुँहमें जलन, पेटमें जलन, इत्यादि लक्षणोंमें मौक्किकभस्मसे बहुत फायदा होता है.

मौक्किकभस्मके सेवनसे दाह तो कम होताही है किंतु साथ २ रसधातुसे लेकर सर्व धातु पुष्ट हो जाते हैं. और धातुओंके पोषणसे सर्व शरीर पुष्ट होता है. इस प्रकारसे मौक्किकभस्म शक्तिदायक है और शरीरका वर्णभी सुधर जाता है.

स्थूल रसायनकी दृष्टिसे देखें तो मौक्किकभस्म यहभी एक चूनेका कल्प है. किंतु जीवन रसायनकी दृष्टिसे चूना, मोती, सुंगा, शंख और कौड़ी ये सब भिज्ञ भिज्ञ हैं और उनका कार्यभी भिज्ञ होता है.

**मौक्तिकभस्मके गुराधर्मः—**

**दोष—पित्त, विशेषतः पित्तके तीक्ष्णा, उष्णा और अम्ल गुरांकी शुद्धि.**

**दूष्य—रस, रक्त, मांस और अस्थि.**

**स्थान—चमड़ी, हृदय, क्षोम, यकृत् छीहा, अंतःस्नावक और दूसरे ग्रन्थी.**

### ११ रौप्यभस्म.

( प्रमाणा १ से १ रक्ती )

चांदी, सहज, कुत्रिम और खनिज ऐसे तीन प्रकारकी होती हैं। अग्नीमे तपानेसे जिससा रंग कुंदके फूलके समान सुफेद होता है, और जो भारी, स्निग्ध और मुलायम रहती है वह चांदी भस्मके लिए अच्छी है।<sup>१</sup>

**चांदीका शोधनः—**

( १ ) तेल, छांछ, गौका मूत्र, आरनाल ( सचूकी कांजी ) और कुलथीका काढा इनमे चांदीका रस ( तपानेसे पतली हुई चांदी ) हर एकमे सात २ बार बुझानेसे चांदी शुद्ध होती है।<sup>२</sup>

( २ ) चांदीके पतले २ दुकडे बनाकर, अग्नीमे रखकर, जब विलकुल लाल हो जाय तब हथियाके पत्तोंके रसमे तीन बार बुझानेसे वे शुद्ध हो जाते हैं।<sup>३</sup>

( ३ ) सीसा और जवाखार चांदीमे डालकर, अग्नीमे रखनेसे जब वह पिघल जाय तब चांदी शुद्ध होती है।<sup>४</sup>

( ४ ) सोहागा या जवाखार और नीमूका रस या इमलीका रस इनमे चांदीके पत्ते चार प्रहरतक पकानेसे चांदीके दोष नष्ट होते हैं।<sup>५</sup>

१ रौप्यं त्रिधा स्यात्सहजं कुत्रिमं खनिसंभवम् ।

दृग्धोत्तीर्णं लुकीतं यन्निर्मलं कुंदसन्निभम् ।

गुरु स्निग्धं कुमारं च तारसुत्तममिष्यते ॥ र. चं.

२ तैले तक्रे गवां मूत्रे हारनाले कुलित्थके ।

ऋमान्त्रिसेचयेत्तसं द्रावे द्रावे तु सप्तधा ।

स्वर्णादि लोहपत्राणां शुद्धिरेपा प्रशस्यते ॥ र. र. स.

३ पत्रीकृतं तु रजतं संतप्तं जातवेदसि ।

निर्वापितमगस्त्यस्य रसैर्वारित्रयं श्वाचि ॥ र. च.

४ नागेन क्षारराजेन द्रावितं शुद्धिसृच्छति । र. च.

५ रजतं दोषनिरुक्तं किंवा क्षाराम्लपाचितम् । र. च.

• ( ५ ) सीसा और सोहागा मिलाकर उनके साथ चांदीका रस बनाया जाय तो चांदी शुद्ध हो जाती है।<sup>१</sup>

( ६ ) चांदी तपवाकर उसका रस मालकांगनीके तेलमें तीन बार डाल दो, फिर खापरियाका भस्म और चूर्ण लेकर उसकी एक कटोरी बनावो, उस कटोरीमें चांदी और चांदीके समप्रमाणामें सीसा डाल दो, फिर अग्नीमें धरके इतनी देर तक रखें कि सब सीसा भाप बनके निकल जाय, केवल चांदी रह जायेगी और शुद्ध होगी।<sup>२</sup>

( ७ ) चमेलीके पत्तोंके रसमें चांदीका रस डाल दो, ठंडा होनेपर फिर तपाकर रस बनाके फिर डाल दो, इस तरह सात बार करनेसे चांदी शुद्ध हो जायेगी।<sup>३</sup>

( ८ ) गंधकाम्ल ( सल्फ्यूरिक ऑसिड ) में डालनेसे चांदी शुद्ध हो जाती है, इसमें चांदीका सुफेद चूर्ण बन जाता है, उसे पानीसे धोतर लेना चाहिए, यह रीत सीधी सुथरी और अच्छी है, किंतु जीवनरसायनशास्त्रकी व्यष्टिसे वह कम अस्तित्वामें है, बनस्पतिओंकी मददसे धातुओंका शोधन मारणा सबसे श्रेष्ठ है।<sup>४</sup>

चांदीकी भस्म बनानेकी रीतः—

( १ ) विजौराके रसमें सोनामांखीका चूर्ण मिलाके खरल करना, और उससे चांदीके पत्तोंको लेप देना, और अग्नीमें पुट देना, इस तरह तीस पुट देनेके बाद चांदीकी भस्म हो जाती है।<sup>५</sup>

( २ ) धूहरके रस ( दूध ) में सोनामांखीका चूर्ण मिलाके खरल करना और इससे चांदीके पत्तोंको लेप करना, फिर अग्नीमें पुट देना, इस तरह जहाँतक निरुत्थ हो जाय तहाँतक पुट देनेसे चांदीकी भस्म बन जाती है।<sup>६</sup>

१ नागेन टकरेनैव वापितं शुद्धिसृच्छति ॥ र. र. स

२ तारं विवारं निक्षिप्तं तैले ज्योतिष्मतीभवे ।

खर्पराद्भस्मचूर्णाभ्यां परित पालिकां चरेत् ।

तत्र रूप्यं विनिक्षिप्य समसीससमन्वितम् ।

जातसीसक्षयं यावद्भेत्तावत्पुन पुन ।

इत्थं संज्ञोधितं रूप्यं योजनीयं रसादिषु ॥ र. र. स

३ और ४ वद्धवैद्याधार

५ मालिकं भातुलुंगाम्लमर्दितं पुटितं शनै ।

विशद्वरेण तत्तारं भस्मसाज्जायतेतराम् ॥ र. र. स

६ भाव्यं ताप्यं स्तुहीक्षीरैस्तारपत्राणि लेपयेत् ।

मारयेत्पुटयोगेन निरुत्थं जायते ध्रुवम् ॥ र. र. स.

(३) जंभीरीके रसमें एक भाग हरताल मिलाके खरल करो। फिर हरतालके बजनसे चौंगुरा चांदीके पत्ते लेकर उनको उस हरतालसे लेप करो। सूख जानेपर मूसेमें रखकर तीन गोवरकी आग में रख दो। इस तरह चौंदा पुट देनेसे चांदीकी भस्म बन जाएगी।<sup>१</sup>

(४) सोनामांखी और शुद्ध गंधक आकके रस (दूध) में खरल करके इनसे चांदीके पत्तोंको लेप करो। फिर कटोरेमें रखकर कपड़ा-मिट्टीसे लपेटकर गजपुट देनेसे चांदीकी भस्म तैयार होगी।<sup>२</sup>

(५) शुद्ध चांदीके पतले पतले और छोटे पत्ते बनाओ। उनको दोनों तरफ कबूतरकी विष्टासे लेप करो। लेप सूख जानेपर एक मिट्टीका कटोरा लेकर उसमें प्रथम थोड़ासा गंधक डाल दो। गंधकके ऊपर वे पत्ते रखकर फिर गंधक और फिर पत्ते इस तरहसे सब पत्ते रख दो। फिर गंधक डालके ऊपरसे दूसरे कटोरेसे ढक दो। और कपड़ामिट्टी लपेटकर गोवरसे एक गजपुट दो। गजपुटके बाद धीगुवारके रसमें खरल कर फिर पहलेके माफिक कबूतरकी विष्टासे लेप और गजपुट दो। इस तरह सात बार करनेसे स्वाही रंगकी रौप्यभस्म बन जाएगी।<sup>३</sup>

### रौप्यभस्मके ग्रन्थोक्त गुणाधर्म—

शुद्धं भस्मीकृतं रूप्यसारमाज्यसमन्वितम् ।  
नेत्रोगानपि सदा क्षयजान् गुदजानपि ।  
पित्तजाम्काससंभूतान् पाण्डुजाङ्गुदरागी च ।  
दोषजानपि सर्वांश्च नाशयेद्दूर्चिं सदा ॥ र. प्र. सु.  
रूप्यं विपाकमधुरं तु वराम्लसारं ।  
शीतं सरं परमलेखनकं च रूप्यम् ।  
स्तिं च वातकफजिजठराभिदीप्तिं ।  
वल्यं सरं स्थिरवयस्करणां च मेध्यम् ॥ र. र. स.  
रौप्यं शीतं कषायाम्लं स्तिं वातहरं गुरु ।  
रसायनविधानेन सर्वरोगापहारकम् ॥ र. र. स.

रौप्यभस्मका विपाक मधुर, कषाय और अम्ल रसात्मक होता है। रौप्यभस्म ठंडी, सारक, लेखन, स्वाद बढ़ानेवाली और स्तिं वातहर होती है।

- १ तारपत्रं चतुर्भागं भागैकं शुद्धतालकम् ।  
मर्द्य जम्बीरजद्रावैस्तारपत्राणि लेपयेत् ।  
शोपयेदन्धयत्रे च विशद्वप्तलकै पचेत् ।  
चतुर्दशपुटैव निरुत्थं जायते धुवम् ॥ र. र. स.
- २ माक्षिकं गंधकं चैवमर्कक्षरिणा मर्दयेत् ।  
तेन लिप्तं रूप्यपत्रं पुटेन म्रियते धुवम् ॥ र. र.  
३ शुद्धवैद्याधार।

रौप्यभस्मके सेवनसे स्नायु और नसोंकी ताकद बढ़ जाती है। उनका बृंहणा होता है और इसी बजह वातके विकारोंका भी शमन होता है। (बृंहणां शमनं त्वेव वायोः पित्तानिलस्य च ।)। इस शमन कार्यका प्रभाव कलायखंज, पक्षाधात इत्यादि पुरने वातविकारोंमें भी अच्छी तरह नजर आता है। नसोंमें जब वातका प्रकोप हो जाता है तब, शूल, नसोंका आकुंचन या संकोच, नसोंकी सूजन, अंतरायाम, वहिरायाम, खली, कौब्ज इत्यादि लक्षण पाये जाते हैं। इस प्रकारके प्रकोपका शमन रौप्यभस्मसे अच्छी तरह होता है। केवल वातप्रकोप हो तो वह रौप्यभस्मसे कम हो जाएगा किंतु इसके साथ साथ आमके लक्षण, अमानुवंध हो तो रौप्यभस्मकी जगह योगराजगुणुल देनेसे अधिक लाभ होगा। इस तरहके फर्क आयुर्वेदमें बहुत महत्वके लम्फे जाते हैं।

जैसा ताम्रभस्मका प्रभाव ( विशेष कार्य ) यकृत, धूःहा इत्यादि इंद्रियोंपर और उनके दोष और धातुओंपर होता है, इसी तरह रौप्य-भस्मका कार्य सूत्रपिंड, भगज ( भस्तिष्क ) और वातवाहिनिओंपर, और सामान्यतः वातदोषपर शामक होता है।

अति भेनतसे, अति वाचनसे, अति जागनेसे, चिंतनसे, शोकसे, और अति भीतिसे वातकी वृद्धि होती है। भगजकी ताकदभी, वात-वृद्धीके कारण, कम होती है। इसलिए रोगीको थकावट, चक्रर मिर्गी और कभी कभी वेहोशीकाभी अंदेशा रहता है। इन लक्षणोंमें रौप्य-भस्मसे बहुत फायदा होता है। ऊपर लिखे हुए कारणोंसे सिरमे दर्द हो या तीव्र शूल हो तोभी रौप्यभस्म देनी चाहिए। जब शूल इस प्रकारका होता है कि एकदार तीव्र शूल और दूसरे बहुत मामूली दर्द हो, तब रौप्यभस्मसे फायदा होगा। नहीं तो पित्तदोषकी वृद्धि या पित्त-प्रकोपके लक्षण हो तो उसी शूलके लिए मौक्किकभस्म अधिक उपकारक होगी। मौक्किकभस्म और रौप्यभस्म इनमें यह एक महत्वका फर्क है। वाताधिक्य या वातप्रकोप हो तो रौप्यभस्म और पित्ताधिक्य या पित्तका प्रकोप हो तो मौक्किकभस्म देनी चाहिए। ऊपर लिखे हुए लक्षण असामिनोदनवृद्धि ( हाय ब्लड प्रेशर ) के विकारमेंभी पाये जाते हैं। इसमें रौप्यभस्मकी अपेक्षा शिलाजीतसे अधिक कार्य होगा। शिलाजीतके साथ आरज्वध ( असलताश ) के समान कुछ भृंडु विरेचन देना चाहिए।

रौप्यभस्मके सेवनसे वातवाहिनिओंका क्षोभ कम होता है। उनपर उसका शामक कार्य होता है। इसलिए अपस्मार, उन्माद और आक्षे-

पक इन रोगोंकी तीव्र अवस्थामे उससे फायदा होता है। खियोंमें भूतोन्मादके विकारमेंभी कभी कभी वातलक्षण अधिक होते हैं। इस अवस्थामेंभी रौप्यभस्मका उपयोग होता है।

आँखोंके विकारमेंभी वातप्रधान या वातपित्तप्रधान लक्षण होतो रौप्यभस्म लाभदायक होगी। शोक, क्रोध, श्रम या सूरजका ताप अधिक होनेसे दृष्टि विगड़ जाती है। इस विकारमेंभी रौप्यभस्म यह, एक परीक्षित इलाज है।

क्षय—विशेषतः शुक्रक्षय—से जो विकार उत्पन्न होते हैं उनमें वंगभस्म और रौप्यभस्म ये दोनों अच्छे इलाज हैं। शुक्रक्षयके बाद वातप्रकोप होनेसे कमरमे दर्द, पैरोंमें ऐंटन, शूल, पेशावकी जलन, शुक्रमार्गकी जलन और शूल इत्यादि लक्षणोंमें रौप्यभस्मका उपयोग करना चाहिए। शैथिल्य और कमजोरीमें वंगभस्मसे अधिक कार्य होगा।

जंतुज क्षयविकारमें सुवर्णाभस्म या दूसरे सुवर्णाकल्प देना योग्य है। किंतु इस विकारमें सर्व शरीरमें जलन, पेशावमें जलन, आँखोंमें जलन इत्यादि लक्षण होतो तो रौप्यभस्म देनी चाहिए। जलन कम होनेके बाद फिर सुवर्णाभस्म दे सकते हैं। कभी कभी रौप्यभस्म और सुवर्णाभस्मका मिश्रणभी देते हैं।

पित्तज, वातज या वातपित्तज अर्शरोग ( बवासीर ) मे भी रौप्यभस्म उपकारक है। खूनी बवासीरमेंभी इससे फायदा होता है। बवासीरके मस्से बहुत बड़े होतो उन्हे प्रथम शख्ससे निकालकर रौप्यभस्म देनेसे जरूर फायदा होगा। खूनी बवासीर या दूसरी बवासीरसे कांटा चुभने जैसी वेदना, प्रदाह अधिक हो और साथ साथ चमडीभी विगड़ गयी होतो गंधकरसायन देनेसे फायदा होगा।

पित्तजन्य उदरके विकारमें, ज्वर, वेहोशी, सर्व शरीरका प्रदाह मुँहमें जलन, चक्कर आना, दस्त आना, चमडीका, पेटका रंग हरा या पीला पड़ना, पेटके ऊपर बढ़ी हुई सिराओंका जाल नजर आना, पसीना और पसीनेके साथ चमडी मे जलन, गलेमें इतनी जलन कि जैसा धूंधा निकलता हो, पेट बिलकुल मुलायम, पेटमें पानी जल्द जम जाना ( जलोदर होना ) इत्यादि लक्षणोंके साथ सर्व शरीरमें पीड़ा, विशेषतः नसोंमें और सिराओंमें पीड़ा, स्पर्श करनेसे भी पीड़ा होतो रौप्यभस्म देनी चाहिए।

अम्लपित्तके विकारमें भी रौप्यभस्म एक अच्छा इलाज है। वातज अम्लपित्तमें विशेषतः कोष्ठमें या आमाशयमें नसोंका क्षोभ ( उपताप ) हुवा होतो रौप्यभस्म देना योग्य है। इस प्रकारके अम्ल-

‘एक विशेष लक्षण ऐसा होता है, कि कुछ दिनों तक यह विकार बिलकुल कम होता है, वह कायम नष्ट हुआ सा जान पड़ता है, किंतु कुछ दिनों के बाद फिर जोर से शुरू होता है। इस प्रकार मेरे रौप्यभस्म से बहुत फायदा होता है। इसी तरह जिस अम्लपित्तमे कोष्ठ (आमाशय) का आकार बढ़ गया हो और पेटशूल का लक्षण जादा हो वह रौप्यभस्म से हट जायेगा। शौथिल्य और नाताकती (जहां जहां विकार हो वहांके इंद्रियोंकी) ये लक्षण हो तो वंगभस्म देनी चाहिए।

सूखी खांसी-वातप्रधान कास-के विकारमें भी रौप्यभस्म देते हैं। सूखी खांसीमें, गला सूख जानेसे, प्यास जादा लगती है। गलेके पिछले भाग की चमड़ी सूख जानेसे खांसते समय बड़ी तकलीफ होती है और बलाम नहीं निकलता। मुँह के अंदर देखें तो गलेमें, तालुग्रन्थि और उसके आसपास, और सतपथ (फँस्टिक्स) से अंदरकी चमड़ी सूखी, लाल और उसके ऊपर फुँसिया नज़र आती हैं। इस अवस्थामें भी रौप्यभस्म से आराम मिलेगा।

पांडुरोगमे चमड़ीको जो फीकापन या पीलापन आ जाता है उसका कारण खूनमेंसे रक्त परमाणु कम होना यह ही है। किंतु रक्त परमाणु कम होनेके लिए कई लूल कारण होते हैं। इनमेंसे मानसिक चिंता, शोक या चिन्तकी कुछ भी तकलीफ या परेशानी का कारण हो तो इस प्रकारके पांडुरोगमे रौप्यभस्म से फायदा होगा। इस प्रकारमे विशेषतः वातप्रधान या वातपित्तप्रधान लक्षण होते हैं। इन लक्षणोंके लिए रौप्यभस्म यह ही एक परीक्षित इताज है।

चिंत का रोग, मानसिक चिंता, शोक इत्यादि वातप्रकोपी कारणोंसे अरुचि (जीभका स्वाद नष्ट होना) उत्पन्न होती है। इसमे भी रौप्यभस्म से फायदा होगा।

जाठराश्चि, याने पाचकपित्त का कार्य अच्छी तरह होनेके लिए वायुकी जखरत रहती है। वह वायु हुए होनेपर अग्नि का कार्य अच्छी तरह नहीं हो सकता। प्रथम वातप्रकोप होता है और इसके बाद अग्निमांद्य होता है। इस प्रकारके अग्निमांद्यमे रौप्यभस्म देनेसे प्रथम वात का प्रकोप कम होता है और अपने आप अग्निमांद्य भी चला जाता है।

कोथ का विकार (जिसको अंग्रेजीमें गँग्रीन कहते हैं) बहुत कष्ट-कारक विकार है। इस विकारमे शरीरके विभाग और उनके परमाणु धीरे धीरे मरने लगते हैं। उस विभाग मे अत्यंत पीड़ा होती है, जलन होता है और चमड़ी काली हो जाती है। कभी कभी ज्वर भी आता है।

कोथ (कुथ—सडला) का विकार कभी कभी मेह के रोग में उत्पन्न होता है। इस में रौप्यभस्म से बहुत फायदा होता है, क्यों कि इस विकारमें पित्त या वातपित्त का प्रकोप होता है।

आतशक या सुजाख की वीभारीके वाद अण्डकोश और उसके नजदीक के विभागोंमें नसों का और दूसरे नाडिओंका संकोच होता है और पौरुष लए होता है। नपुंसकत्व उत्पन्न होता है। इस प्रकारके नपुंसकत्व में, रौप्यभस्मसे लाभ हुआ हमने देखा है। रौप्यभस्म से नाडिओंका संकोच कम होता है और अण्डकोशके तरफ फिर खून अच्छी तरह फैलाने लगता है।

रौप्यभस्म के इसी गुरुके कारण इसको 'बल्य' कह सकते हैं। और इस तरह उसका उपयोग भी होता है। नाडिओंके संकोच से रक्त आदि धातुओंका फैलाव शरीरमें अच्छी तरह नहीं हो सकता। इंद्रियोंको और वाहा विभागोंको पोषण नहीं मिलता और वे थक जाते हैं, कमताकद हो जाते हैं। इस नाताकतीमें और थकापट में रौप्यभस्म देनेसे इंद्रियोंका पोषण अच्छी तरह होने लगता है और इंद्रियोंको ताकद मिलती है।

रौप्यभस्मका और एक गुरा है। वह 'मेघ्य' याने बुद्धिको तेज बनानेवाला है। बुद्धीका कार्य 'साधक' पित्तकी मददसे चालू रहता है। इस पित्तकी विकृति होनेसे बुद्धीका कार्य भी विकृत होता है। रौप्यभस्मके सेवनसे प्रथम साधक पित्त सुधर जाता है और वादमें बुद्धीका कार्य भी सुधरता है। इस तरह रौप्यभस्म 'मेघ्य' है।

सूतिका ज्वरमें भी रौप्यभस्म देते हैं। ज्वर अधिक न हो, और शूल, सर्वांगमें पीड़ा, अम, प्रलाप इत्यादि लक्षण अधिक हो तो रौप्यभस्मसे फायदा होगा।

**रौप्यभस्म के गुराधर्म—**

**दोष—वात और वातपित्त**

**दूष्य—रक्त, मांस, अस्थि।**

**स्थान—मूत्रपिंड (वृक्क), सहस्रार, वातवाहिनी, नेत्र, स्तायु, उरस्, पचनेंद्रिय, जननेंद्रिय, सनोदेश और बुद्धि।**

## १२ लोहभस्म

प्रमाणा १ से २ रक्ती

मुँडलोह, तीक्ष्णलोह (तिलु) और कान्तलोह, इन तीन प्रकारका लोह पाया जाता है। मुँडलोहकी अपेक्षा तीक्ष्णलोह शतगुण अच्छा

है और कान्तलोह तीक्षणालोहसे शतगुणा अच्छा है।<sup>१</sup> ( इसलिए भस्म बनाने के लिए कान्तलोह लेना चाहिए। )

अशुद्ध और जिसका मारणा नहीं<sup>२</sup> किया है ऐसे लोहके सेवनसे जीवित्वकी हानि होती है और रोग पैदा होते हैं। हृदयमें पीड़ा, प्यास और जड़त्व ये विकार होते हैं। इसलिए लोहका शोधन और मारणा करना जरूरी है।<sup>३</sup>

### लोहका शोधनः—

( १ ) केलाके खम्बेका रस निकालके उसमें, अग्नीमें तपा हुवा लोहा, सात बार डुबानेसे लोहा शुद्ध होता है।<sup>४</sup>

( २ ) खरगोशके खूनसे लोहेके पत्तेको लेप करके अग्नीमें खूब तपाना। इस प्रकार तीन बार करनेसे मुंड आदि सर्व जातका लोह शुद्ध हो जाता है।<sup>५</sup>

( ३ ) त्रिफला ६४ तोला लेकर उसमें आठगुणा पानी डाल दो। उबलाकर घौथा हिस्सा वाकी रहनेके बाद, २० तोला लोहेके पत्ते लेकर गर्म करो। गर्म पत्तोंपर ऊपर लिखा हुवा त्रिफलाका काढा डाल दो। इस तरह सात बार करनेसे लोहमेंसे खानके दोष नष्ट हो जाते हैं। लोह शुद्ध होता है।<sup>६</sup>

( ४ ) तीनो प्रकारका लोह अलग अलग लेकर उसका चूर्ण छ-गुणा गोमूत्रमें पकानेसे और कांजीसे धौनेसे शुद्ध हो जाता है।<sup>७</sup>

( ५ ) लोहेके पत्तेको नमक का लेप करके उनको अग्नीमें तपाकर त्रिफलाके काढ़ेमें डुबानेसे, उनमें मिले हुवे खान के दोष नष्ट हो जाएंगे।<sup>८</sup>

१ सुंडं तीक्ष्ण तथा कान्तमिति लोहं विधा स्मृतम् ।

मुण्डाच्छताधिकं तीक्षणं तीक्षणात्कान्तं शताधिकम् ॥ यो र

२ अशुद्धमसृतं लोहमायुर्हनिरुजाकरम् ।

हृत्यैडां च तृष्णां जाड्य तस्माच्छुद्धं च मारयेत् ॥ र र

३ तप्तानि सर्वलोहानि कदलीमूलवारिणा ।

सप्तधा त्वभिप्तिकानि शुद्धिमायान्त्यनुत्तमाम् ॥ र सा स.

४ शशक्षतजसांलिप्तं त्रिवारं परितापितम् ।

मुण्डादि सकलं लोहं सर्वदोषान्विष्टुञ्चति ॥ र र

५ त्रिफलाष्टगुणे तोये त्रिफला षोडश पलं ।

तत्काथे पादशेषे तु लोहस्य पलपञ्चकम् ।

छत्वा पत्राणि तप्तानि सप्तवाराणि सेचयेत् ।

एवं ग्रलीयते धातुर्गिरिजो लोहसभव ॥ र र.

६. त्रिविधं लोहचूर्णं वा गोमूत्रै षड्गुणै पचेत् ।

प्रक्षालेयदारनालै शोध्यं शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ र र.

७. समुद्रलवणोपतं तप्तं निर्वापितं स्तुतु ।

त्रिफलाक्षविते नूनं गिरिदोषमयस्त्यजेत् ॥ र. र स.

(६) इमलीके काढ़ेमे लोहेके पत्ते एक प्रहर तक पकानेसे शुद्ध होते हैं, अथवा गोमूत्र और त्रिफलामे थोड़ी देर तक पकानेसे शुद्ध होते हैं।'

✓ लोहेकी भस्म बनानेकी रीतः—

(१) तीक्षणा लोह का चूर्ण लेकर उसमे उसके वजनसे बारहवा हिस्सा (इह) शुद्ध हिंगूल (सिंगरफ) मिलाकर धीगुवारके रसमे दो प्रहर तक धोटना, फिर कटोरेमे रखके कपड़ामिट्टीसे लपेटकर गजपुट देना, इस तरह सात पुट देनेके बाद लोहकी भस्म बन जाती है।<sup>१</sup>

(२) तेंदूके (या नीमूके) फलमेसे गूदा लेकर उससे लोहेके पत्तेको लेप करो, फिर कांसेके बरतनमे रखकर धूपमे रक्खो, इसे तरह एक दिनभर अच्छी तरह धूप देना, बार बार उन पत्तेको तेंदूके फलके या नीमूके फलके गूदेसे लेप करना, और शामको उन पत्तेको निकाल कर त्रिफलाके काढ़ेमे धोटना, इस तरह लोहभस्म तैयार हो जाती है।<sup>२</sup>

(३) शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गंधक २ भाग लेकर उनकी कज्जली बनाओ, कज्जलीके वजनके समान लोहचूर्ण उसमे मिलाकर धीगुवारके रसमे दो प्रहर खरल करो, फिर उसका एक गोला बनाके तांबेके बरतनमे रखकर ऊपर अंडीके पत्तोंसे ढाक दो, एक घंटेमे वह अपनेआप गरम हो जाता है, फिर वह बरतन धात्यके अंदर रख देना, और तीन दिनके बाद निकालकर लोहचूर्ण धोटना और कपड़ेसे छान लेना, यह भस्म बारितर होती है, (पानीके ऊपर तैरती है,)<sup>३</sup>

१. चिंचाफलदलकाथादयो दोषमुदस्यति ।

यद्वा फलत्रयोपेतं गोमूत्रे कथितं क्षणम् ॥ र. र. स.

२. द्वादशांशेन दरवं तीक्षणं चूर्णेन मेलयेत् ।

कन्यानीरेणा संमर्द्य यामयुग्मं तु तत्पुटेत् ॥

पुटेदेवं लोहचूर्णं सप्तधा मरणं ब्रजेत् ॥ र. म.

३. तिंदू (निंदू) फलस्य मज्जायां लोहं क्षिप्त्वातपे स्वरे ।

धारयेत्कांस्यपात्रेणा दिनैकेन स्फुटत्यलम्है ।

तेपं पुनः पुन रुपाद्विनान्ते तत्प्रपेषयेत् ।

त्रिफलाकाथसंयुक्तं दिनैकेन सृतं भवेत् ॥ र. म.

४. शुद्धं सृतं द्विधा गंधं कला सल्ले तु कज्जलीम् ।

द्वयोः समं लोहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्वै ।

यामदूयातसमुद्धृत्य तद्गोल ताम्रपात्रके ।

आच्छायैरंडपत्रैश्च यामार्धेनोण्णतां ब्रजेत् ।

धान्यराशौ न्यसेत्पश्वाद् त्रिदिनान्ते समुद्धरेत् ।

संपिण्ड गालयेद्वये सद्यो वारितरं भवेत् ।

कांतं तीक्षणं तथा छुण्डं निरस्त्वं जायते सृतम् ॥ र. र.

( ४ ) तीनो प्रकारके लोहेके, इमलीके पत्तेके माफिक छोटे और पतले, पत्ते बनावो. मिट्टीके कटोरेमे रखकर उनके उपर दंतीके पत्तोंका रस डाल दो. और एक प्रहर तक धूपमे रखो. सूख जानेपर फिर दंतीके पत्तोंका रस डाल दो. इस तरह भस्म बन जाने तक बार बार करना चाहिए।'

( ५ ) शुद्ध सोनामांखी, शुद्ध मनसिल, हल्दी और पीसी हुई काली मिर्च इनका खट्टे नीमूके रसमे खरल करके उससे लोहेके पत्ते को लेप करना. फिर उनको अग्नीमे तपाकर त्रिफलाके काढ़ेमे सात बार बुझाना, फिर पानीसे अच्छी तरह धोकर उनका चूर्ण करना, फिर वह चूर्ण त्रिफलाके काढ़ेमे घौंटना और चूर्णके बजनका तृँह भाग शुद्ध सोनामांखी और शुद्ध मनसिल नीमूके रसमे घौंटकर मिट्टीके कटोरेमे प्रथम रखकर उसके ऊपर चूर्ण डालना और फिर सोनामांखी मनसिल मिश्रण ऊपर रखना. दूसरे कटोरेसे ढक कर गजपुट देनेसे कांत, तीक्षणा और मुंड लोहकी निरुत्थ भस्म बन जाती है।<sup>३</sup>

( ६ ) लोहाके चूर्णके समान शुद्ध गंधक लेकर दोनो धीगुंवार के रसमे घौंटकर उनका एक गोला बनाना वह लोहे के बरतनमे रखकर छायामे रख देना, कुछ दिनोंके बाद लोहकी भस्म बन जायेगी।<sup>३</sup>

( ७ ) लोहाका चूर्ण ४ तोला, सूर्यखार सौरा ४ तोला, शुद्ध गंधक ४ तोला धीगुंवार के रसमे एक दिन घौंटकर एक गोला बनाना. ऊपरसे अंडीके पत्तोंसे लपेटकर गीली मिट्टीसे लपेटना. गजपुट देना.

( १ ) चिंचापत्रनि रुप्तात् त्रिविधं लोहपत्रकम् ।

सूत्पात्रस्थं क्षिपेद्धर्मे दन्त्या द्रावै प्रधूरयेत् ।

पात्रं पुन उनस्तावद्यावज्जरति वै त्वय ।

त्रियते तीव्रघर्मेण चूर्णकृत्य नियोजयेत् ॥

( २ ) माक्षिकं च शिला ह्यम्लैर्हस्त्रिमिर्चानिच ।

पिट्ठा मर्द्दं लोहपत्रं तसं तसं निषेचयेत् ॥

सप्तधा त्रिफलाकाथजलेन क्षालयेत् पुन ।

कुट्टयेष्टोहदंडेन पेपयेत्रिफलाजले ॥

पोडशांशेन लोहस्य दातव्य माक्षिकं शिला ।

अम्लेनालोडितं रुद्धा गजांधकुटे पचेत् ॥

निरुत्थं जायते भस्म कान्तीक्षणादि षुण्डकम् ॥ २ २

( ३ ) लोहचूर्णसमं गंधं मर्दयेत्कन्यकारसै ।

पिण्डीकृतं लोहपत्रेच्छायायां स्थापयेत्त्रिरम् ।

त्रियते नात्र संदेहो ..

र. प्र. मु.

ठंडा होनेके बाद सिंदूरके समान लाल रंगकी लोहभस्म बन जायेगी। यह बारितर होती है और सर्व औषधियोंमें ले सकते हैं।<sup>१</sup>

( ८ ) शुद्ध लोहका चूर्ण तेंदूके कच्चे फलके रसमें एक दिनभर धौंटना, फिर त्रिफला, मंगरा और भटकट्टया के रसोंसे तीन भावना देना, प्रत्येक भावनाके बाद आश्रिषुट् देना, इससे उत्तम लोहभस्म बन जाती है।<sup>२</sup>

( ९ ) तीक्ष्णलोहका चूर्ण और गाँके दूधका दही एक वर्तनमें धौंटना, जबतक सूख जाय, फिर अशीमे गरम करके, त्रिफला के काढ़ेसे तीन भावना देना, इस रीतसे बारितर लोहभस्म जल्द बन जाती है।<sup>३</sup>

( १० ) लोहचूर्णमें उसके समान बजनका नौसादर मिलाना, यह मिश्रण गरम पानीमें भिजाकर कपड़े में बांधकर रख दो, एक प्रहर के बाद वह गठडी हाथपर जोरसे धांसो, इससे अच्छी लोहभस्म बन जायेगी।<sup>४</sup>

( ११ ) लोहका चूर्ण अशीमे खूब गरम करके त्रिफला के काढ़ेमें सात बार छुड़ानेसे शुद्ध हो जाता है, शुद्ध होनेके बाद त्रिफला का काढा, अनारके फूलोंका रस, अनारकी छालका काढा और आमला का रस, ये बार बार उस चूर्णमें डाल देना, और आश्रिषुट् दे कर कूटना और कपड़ेसे छान लेना, फिर कुछ भी खट्टा या तुरट रस उसमें

( १ ) लोहचूर्णपलं खल्वे सोरकं च पलं तथा ।

अच्छुं गंधपलं चापि सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥

कुमार्यन्दिदिनं कुर्याद् गोलकं कट्टुपत्रकैः ॥

संवेष्ट्य च सृदा लित्तं पुटेद्वजपुटे भिषक् ॥

स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य सिद्धारभमयोरज ।

सृतं वारितरं ग्राह्यं सर्वकार्यकरं परम् ॥ आ प्र.

( २ ) संशुद्धं लोहचूर्णं हु समानीय भिषम्बर ।

अपवर्त्तदुकफलरसै संमर्द्धयेद्विनम् ॥

त्रिफलात्मृगराजस्य कंटकारीरसस्यच ।

पुटानि श्रीणि दत्तानि सत्यं वारितरं भवेत् ॥ आ प्र.

( ३ ) गृहीत्वा तीक्ष्णां चूर्णं तथैव च गवां दधि ।

एकत्र कारयेद्वाण्डे यावच्छोपत्वमाप्नुयात् ॥

उद्धृत्य गालयेद्वारौ त्रिफलाया पुटब्रयम् ।

देयं वारितरं सद्यो जायते नान्न संशय ॥ यो. २.

( ४ ) एकभागं लोहचूर्णं तत्समो नवसागरः ।

किञ्चित्प्लोदकं ग्राह्यं सर्वं वस्त्रे निवध्यच ।

यामान्ते घर्षयेत्पाणीं सद्या वारितरं भवेत् ॥ यो. २.

डाल देना। इस तरह लोहाके छोटे छोटे टुकडँका चूर्ण वन जाता है। इसके बाद हथियाके पत्ते, धन्त्रूरेके पत्ते, पुनर्नवा, दूर्वा, धीगुंवार, आमला, जामून और नीमू इनके रसोंसे प्रत्येक सात २ बार भावना देना। इसके बाद फिर-अनारकी छाल, वडके पारंव (डाढ़ी), त्रिफला, जामूनकी छाल इनके काढे बनाके उनसेभी सात २ बार भावना देनेसे अत्युत्तम लोहभस्म बन जाती है।<sup>१</sup>

(१२) लोहचूर्णमे अनारके पत्रोंका रस डालकर धूपमे सुखाना इस तरह सात भावना देनेके बाद दो गजपुट देना। इस रीतसे बढ़िया लोहभस्म तैयार होती है।<sup>२</sup>

अंथोक्त गुराधर्मः—

लोहं जंतुविकारपाण्डुपवनशीरात्वपित्तामय- ।

स्थौल्याशार्ङ्ग्रहरीज्वरार्तिकफजित् शोफप्रसेहप्रणुत् ॥

गुलमझीहविषापहं वलकरं कुष्ठायिमांद्यप्रणुत् ।

सौख्यालस्वि रसायनं मृतिहरं कांतादिकं किञ्चुत् ॥ र. र. स.

मृतानि लोहानि रसीभवन्ति विघ्नन्ति युक्तानि महामयानि ।

आभ्यासयोगाद्वद्देहसिद्धि कुर्वन्ति रुजन्मजराविनाशम् ॥ र. र. स.

मुंडं परं मृदुलकं कफवातशूलमूलाममेहगदकामलपाण्डुहारि ।

गुलमासवातजठरार्तिहरं प्रदीपि शोफापहं रुधिरकृतखलु कोष्ठशोधि ॥ र. र. स.-  
रुक्षं स्यात्खरलोहकं सुमधुरं पाकेऽथ वर्येहि सम् ।

तिक्कोष्णां कफपित्तकुष्ठजठरम्भीहामपाण्डुर्तिनुत् ॥

सद्यः शूलयकृदक्षयजरामेहासवातापहम् ।

दीपं चातिरसायनं वलकरं दुर्नामदाहापहम् ॥ र. र. स.

कान्तायोऽतिरसायनोत्तरतरं स्वस्थे चिरायुःप्रदम् ।

स्निग्धं मेदहरं त्रिदोपशमनं शूलाममूलापहम् ।

गुलमझीहयकृत्खयामयहरं पाण्डुदरव्याधिनुत् ।

तिक्कोष्णां हिमवीर्यकं किमपरं योगेन सर्वार्तिनुत् ॥ र. र. स.

कान्तायः कमनीयकान्तिजननं पाण्डामयोन्मूलनम् ।

यक्षमव्याधिनिवर्हणां गरहरं दोषत्रयोन्मूलनम् ।

नानाकुष्ठनिवर्हणां वलकरं वृक्षं वयःस्तस्मनम् ।

सर्वव्याधिहरं रसायनवरं भौमामृतं नापरम् ॥ र. सिं.

१. दृद्धवैयाधार-

२. दाढिमीपत्रजरसैर्लोहचूर्णं च भावितम् ।

आतपे सप्तधा तेन उर्जग्जपुटद्वयम् ।

इत्थं कृतं च तन्मस्म हुद्वं वारितरं भवेत् ॥ यो र.

निरुत्थ लोहभस्म की यह एक परीक्षा है कि आमलेपर डालनेसे उसका रंग बदलता नहीं। भस्म निरुत्थ न हो तो आमलेपर काला रंग आ जाता है।

अछी तरह बनी हुई लोहभस्मका रंग लालसर और किंचित् कालासा रहता है।

प्रथम लोहभस्मके सर्वसाधारणा गुराधर्म लिखेंगे और बाद तीनों प्रकारके लोहभस्मोंके अलग अलग विशेष गुराधर्म लिखेंगे। पांडुरोगमे लोहभस्म यह एक पुराने जमानेसे अजमाया हुवा इलाज है, कौनसाही वैद्यक शास्त्र लो, उसमे पाण्डुरोगके चिकित्साके लिए लोहका उपयोग किया है। पाण्डुरोग का कारण कुछभी हो, उसके सब रोगिओंमे एक बात पायी जाती है। वह यह है कि खूनमेसे रक्त परमाणु कम होते जाते हैं और कभी कभी श्वेत परमाणु बढ़ते जाते हैं। नतीजा यह होता है कि खूनका और चमडीका रंग पलिं सा बन जाता है। इसी बजह इस रोगको पांडुरोग कहते हैं। कभी कभी यह लक्षण थोड़े दिन रहता है और खून फिर लाल रंगका होता है। रक्तपरमाणु नये बन जाते हैं। किंतु बहुतसे रोगिओंमे यह फीकापन कायम रहता है। रोगीकी चमडीभी पीली पड़ जाती है, चमडीके ऊपर सूजन आती है और वह सूख जानेसे उस पर छाले भी पड़ जाते हैं। रक्तमे जो रंजक पित्त रहता है उसका नाश होनेसे पांडुरोग पैदा होता है (रञ्जकस्य च पित्तस्य नाशोऽयं परिकीर्तिः ।) इस प्रकारके पाण्डुरोगमे लोहभस्मसे बहुत फायदा होता है। लोहभस्मके सेवनसे रक्त परमाणु बढ़ जाते हैं। रक्तका पतलापनभी कम होता है। पांडुरोगके अनेक प्रकारोंमे पित्तज पांडु और हलीमक, इन दोनोंमे लोहभस्म अधिक लाभ पहुँचाती है।

कृमिजन्य पांडु विकारमेंभी प्रथम दूसरी कृमिघ्न औषधियां देनी चाहिए और बाद लोहभस्मभी देनी चाहिए। आंतोमे कभी कभी विल्कुल छोटे २ कीडे होनेके कारण पांडुरोग उत्पन्न होता है। इस तरहके पांडुरोगमे लोहभस्म, और लोहभस्मके साथ वायविडंग और अजवाइनका अर्क देनेसे बहुत फायदा होता है।

वातवाहिनिओंके या स्नायु कंडरा आदिओंके संकोचसे या दूसरे चातविकारोंसे सर्व शरीरमे पीडा होती है। इसमे कांतलोहके भस्मसे आराम हो जाता है। रक्तस्राव अधिक होनेसे नसोंमे, सिरमे या दूसरे इंद्रियोंमे दर्द होती है, जी धवराता है और सिर सुन्नसा हो जाता है। इन लक्षणोंमेंभी लोहभस्म गुराकारी हैं। प्रथम रक्तपित्तका विकार और पश्चात् इन लक्षणोंका उपद्रव हो तो रक्तचंदन आदि

औषधियोंके काढ़के साथ लोहभस्म देनी चाहिए. या चरकसंहितामे लिखा हुआ लोहासव-भी अधिक कार्य करेगा.

पित्तका विकार, आँखोंका आना, हाथपैर और मुँहपर एकदम पसीना आना, प्रथम सुखर्खी और इसके बाद घबराट और फीकापन, सर्व शरीरमे जल्द और जोरसे नाडिओंका चलना, जी मचलाना, हृदयका धुकधुक करना, हृदयकी गति जल्द, नाड़ी भी जल्द और जोरदार, चमड़ी स्पर्श करनेसे गरम लगती है इत्यादि लक्षणोंमे लोहभस्म देनेसे त्वरित गुण पाया जाता है.

पित्ताशयमे खूनकी कमताईसे पित्तका साव कम होनेसे या दूसरे कारणोंसे पित्तका प्रमाणा कम होनेसे, पेटका फूलना, बार बार डकारे आना, खट्टी डकारे आना कै और कैके साथ बदबू या झराव और चिकणा पदार्थ गिरना, इत्यादि लक्षणोंमे लोहभस्मका बहुत उपयोग होता है.

अतिसार या ग्रहणीके विकारमे पक्वाशय और ग्रहणीकी अशक्तता होती है. बडेबडे और बिना परिश्रम दस्त आते है. दस्तमे खट्टी बदबू होती है. दस्तका रंग सुफेद या पानीमे आटा मिलाया जैसा नजर आता है. इस प्रकारके अतिसारमे आंतोंको ताकत देने के लिए लोहभस्म देनी चाहिए. संग्रहणीके विकारमें भी रोगी अशक्त और दुबलापतला हुआ हो तो ताकद बढ़ानेके लिए लोहभस्म देना योग्य होगा.

खूनी बवासीरकी प्रथम अवस्थामे लोहभस्म देनेमे धोका है. किंतु पित्तज या बातज अर्श (बवासीर) के विकारमे शुरूसेही शक्किपात हुआ हो तो लोहभस्म देनेसे फायदा होगा. खूनी बवासीरमें भी आखिरमे—जब खून ज्यादा गिरा हो—हृदयमे पीड़ा, सूजन, पीलापन, इत्यादि लक्षणोंमे लोहभस्मसे आराम मिलता है. इस अवस्थामे कांतलोहकी भस्म अधिक काम देती है.

लोहभस्म कषायरसात्मक होनेके कारण कफ विकारको भी हटाती है. इसमें भी पांडुना (पीलापन) का लक्षण होना चाहिए. हृदयमे पीड़ा और उसके साथ श्वासका विकार हो तो लोहभस्मसे जरूर फायदा होगा. पित्तप्रधान तमकश्वासमे भी लोहभस्मका असर अजमाया गया है. कभी कभी श्वासके विकारमे छाती भर जाती है, जी घबराता है. नाड़ी कठिणा होती है, और मूँह फीका पड़ जाता है. इस विकारमें भी लोहभस्म देनेसे बहुत लाभ होता है.

थंडीबुखार बहूत दिन रहनेसे टिली ( प्लीहा ) बढ़ जाती है। इस विकारमे किनाइन बहुत प्रकारसे और बहूत दिनोंतक दिया गया हो, तो किनाइनका शरीरपर खराच असर हो जाता है। घवराट, श्वास, मँहपर सूजन, फीकापन, बहरापन इत्यादि लक्षणोंमे लोहभस्म बहुत उपकारक है। जिनको लोहभस्म सहन न होगी उनको सुवर्णमाक्षिक भस्म देनी चाहिए। प्लीहावृद्धी के विकारमे फीकापन अधिक हो तो लोहभस्मसे आराम होगा।

सर्वांगशोफके विकारसे ( सर्व शरीरपर सूजन ) लोहभस्म यह एक उत्तम दवा है। इस विकारमे सर्व शरीरपर चमड़ीके अंदर पानी जम जाता है। इसका संचय इतना होता है कि सूजन सा मालूम होता है और चमड़ीपर उंगलीसे दबावें तो एक गङ्गा पड़ जाता है और वह दो चार मिनटसे भर आता है। फीकापन अधिक होता है, घवराट होती है, मुँह सूख जाता है। सर्व शरीरकी नाडिया जोरसे चलती है। अशक्तता इतनी होती है कि बोलनेमेंभी तकलीफ होती है और श्वास चढ़ता है। पेशाब मामूली होता है किंतु सूत्राशयकी अशक्ततासे रोगी उसको बाहर नहीं निकाल सकता। इस प्रकारके सर्वांगशोफमे यकृत् और प्लीहा बढ़ गयी हो तो ताप्र और लोह इनका संयुक्त कल्प देनेसे बहुत लाभ होगा।

पचनक्रियाकी नाताकतीसे या धातुपरिपोषणाक्रमके विगाड़से शरीरमे सेन्द्रिय विषार रह जाते हैं। लोहभस्मके सेवनसे ये विषार नष्ट हो जाते हैं।

पित्तजन्य और कफजन्य मेहके विकारमेंभी लोहभस्म दे सकते हैं। मेहरोगमे जो नाताकती होती है वह इससे हट जाती है। मेहके विकारमे बार २ पेशाब न हो किंतु हर बख्तपर बहुत पेशाब आता हो और साथ २ चमड़ीपर फीकापन बगैरा लक्षण हो तो उस प्रकारके प्रमेहमे लोहभस्मके सेवनसे अवश्य फायदा होगा। किंतु पेशाब बार-बार होता हो, चमड़ी चिकणी और पसीनेसे लिपटी हुई हो तो जसद-भस्मके सेवनसे आराम मिलेगा।

गुलम, अष्टीला, प्लीहा और यकृतवृद्धि इन विकारोंमेंभी रक्त परमाणुओंकी कमताईसे फीकापन अधिक हो तो लोहभस्म, मंडूरभस्म या कांतलोहभस्म देनी चाहिए।

भयानक और चिरकारी विकारोंसे बच जानेपर रोगिओंको अशक्तता आ जाती है। ताकद कम होती है, खून पहले के माफिक ताजा नहीं रहता और मांसभी बढ़ता नहीं। भयानक विकारके साथ

झगड़नेसे और दोषोंको निकालनेकी कोशिंस 'और मेहनतसे' शरीरके सर्व इंद्रिय और धातु दुर्बल हो जाते हैं। इसका असर शरीरपर होनेसे, शरीरभी दुबलापतला हो जाता है। लोहभस्मके सेवनसे यह दुबलापन जल्द हट जाता है। विशेषतः खूनकी खराबीसे यह दुबलापन उत्पन्न हुवा हो तो लोहभस्मसे आराम होगा। इस तरह लोहभस्म ब्रह्मर्धक है।

कुष्ठ (कोड) के विकारकी उपपत्ति आयुर्वेदके शास्त्रमें लिखी है कि तीनों दोप (वात, पित्त, कफ), चमड़ी, खून, सांस और अध्यातु इन सात द्रव्योंकी खराबीसे कुष्ठ उत्पन्न होता है। इस प्रकारकी उपपत्ति होनेसे दोप और धातु इनमेंसे किसकी विकृति और कितनी विकृति हुई है यह देखभाल कर रोगीके लिए औपचार्योजना करना पड़ता है। इन सब प्रकारोंमें जिसमें पित्तप्रधान दोप हो और रक्त और त्वचा (चमड़ी) इनकी विकृति हो गयी हो उसको लोहभस्मसे अधिक कायदा होगा। इस अवस्थामें विशेषतः नीचे लिखे हुए लक्षण नजर आते हैं। चमड़ीमें प्रदाह और सुखीं, छोटे छोटे पानीके वृंदके माफिक फोड़े आना। उनमेंसे चिकराएँ और पानीके माफिक साब निकल आता है। फोड़े कभी कभी पकते और फूटते हैं। उनमें बदबू होती है, चिकराई ज्यादा रहती है और कभी कभी अंगुलियोंके उपरसे चमड़ीभी निकल आती है। इस तरहके लक्षण पित्तप्रधान कुष्ठविकारमें होते हैं। इसमें जो वाव होते हैं उनका रंग कालासा या सुखी होता है। चमड़ीपर छोटे छोटे फोड़े होते हैं, खुजली और जलनभी ज्यादा होती है। इस विकारमें लोहभस्म और त्रिफलाचूर्ण या दूसरे कुष्ठनाशक औपचार्योग देना चाहिए। कुष्ठ विकारमें प्रथम जिस दोषकी दुष्टि अधिक हो उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। और साथ २ या इसके बाद कुछ दूसरे दोषका अनुवंध रह गया हो तो उसके शमनके लिए योजना करनी चाहिए। इस नियमके अनुसार प्रथम पित्तदोषकी चिकित्सा करनेसे कुष्ठरोगमें आराम रह सकता है।

लोहभस्म यह एक रसायन है। याने इसके सेवनसे रसआदि प्रसाद धातु बढ़ जाते हैं। इसका सेवन भी रसायन विधान से करना चाहिए। शुरू से कम प्रमाणा लेकर बादमें धीरे २ प्रमाणा बढ़ाना और फिर धीरे २ कम करना इस रीत को रसायन विधि करते हैं। शिलाजीत, अन्धकर्मस्म, सुवर्णभस्म या त्रिफला इनके साथ भी लोहभस्म दे सकते हैं।

सर्व प्रसाद धातुओंके लिए, उनके काममे आनेवाले द्रव्ययोग्य प्रमाणमे और योग्य समयपर पहुंचाने का प्रमुख कार्य रक्त धातुसेही हो सकता है। इस धातुमेसे रक्तकरा और तांत्र द्रव्य ये दोनो इस पोषण के लिए काममे आते हैं। रक्त धातुमे जो पांचभौतिक द्रव्य रहते हैं उनका भी शरीरके पोषणके लिए उपयोग होता है। इस विचारसे लोहभस्म शरीरके पोषण और मजबूतीके लिए योग्य औषध है। इसमे कुछ शक नहीं। 'लोहभस्मसे देहसिद्धि होती है' यह कहना भी सच है।

**कांतलोहभस्मः—**कांतलोहभस्म के गुणाधर्म प्रायः मंडूरभस्मके समान होते हैं। जिन विकारोंमे बच्चोंको मंडूरभस्मसे आराम होता है उन्ही विकारोंमे बड़े पुरुषोंको कांतलोहभस्मसे फायदा नजर आता है नीरोगी पुरुषको कुछ विकार न होनेपर भी अशक्तताका स्थाल हो तो उसे कांतलोहभस्म देनी चाहिए। इसी वजह स्वस्थ-याने मन और शरीरसे नीरोग-आदमिओंको दीर्घायुष्य प्राप्त करानेके लिए कांतलोहभस्म यह एक उत्तम रसायन है। अपने आयुष्यको नदी की उपमा दें, तो यह कह सकते हैं कि जैसे नदीके प्रवाहके लिए पानी की जरूरत है इसी तरह आयुष्य के प्रवाहके लिए योग्य और प्रशस्त धातु इनका महत्व अधिक है। ये कांतलोहभस्म के सेवन से प्राप्त होते हैं। 'कान्तलोहभस्म दीर्घ जीवित दे सकता है' यह कहना योग्य है।

वातवाहिनी, सिरा या स्नायु इनके संकोच से उनकी जगहपर शूल ( पड़िा ) उत्पन्न होता है। इसमे भी कांतलोहभस्मका उपयोग होता है, [ यह शूल आमवात या वातरक्त से उत्पन्न हुवा हो तो महायोगराज गुणगुल, आक्षेपक के समान हो तो वातविध्वंस, ऐठन के माफिक हो तो सूतशेखर और पित्तदोषप्रधान हो तो ताप्यादिलोह देनेसे लाभ होगा। ]

कांतलोहभस्मसे अंडकोष को ताकद आती है। इसी लिएवह नपुंसकत्व और वीर्य की कमताईके विकारोंमे दी जाती है।

इसके सिवा सर्व प्रसाद धातु पुष्ट और स्वच्छ होनेसे शरीरका तेज बढ़ता है। और शरीर बलवान होनेसे कृत्रिम विषार या सेन्द्रिय विषार अपना असर शरीरपर नहीं कर सकता, विशेषतः आंतोंका प्रथम भाग ( कोष ) सशक्त होनेसे विषका प्रतिकार करता है। इस लिए प्रथम भाग ( कोष ) सशक्त होनेसे विषका प्रतिकार करता है। इस लिए कांतलोहभस्मको, गर-हर याने 'विषार को नष्ट करनेवाली, ' कहते हैं।

मुंडलोहभस्मः—यह भस्म कांत या तीक्षणा लोह भस्मोंसे मुदु याने सौम्य है। इन दोनो भस्मोंके समान तीक्षणा नहीं है, इस लिए दुबले पतले आदमियोंको और सुकमार रोगियोंमें इसकी योजना करनी चाहिए। इससे उनको तकलीफ नहीं होगी।

कोष्ठगत शूल, आमजन्य शूल या खूनी बवासीरमें खून ज्यादा गिरनेसे जो शूल उत्पन्न होता है उसमें मुंडलोहभस्म से फायदा होता है।

प्रमेहके विकारमेंभी काम्तलोहभस्मसे या दूसरे लोहके प्रकारोंसे तकलीफ होगी तो रोगीको मुंडलोहभस्मसे अधिक आराम रहेगा।

कामलो ( पीलिया ) के विकारमें पित्त अच्छी तरह आशोषित नहीं होता और वह पित्त खून में मिल कर खूनके स्वाभाविक रंगको बदल देता है। इस समय पित्ताशय बिगड़ा हुवा, अशक्त हो जाता है। चमड़ी, नाखून, पेशाब, ये सब पीले पड़ जाते हैं। इस विकारमें अशक्तता अधिक हो तो मुंडलोह भस्म देनी चाहिए।

आमवातके विकारसे वच जानेके बाद भी रोगियोंकी अशक्तता कायम रहती है। इसका कारण यह है कि आमवात जिससे पैदा होता है वह आम कायम रहता है। वह आम कायम रहनेका कारण भी पाचक अग्नि या पाचक पित्त की अशक्तता यह ही है। इस लिए पाचक अशक्तिको सशक्त और कार्यक्षम करनेके लिए मुंडलोह देनी चाहिए मुंडलोहके सेवनसे अग्नि सशक्त होगा, आम नष्ट होगा और शरीरको ताकद आ जायेगी।

पाचक पित्तकी अशक्ततासे कोष्ठशूल और अग्निमांद्यके विकार उत्पन्न होते हैं इनमें भी लोहभस्मका उपयोग होता है।

दूसरे लोहभस्मों की अपेक्षा मुंडलोहभस्ममें यह एक खास बात है कि उनमें संग्राही गुरा होनेसे दूसरे लोहभस्मोंके सेवनसे टही सफा नहीं होती है। कञ्जियत रहती है और बाज रोगियोंको तो बड़ी तकलीफ उठाना पड़ता है। किंतु मुंडलोहभस्मसे कञ्जियत भी नहीं होती है और पतले दस्त भी नहीं आते हैं। इस कार्यको ‘कोष्ठ शोधन’ कहते हैं इसके माने यह है कि आंतोंकी ताकद और हालचाल बढ़ाके उनमेंसे मल अच्छी तरह बाहर निकालनेका कार्य मुंडलोहभस्मसे होता है। इसलिए पांडुरोगी या अशक्त रोगीको कञ्जियत की शिकायत हो तो मुंडलोहभस्म देना योग्य है।

दोप—पित्त, वात  
दूष्य—रक्त, मांस, सामान्यतः सर्व धातु  
स्थान—हृदय, यकृत, पचनैद्रिय और ग्रहणी

### १३ वंगभस्म ( रांगाका भस्म )

रांगाको वंग कहते हैं। इसके खुरक और मिश्रक ऐसे दो प्रकार होते हैं। खुरक जात का रांगा चंद्रके समान या चांदीके समान सुफेद और स्वच्छ होता है। उसका आकार उख्के माफिक होता है और इसके गुराधर्म सबसे श्रेष्ठ होते हैं।<sup>१</sup>

अशुद्ध और पूरा भस्म न बना हुवा रांगा सेवन करनेसे प्रमेह, गुलम, हृद्रोग, शूल, व्यासीर; खांसी, कै और श्वास इत्यादि विकार पैदा होते हैं। इसलिए रांगाका शोधन करना चाहिए और अच्छी तरह भस्म बनाना चाहिए।<sup>२</sup>

रांगाका शोधनः—

( १ ) खुरक जात का रांगा अझीमे पिघलाकर, हल्दीका चूर्चा मिलाये हुए निर्गुणी ( सहालु ) के रसमे, तीन बार डालनेसे शुद्ध हो जाता है।<sup>३</sup>

( २ ) चूनेके पानीमे आधा प्रहर तक पकानेसे रांगा शुद्ध होता है।<sup>४</sup>

( ३ ) रांगा अझीमे पिघलाकार सात २ बार तैल, छांछ और गोमूत्रमे डालनेसे शुद्ध होता है।<sup>५</sup>

वंगभस्म बनानेकी रीतः—

( १ ) शुद्ध वंग गरम करके उसमे चौथा हिस्सा ओंगा का क्षार मिलाओ। कढाईमे एक बड़े चमचेसे धीरे धीरे धौंटनेसे वंगभस्म बनना शुरू होता है। इस तरह जवतक सर्व रांगाकी भस्म बन जाय

१ खुरक मिश्रक चेति द्विविधं वंगमुच्यते ।

खुरकं श्रेष्ठसुद्धिष्ठं मिश्रकं चावरं सृतम् ।

खुरकं चंद्रस्त्रप्याभं खुराकारं तु कीर्त्यते ॥ आ. प्र.

२ अशुद्धमसृतं वङ्गं प्रमेहादिगदप्रदम् ।

युलमहृद्रोगशूलार्ज्ज. कासश्वासवमिप्रदम् ॥ र. र. स.

३ द्रावयित्वा निशायुक्ते क्षिप्रं निर्गुणिकारसे ।

विशुद्ध्यति त्रिवारेण खुरवंगं न संशय ॥ र. च.

४ वंगं चूर्णोदके स्विक्षं यामार्धेन विशुद्ध्यति ॥ र. च.

५ वृद्धवैद्याधार.

तबतक घोटना चाहिए. फिर इसको अग्नीमे इतना तपाना चाहिए कि वह सुख हो जाय. तपानेके बाद भी उसके ऊपर एक मिट्टीका कटोरा रखके और ज्यादा आगि दिया जाय. इस तरहसे उत्तम वंगभस्म बन जाती है।<sup>१</sup>

(२) शुद्ध वंग और शुद्ध हरिताल समप्रमाणामे लेकर अकौ-आके रसमे खरल करना. फिर पीपलकी सूखी हुई छाल लेकर उसमे यह रखकर एक लघुषुट देना. इस तरह सात घुट देनेके बाद वंगभस्म तैयार होती है।<sup>२</sup>

(३) शुद्ध वंग कढाईमे रखके चूलेपर रेख दो. अग्निसे जब वह पिघल जाय तब प्रथम हल्दीका चूर्ण डालकर खूब घोटना. फिर अजमोदा, जीरा, इमलीकी छाल इनके चूर्णसे अलग अलग वहही किया करो. आखिरमे पीपलके छाल का चूर्ण डालकर घोटो. इससे वंगभस्म बन जाएगी।<sup>३</sup>

(४) बोरेके कापड का एक टुकड़ा लेकर उसपर दो तीन इंच गाढ़ा बबूलके पत्तोंका थर बिछाओ. उसके ऊपर रांगेके पतले पत्ते अलग अलग रखकर वह सब गदलेके माफिक लपेटलो फिर रसीसे अच्छी तरह खींचकर बांधलो. फिर निर्वात स्थानमे रखकर उसको जलाओ. वारह धंटमे वह धीरे धीरे जलकर बुझ जाता है. फिर आस्तेसे रखड़ी अलग करके, बतासे के माफिक फूली हुई वंगभस्म

(१) आभीं शोधयेदादौ द्रावयेद्वंडिकांतरे ।

अपामार्गचतुर्थीशं चृणितं भेलयेत्तत ॥

स्थूलाग्रया लोहदव्या शानैस्तदवचालयेत् ।

यावद्वस्मत्वमायाति तावन्मर्यच पूर्ववद् ॥

तत एकीकृतं सर्वं भवेदगारवर्णकम् ।

हूतनेन शरावेण रोधयेदंतरे भिषक् ॥

पश्चात्तीव्राग्निना पक्व वंगभस्म भवेद् ध्रुवम् ॥ र. म

(२) वंगं सतालमर्कस्य पिष्ट्वा हुञ्जेन त फुटेद् ।

शुष्काश्वत्थभवैर्वल्कै सप्तधा भस्मतां ब्रजेत् ॥ र. म.

(३) वंगं खर्परके कृता चूल्यां संस्थापयेत्सुधीः ।

द्रवीभूते पुनस्तास्मिन् चूर्णान्येतानि दापयेत् ॥

प्रथमे रजनीचूर्णे द्वितीये च यवानिका ।

तृतीये जीरकं चैव ततश्चिवात्वगुद्धवम् ॥

अश्वत्थवल्कलोत्थं च चूर्णं तत्र विनिश्चिपेत् ।

एवं विधानतो वंगं छियते नात्र संशय ॥ र. :

निकाल लो. फिर धीगुचारके रससे सात भावना देनेसे उत्तम वंगभस्म बन जाती है।<sup>१</sup>

(५) रांगा अश्रीमे पतला करके उसपर नाईके पत्ते डालकर उसका चूर्ण बनाओ. फिर नाईके पत्तोंके रससे तीन भावना देनेसे वंगभस्म तयार होती है।<sup>२</sup>

(६) शुद्ध रांगा अश्रीमे पतला करके उसका चौथा हिस्सा इमली और पीपलके छालका चूर्ण लेकर, वह थोड़ा थोड़ा डाल दो, और लोहेके चमचेसे धौंटो, जबतक वह चूर्ण खत्तम हो जाय. इस विधि से छ घंटोंके अंदर वंगभस्म बन जाती है।<sup>३</sup>

#### ग्रंथोक्त गुराधर्मः—

(१) वंगं तिक्तोष्णाकं रुक्षमीषद्वातप्रकोपनम् ।  
मेहश्लेष्मामयज्ञं च कृमिज्ञं मोहनाशनम् ॥ र. मं.

(२) वंगं लघु सरं रुक्षमुज्जां मेहकफङ्गमीन् ।  
निहन्ति पाण्डुकं श्वासं चक्षुष्यं पित्तलं मनाक् ॥  
सिंहो यथा हस्तिगरां निहन्ति तथैव वंगोऽखिलमेहवर्गम् ।  
देहस्य सौख्यं प्रवलेन्द्रियत्वं नरस्य पुष्टिं विद्धाति नूनम् ॥ आ. प्र.-  
वङ्गं तीक्ष्णोष्णारुक्षं कफङ्गमिवामिज्ञमेहमेदोऽनिलज्ञम् ।  
कासश्वासक्षयज्ञं प्रशासितहुतभुद्धमान्द्यमाध्मानदारि ॥  
बल्यं वृष्यं प्रभाकुम्सनसिजजनकं सर्वमेहप्रणाशि ।  
प्रशाकुद्धर्णयमुच्चैरलघुरतिरसस्यासपदं वृंहसां च ॥ आ. प्र.  
बल्यं दीपनपाचनं रुचिकरं प्रशाकरं शीतलम् ।  
सौंदर्यैकविवर्धनं हितकरं नीरोगताकारकम् ॥  
धातुस्थौल्यकरं क्षयिक्षयहरं सर्वप्रमेहापहम् ।  
वङ्गं भक्षयतो नरस्य न भवेत्स्वप्नेऽपि शुक्रक्षयः ॥ आ. प्र.  
वंगभस्म का रंग सुफेद होता है या उसमे थोड़ी पीली झाँकः रहती है.

वंगभस्मके गुराधर्माँका वर्णन 'वंगं भक्षयतो नरस्य न भवेत्स्वप्नेऽपि शुक्रक्षयः ।' इस श्लोकमे बराबर पाया जाता है. यह श्लोक-

(१) वृद्धवैद्याधार.

(२) वृद्धवैद्याधार.

(३) सृत्पात्रे द्राविते वङ्गे चित्त्वा अवथत्वचो रज ।

क्षिप्त्वा वङ्गं चतुर्थीशमयोदर्द्वया प्रचालयेत् ॥

ततो द्वियाममात्रेण वङ्गभस्म प्रजायते ॥ आ. प्र.

‘एकही सब गुरांका ‘अधिकरण सूत्र’ कहा जा सकता है. क्यों कि वंगभस्मके सर्व गुराधर्म इसी एक गुराधर्मके सहारे होते हैं. शुक्रकी अशक्तता और शुक्रस्थानकी अशक्तता प्रथम होनेसे जो कुछ दूसरे लक्षण पाये जाते हैं, इन सब लक्षणोंमें वंगभस्मका अच्छी तरह उपयोग होता है. इसके सेवनसे शुक्रस्थानकी शक्ति बढ़ जाती है और इसमें दुर्बलत्व हो तो वह नष्ट हो जाता है. इस दुर्बलत्वके कई प्रकार होते हैं. इन सब प्रकारोंमें मूलतः वातवाहिनिओंकी अशक्तता यहही एक कारण है. वातवाहिनिओंको या स्नायुओंको अशक्तता प्राप्त होने का कारण आत्मव्यमिचार (याने परमेश्वर की कृपासे हमें जो अत्युच्च शक्ति मिली है उसको हम अपने हाथसे गुमाते हैं) अथवा अधिक स्त्रीसंभोग यह ही है. इस कारणकी वजह वातवाहिनी और स्नायु इनको अधिक काम पड़ता है और वे दुर्बल बन जाते हैं. इसका नतीजा यह होता है कि मनमें स्त्रीके केवल विचारसे या स्त्रीका दर्शन होनेसे, या विषयभोगके चिंतनसे उनका वीर्यस्खलन होता है. स्वप्नमें स्त्रीसंभोग कर के या बिना संभोगके भी स्वप्नदोष हो जाता है. किंचित् उत्तेजनसे भी धातुस्नाव होता है. इस प्रकारके रोगमें वंगभस्मके सेवन से बहुत फायदा होगा.

शुक्रस्खलनकी आदत कभी कभी रोगिओंमें बहुत दिनोंसे बनी रहती है. इस आदतसे रोगके लक्षण दिन दिन बढ़ते जाते हैं. कई रोगिओंको पागलपन होतासा मालूम होता है तो कई सचमुच पागल बन जाते हैं. पुरुषाङ्कका उत्तेजित न होना अथवा हो तो शीघ्र शिथिल हो जाना, शरीर सूख जाना, कार्य करनेकी शक्तीका नाश, हृदयका धुक धुक होना, जीवनके बावत हताश, हाथपैरोंका आक्षेप (कांपना), सुंदर स्त्री को केवल देखनेसे भी उनका चिच्च इतना हैरान होता है कि जबतक उनका वीर्यस्खलन न हो, तब तक उनको आक्षेप अते है और मूँहसे सुफेद फेन आता है. इस हालतमें भी वंगभस्मसे आराम मिलता है. स्वप्नदोष और पेशाबमें वीर्य जाना भी बंद होता है.

तिक्त, उषणा, रुक्ष, लघु, सर, तीक्षणा, गुरु, आदि वंगभस्मके गुराधर्म होते हैं. इनमेंसे तीक्षणात्व, उषणात्व आदि गुरांके वह वातविकारोंको नष्ट करता है. किंतु कभी कभी रुक्षत्व गुराके कारण वातकी चृद्धि भी होती है. गुरु याने भारी होनेसे, कभी कभी (विशेषतः कफ ग्रहणके रोगिओंमें) भोजनका पाक अच्छी तरह नहीं होता.

“ आखिल मेहघ्न ” इस तरहका वंगका गुणा शाखमे लिखा है। किंतु प्रमेहके सर्व प्रकारोंमे इससे एकसा फायदा नहीं हो सकता। विशेषतः बातज प्रमेह विकारमे वंगभस्मका सेवन न करना चाहिये। सांद्रमेह, अच्छमेह, इक्षुमेह, हस्तिमेह इत्यादि विकारोंमे इससे अधिक फायदा होता है। बूरी संगतके कारणा प्रकृति विरुद्ध वीर्यपात करनेकी आदत से जिनका शरीर निःसत्त्व बन गया है ऐसे आदमि-ओंको प्रमेहका विकार हुवा हो तो उनको वंगभस्मके सेवनसे जरूर लाभ होगा। प्रमेहकी उत्पत्ति शुक्रपात या शुक्रक्षय से हुई हो तो वंग-भस्मके सेवनसे शुक्रस्थान की शक्ति बढ़ जाती है और प्रमेह का विकार भी हट जाता है।

बुढापेमे प्रकृतिधर्मसे बार बार पेशाव करनेकी इच्छा होती है और पेशावभी अधिक होता है। इसमेंभी वंगभस्मसे फायदा होगा। बुढापेमे शरीर थक जाता है और साथ २ मूत्रपिंड, मूत्रवह स्रोतस और मूत्राशयभी थक जाते हैं, और बार बार पेशाव करनेकी इच्छा होती है। इसमेंभी वंगभस्मसे फायदा होगा। जवानीमे धातुस्त्राव अधिक होनेसे यह विकार उत्पन्न हुवा हो तो भी वंगभस्मसे लाभ होगा। बुढापेमे बातकी चृद्धि अधिक होती है। इस बातका ख्याल रखकर वंगभस्मके साथ दूसरी बातनाशक दवाइयां देना जरूर है।

वस्तिमुखस्थ पिंड ( गवीनी-प्रॉस्टेट ) के विकारसे एक प्रकारका मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न होता है। इसमे पेशाव करते समय उस जगहपर जलन होती है और लारके तन्तूके समान तारवाला पेशाव आता है। इसमेंभी प्रथम अवस्थामे वंगभस्मसे फायदा होगा। किंतु विकार अधिक बढ़ गया हो तो वंगभस्मके सेवनसेभी कुछ आराम नहीं मिलता। इसमे शख्क्रिया करके उस पिंडको निकालना जरूर है।

यह विकार कभी कभी प्रमेहके विकारके बाद भी होता है। वंगभस्म मेहनाशक होनेसे इसमेंभी वंगभस्मका सेवन योग्य है। मेहके विकारमे सर्व दोष और मेद, मांस आदि शरीरके अवयव विगड जाते हैं। इसमे धातुपरिपोषणाक्रमके विगड़से शरीरमे मलद्रव्योंका संचय होता है। इन मलद्रव्योंको शरीरमेसे निकालने के लिए मूत्रकी अधिक उत्पत्ति होती है और बार बार पेशाव करनेकी इच्छा होती है। वंग-भस्मके सेवन से शरीरके सूक्ष्म विभागोंकी सूजन और सङ्ग्रन कम होती है और मलद्रव्योंका संचय कम होनेसे पेशावभी कम होता है। मधुमेह के विकारमे वंगभस्मसे इतना लाभ नहीं होता, जितना नाग-

भस्म से होता है, किंतु शुक्रपातके कारण मधुमेहका विकार उत्पन्न हुवा हो तो वंगभस्म और नागभस्मका मिश्रण देना चाहिए.

क्षय का विकार अधिक बढ़ गया हो तो वंगभस्मसे कुछ फायदा होगा. अधिक खींसंगम या वीर्यपातके कारण क्षयरोग हुवा हो तो वंग-भस्म जरूर देनी चाहिए किंतु यह न होनेपर भी छातीमें हल्का पन, छाती-के ऊपर दाढ़सा मालूम होता हो, बहुत खांसनेपर भी थोड़ासा पीला बलाम निकल आता और उसमें बदबू हो, तो वंगभस्मसे बहुत रोगियोंको फायदा हुवा हमने देखा है. इस प्रकारके रोग मे सङ्गर करनेका वंगभस्मका गुण ध्यानमें रखना चाहिए. वंगभस्मके साथ मृग-शृंगभस्म और रससिंदूर मिलाकर अथवा छुटक देना चाहिए.

वंगभस्म कूमिमाशक है. कूमी ( कीड़े ) के कारण उत्पन्न होनेवाला ज्वर ( वुखार ) या हृदयका विकार या दूसरे रोग इनमे वंगभस्म देनेसे आराम होता है. कूमिजन्य ज्वर के लक्षण विषमज्वर के लक्षणसे कुछ मिलते हैं. कभी कभी संतत आदि विषम ज्वर और कूमिजन्य ज्वर इनमे पहचान ( निदान ) करना मुश्किल होता है. किंतु इसमे साथ साथ कूमीके लक्षण भी होते हैं. इसमे पेटमे दर्द, जी मचलाना, उलटी ( कै ), श्वास आदि लक्षण होते हैं. कभी कभी यह ज्वर ४०।४० दिनोंतक चालू रहता है. इसमे जो कूमि ( कीड़े ) होते हैं वह लम्बे मासूली कीड़ेके माफिक नहीं होते, किंतु सूत जैसे छोटे या छोटे छोटे चपटे गांठदार डुकडे होते हैं. वंगभस्म देनेसे इस प्रकारके कीड़े मर जाते हैं. प्रथम वे मूर्छिछत होते हैं या उनको योग्य द्रव्य खानेको न मिलनेसे वे मर जाते हैं. मर जानेके बाद भी वे टर्णोंमें गिरते नहीं. इसलिए वंगभस्मके साथ अमलतासके फलका गूदा या सनायका काढा देना चाहिए. इससे वे कीड़े बाहर निकल आते हैं.

वीर्यपतन करनेकी वूरी आदतसे आखिरको पण्डुरोगकी अवस्था आप्त होती है. कुछ भी काम करनेकी अनिच्छा. आश्रिमांद्य ( वदहज्मी ) शरीर जीर्णशीर्णी और दुबला पतला बन जाता है. इस विकारसे सूजन या चमड़ीके अंदर पानी नहीं होता है. किंतु यह धातुस्राव की आदत शराव पीनेकी आदत जैसी, महाभयानक होती है. इसकी संगत छोड़ना फिर मुश्किल हो जाता है, याने दिन दिन बढ़ती जाती है. इसके साथ २ ऊपर लिखे हुए लक्षण भी बढ़ते जाते हैं. इसमे जो फीकापन होता है वह रक्तके परमाणुओंकी कमताईसे नहीं होता वल्कि शुक्रधातूकी अशक्तताके कारण है. इसके भाने यह है कि शुक्रधातूकी उत्पत्तिके लिए रक्त धातूकी शक्ति अधिक खर्च होती है..

इसमें वात वाहिनिओंको भी अधिक परिश्रम होते हैं। इस लिए वात-वाहिनिओंकी और खून की अशक्तता नजर आती है। चमड़ीका और सर्व शरीरका फीकापन नजर आता है। इस विकारमें नागभस्म या जसदभस्मसे कुछ भी फायदा नहीं होगा। केवल वंगभस्मसे यह रोग हट जाएगा। वंग, प्रवाल और माक्षिक मिश्रण भी दे सकते हैं। अथवा वंग शिलाजीत और लोह यह प्रयोग भी फलदायी होगा। कभी कभी इस विकारमें शुक्रपात इतना नहीं होता जितना केवल डरके मारे विकार बढ़ता है, इसमें फीकापनभी कम रहता है। इसमें वंग, कांतलोहभस्म और ब्राह्मी देनेसे आराम होगा।

बहुत अधिक स्त्रीसंगम या वीर्यपातके कारण कभी कभी खांसी उत्पन्न होती है, और वह सूखी और बहुत कष्टप्रद होती है। खांसते खांसते चक्कर आती हैं इतनी कमज़ोरी रहती है। प्रथम सुजाक की बीमारी होनेके कारण भी इस तरहकी खांसी और दमा उत्पन्न होता है। इसमें भी वंगभस्म के सेवनसे बहुत फायदा होता है। सुजाक की बीमारी इससे नष्ट नहीं होगी किंतु शुक्रस्थानपर सुजाकका जो असर होता है वह वंगभस्मसे कम होगा।

वंगभस्म दीपक और पाचक होनेके कारण अग्निमांद्य (बदहज्मी) को नष्ट करता है। किंतु यह दीपन कार्य शंखमस्म या कपर्दिक भस्म, द्विंग या अजवाँइन, इमलीनीमू या अम्लवेतस के समान गुणांसे नहीं होता है। वंगभस्मका कार्य साक्षात् पाचक पित्तके गुणा बढ़ानेसे होता है। यह गुणावृद्धि भी प्रथम पित्तके पर कार्य होनेसे नहीं होती है। वंगभस्मका कार्य पित्तल (पित्तकारक) कहा जाता है, किंतु यह गुण जल्द नहीं नजर आता। यहाँतक हम देख चुके हैं कि वंगभस्म का कार्य प्रथम शुक्रस्थान पर होता है। शुक्रक्षयसे या वीर्यपतन अतिप्रमाणमें होनेसे सर्व शरीर और इंद्रियोंकी ताकद कम होती है। इसी बजह पचनेन्द्रियको भी अशक्तता प्राप्त होती है। इससे बदहज्मी होती है। यह बदहज्मी मामूली बदहज्मीसे बहुत कष्टदायक और भयानक होती है। इसमें अन्नसेवनकी इच्छाभी नहीं रहती है। थाली परसनेपर या केवल खाना पकते समय की खुशबूसे भी उनका सिर उठता है। हमने ऐसे कई रोगी देखे हैं कि वे अन्नकी खुशबू आनेपर रोने लगते हैं। इतना उनको अन्नका द्वेष रहता है। अन्नसेवन की अनिच्छा, विशेषतः भारी और अच्छा खुशबूदार अन्न न लेना यह लक्षण। इस प्रकारके अशिमांद्यमें रहता है। इसमें वंगभस्म देनेसे तुरन्त लाभ होगा।

इसी प्रकारके अग्निमांद्यमे के ( वान्ति ) का उपद्रव हो या इस अग्निमांद्यके बाद कै का विकार हो तो वंगभस्मसे फायदा होता है. ऐटमे मांसार्वुद ( Cancer ) नामका विकार होता है, इसमे भी कै होती है. इसमे वंगभस्मका उपयोग होता है.

वंगभस्मके सेवनसे मांसार्वुद का विष कम होता है. मांसार्वुदके विकारमे वंगभस्मका प्रयोग देखना चाहिये. आयुर्वेदके ग्रंथोमेसे दो औषधिया इस विकारपर फायदा कर सकेगी-एक वंगभस्म और दूसरी ताप्रभस्म. ताप्र का कार्य तीक्षण होनेसे कफप्रधान या कफवात-प्रधान विकारोंमे इसका उपयोग करना योग्य है. दूसरे दोपैसे उत्पन्न हुए मांसार्वुदमे वंगभस्म देनी चाहिए. मांसार्वुदमे रक्तवाहिनिओंकी विकृति होती है और वह वंगभस्मके सेवनसे सुधर जाती है. नाग-भस्मभी इस विकारमे कुछ लाभदायक है.

प्रकृतिविरुद्ध वीर्यपात करनेकी आदत वंगभस्मके सिवा दूसरे द्वारा द्वारा होती कम नहीं होती. इस आदत का नतीजा यह होता है कि दिन दिन यह बढ़तीही जाती है, जैसी शाराव पीनेकी आदत. अग्रीमे धी डालनेसे वह कभी बुझेगा नहीं, किंतु बढ़ताही जाएगा. इसी तरह यह आदत बढ़ती जाती है. वंगभस्मके सेवनसे यह बढ़ना कम होता है और इस आदतका यूल जो मनकी चंचलता वह भी कम होती जाती है. शुक्रस्थानकी और जननोन्द्रियोंकी ताकद बढ़ जानेसे, उनकी चंचलता कम होती है.

प्रकृतिविरुद्ध वीर्यपातके बाद या खीसंगके बाद कभी कभी एकदम शक्तिपात होता है और इस समय वंगभस्म सेवन करे तो फिर उत्साह बना रहता है. इसका अर्थ यह नहीं की वंगभस्म वीर्योंतेजक है. किंतु इन्द्रियोंकी नाताकती कम होती है.

इसी गुणके कारण वंगभस्मको ' वृष्य ' मानते हैं. अतिशयित वीर्यपात होनेपर चेतना नष्ट हुई हो और नषुंसकत्व उत्पन्न हुवा हो तो वंगभस्म देना जरूर है. इससे चेतनाभी प्राप्त होगी और कुछ दिनोंतक सतत सेवनसे पुरुषत्वभी प्राप्त होगा.

कभी कभी रोगिओंका मन खीसंगसे प्रतिकूल होता है. खी-संगकी इच्छाही नहीं होती है. इसके माने यह नहीं के उनमे पुरुषत्व कम होता है. पुरुषत्व होनेपरभी उनकी इच्छा कम रहती है. कभी कभी वृषणाँकी या दूसरे जननोन्द्रियोंकी वृद्धि अच्छी तरह न होनेसे यह कमतर्दृष्टि देखनेमे आती है. इसमेंभी वंगभस्मसे जरूर लाभ होगा.

वंगभस्मसे शुक्रस्थान और शुक्र धातु इनकी ताकद बढ़नेसे शुक्रस्थान सुदृढ़ बनता है और शुक्रधातूकी पैदाइश सम और योग्य तरह होती है। इससे दूसरे धातुओंकी वृद्धि होती है। शरीरमे सर्व धातु पुष्ट होनेसे सर्व शरीरपर तजेला नजर आता है। शुक्र धातूका कार्य वलवृद्धि और बुद्धिकी भी शक्ति बढ़ानेका है। इसकी वजह सर्व इंद्रियोंकी ( और मन की ) शक्ति बढ़ती है। धातु और इंद्रियोंकी नीरोगतासे शरीरका वर्णभी सुधरता है और वह मजबूत और सुंदर हो जाता है, और दिमाग तेज होता है और स्मृति बढ़ती है।

~~मवाद उत्पन्न करनेवाले जंतुओंपर ( सूक्ष्म कीड़ोंपर ) वंगभस्मका 'जंतुध्न' कार्य अच्छी तरह असर करता है। धाव या ब्रणमेंसे पीला और गाढ़ा मवाद निकल आता हो तो ब्रणके ऊपर ब्रणरोपक पट्टी लगानेसे और पेटमें वंगभस्म देनेसे जल्द फायदा होगा।~~

शुक्र धातूके दो कार्य होते हैं। गर्भकी उत्पत्ति और बुद्धीकी ताकद बढ़ाना। शुक्रधातूकी उत्पत्ति रोजाना होती रहती है। वच्चोंमें यह नहीं होगा किंतु पूरी उम्रवालों ( जवानों ) के लिए यह बात सच है। उनमें रोजाना शुक्रधातु बनती रहती है। वह आदमीविवाहित हो तो कभी कभी शुक्रका उपयोग गर्भकी उत्पत्तीके लिए होता है। किंतु बहुतसा बचता है। इस बचे हुए शुक्रका शरीरमे क्या कुछ भी उपयोग नहीं है? शुक्रका शरीरमे दूसरा कुछ भी उपयोग न हो तो वह शरीरमे संचित हो कर शरीरको तुकसान पहुंचायेगा। किंतु इस दुनियामें बेकाम बस्तु पैदाही नहीं होती है। जो शुक्र शरीरमे बच जाता है वह बुद्धि, मेधा और स्मृती को बढ़ाता है। शुक्ररक्षणासे शरीरको यहही लाभ है। शुक्रक्षयके साथ २ बुद्धीका दौर्वल्य नजर आता है। वंगभस्मके सेवनसे इसी प्रकार शुक्रस्थान की शक्ति और शुक्रकी पैदाइश बढ़नेके बाद, ऊपर लिखे हुए कारणासे बुद्धि और प्रश्ना बढ़ती है।

स्त्रियोंके जननेन्द्रियोंके विकारोंमेंभी वंगभस्मका उपयोग होता है। अंडकोष ( या फलकोशवाहिनिओं ) की अशक्ततासे स्त्रियोंके जननें-द्रियोंको अशक्तता प्राप्त होती है और उनका मासिक धर्मभी नियमसे नहीं होता। इस विकारमे वंगभस्म लोहभस्म और छोटा कनवार इनका मिश्रण देना चाहिए।

निःसंतान ( वांश ) स्त्रियोंकोभी वंगभस्मसे लाभ होता है। यह विकार बहुत कारणोंसे हो सकता है। स्त्रियोंके अंडकोषसे जो स्त्रीबीज वाहर निकलता है वह कम ताकद होनेसे, या खुद अंडकोषका विकार होनेसे, या स्त्रियोंकी मनोवृत्ति विकृत होनेसे, या प्रदर्श ( पलरी ) का

विकार अधिक होनेसे और उससे अशक्तता उत्पन्न होनेसे, या प्रमेहका विकार प्रथम होकर जननेंद्रियोंकी अशक्तता होनेसे, या सुजाक, आत-शक आदि विकारोंसे अंदर धाव या फोड़े होनेसे यह विकार उत्पन्न होता है। इसमेंभी वंगभस्म गुणाकारी है।

मासिक धर्मके समय योनिशूल या कटिशूल होता है वह अंड-कोशोंकी अशक्ततासे या खून साफ न गिरनेसे या खून अंदरके अंदरही रहनेसे उत्पन्न होता है। इन विकारोंसे वंगभस्मसे फायदा होगा। विशेषतः रोगी छीं चिरचिरे स्वभावकी, 'रोती सूरत'वाली, शरीरसे और मनसे दुखली हो तो वंगभस्मसे अवश्य लाभ होगा।

चमड़ीके पुराने विकारोंपरभी वंगभस्म एक अच्छा इलाज है। हरताल मारित (हरताल डालकर बनाया हुआ वंगभस्म, कृति नं. २) वंगभस्मका उपयोग आतशकके विकारमें जो चमड़ीके रोग होते हैं उनमें अधिक होता है।

चमड़ीका एक पुराना विकार वीसर्प नामका (इसव) है। इसमें सतत खुजली रहती है। चमड़ीका रंग काला, चमड़ी कड़ी होती है, छोटी छोटी फुँसिया होती है। उनको खुजलानेसे उनमेंसे पीलासा पानी या गाढ़ा मवाद निकल आता है। इसमें भी वंगभस्मके सेवनसे फायदा होता है। जितना पुराना विकार हो, उननाही वंगभस्मका कार्य स्पष्ट नजर आवेगा।

## १४ शंखभस्म.

प्रमाणा १ से ३ रत्ती।

शंखके दो प्रकार होते हैं। एक दक्षिणावर्त और दूसरा वामावर्त। इनमें दक्षिणावर्त शंख शुभ समझा जाता है। अशुद्ध शंख में कुछ भी गुण नहीं है। वह शुद्ध करनेपर गुणाकारक होता है।<sup>१</sup>

शंख की शुद्धि (शोधन) :—

नीमूका रस आदि अम्ल द्रव्योंमें (पतले पदार्थोंमें) या कांजीमें दो धंटे तक दोलायन्त्रमें पकानेसे शंख शुद्ध होता है।<sup>२</sup>

शंख का भस्म बनानेकी रीतः —

१ द्विधा स दक्षिणावर्तो वामवर्तो शुभेतर ।

अशुद्धो गुणदो नैव छाद्वश स गुणपदः ॥ र. चं. ॥

२. अम्लै सकांजिकैवैव दोलास्त्रिन्न स शुद्धराति ॥ र. च.

शंख के टुकडे अग्नीमें डालकर खूब पूँकना चाहिए, थोड़ेही देरमें  
वे फूल जाते हैं और अच्छी तरहकी भस्म बन जाती है. मिट्टी के  
लोटेमें लघुपुट देने से भी शंख की भस्म बन जाती है।<sup>१</sup>

### ग्रंथोक्त गुराधर्मः—

शंखक्षारो हिमो ग्राही ग्रहरारेकनाशनः ।  
नेत्रपुष्पहरो वर्णस्तारुण्यपिटिकाप्रगुत् ॥  
दक्षिरावर्तशंखस्तु त्रिदोपच्छः शुचिनीधिः ।  
ग्रहातक्षीक्षयक्षेडक्षामतिक्षयाक्षमी ॥ यो. र.

अच्छी तरह वनी हुई शंखभस्म का रंग विलकूल लुफेद होता है.

शंखभस्म यह ही शंखक्षार है. क्षारोंमें जो गुराधर्म रहते हैं वे  
इसमें भी हैं. शंखभस्म और कपर्दिकाभस्म इनमें बहुतसे समान गुरा-  
धर्म होते हैं. क्यों कि ये दोनों दूनेके पदार्थ हैं. किंतु शंखभस्म में कुछ  
विशेष गुरा भी है. ये विशेष गुरा यहां लिखते हैं. शंखभस्म ग्राही  
याने स्तंभक गुराकारक है. इसी बजह अतिसार ( दस्त ) के विकार  
में—विशेषतः पक्वातिसार में—यह एक अच्छा इलाज है. शंखभस्म,  
सुहागेका लाला, अफीम और जायफल इनका योग्य ग्रमारामें मिश्रण  
बनाकर पक्वातिसारमें देनेसे बहुत फायदा होता है. यह परीक्षित  
नुसखा है. इसको शंखोदर कहते हैं. ग्रहरारी के विकारमें भी शंखभस्म  
का विशेष उपयोग होता है. बार बार और बहुत पतले दस्त आते हों  
तो इस से अधिक लाभ होगा.

ग्रहरारी के साथ २ पेटशूल हो और शूलके बराबर पतले दस्त  
आते हो तो शंखभस्म जरूर देनी चाहिए.

पित्तजन्य कोष्ठशूल ( पेट दर्द ), पित्तजन्य अतिसार और कफ-  
पित्तजन्य कोष्ठशूल इनमें योग्य अनुपानमें शंखभस्म देनेसे हुरमत लाभ  
होगा. पेटका फूलना, इसमें दर्द होना, आंतोका कार्य जैसा बंद हुआ

१ वहाँ प्रोत्कुद्धेयिन्कवा सम्बलघुपुटे पचेत् ।  
कुन्दवज्जायते भरम सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ ८ चं.

बृद्धवैद्याधारः—नीमू के रस में शंख के टुकडे एक दिन ( चौबीस घण्टे ) तक  
मिगोना चाहिए. फिर पानसिंहोकर घाम में सुखाना और मिट्टीके कटोरमें रखकर  
उपर मिट्टी क पड़ा लपेटकर गजपुट देना. टंडा होनेपर सरल करना और धींगवार  
कारस फिर ढालकर फिर सुखाना. फिर एक गजपुट दे कर सरल करना. इस  
सीत से लुफेद और महीन शंखभस्म तैयार होती है.

हो इस तरह अंदर अन्न जैसा एकही जगह ठहरा हुवा मालुम होना, बहूदीया या भीठी डकारे आना, इत्यादि विकारोंमें शंखभस्मका सेवन करनेसे जलद वायु निकल आता है और पेट हलका होता है. अन्नका भी पचन होता है और पेटका फूलना भी कम होता है.

अन्नका पचन अच्छी तरह न होनेसे आमाशयमें या पक्वाशयमें पीड़ा शुरू होती है. इसमें धी के साथ या खट्टे नीमूके रसके साथ शंखभस्म देनेसे फायदा होता है.

रसाजीराँका पुराना विकार हो तो रोगीको शंखभस्म देनी चाहिए किंतु उपरा प्रकृती के रोगी को यह न देनी चाहिए.

यकृत् और स्त्रीहा ( तिल्ही ) का कार्य विगड़ जानेसे जो विकार उत्पन्न होते हैं उनमें शंखभस्मका उपयोग होता है. यकृत् ( जिगर ) बढ़ गया हो, या तिल्ही बढ़ गयी हो तो शंखभस्मकी क्षार कियाका असर होकर वे कम होते हैं. किंतु इन रोगोंमें काञ्जियत भी हो तो साथ २ कोई दस्तावर दबाई देना चाहिए, नहीं तो दूसरा कोई क्षार देना योग्य होगा. पेटमें गुलम या अणीला का विकार हुआ हो तो शंखभस्मका उपयोग होता है. शंखभस्मकी तीक्ष्णता दूसरे क्षारोंकी अपेक्षा कम होती है.

कालज अतिसार, विषूचिका या जंतुज विषूचिका ( कॉलरा-हैजा ) इन विकारोंमें रोग का प्रथमका दौरा कम होने पर शंखभस्म की योजना अच्छी तरह काम देती है. हैजा का विकार कम होने पर उल्टी ( कै ) और दस्त कम होते हैं और ऐरोकी ऐंडन भी कम होती है. किंतु पतले दस्त और कमजोरी कायम रहती है. इस लिये सुवर्णा-माक्षिक भस्म और शंखभस्म का मिश्रण देना चाहिए.

आँखोंमें जो फूल पड़ते हैं उनमें शंखभस्मका अंजन करनेसे वे धीरे २ कम होते हैं. शंखभस्म का रोपणाकार्य यहाँ नजर आता है.

( जवान आदमीके या स्त्री के मूँह पर जो फोड़े आते हैं ( मुख-दृष्टिका या तारुण्यपीटिका ) इन में भी शंखभस्म के सेवन से फायदा होता है.)

**दोप-पित्त.**

**दूध-रस, रक्त और आस्थि.**

**स्थान-यकृत्, स्त्रीहा, उंडुक, प्रहरी, पक्वाशय, कोष्ठग्रन्थी, पच-गेन्ड्रिय, नेत्र और मुख.**

## १५ शौक्तिक भस्म ( मोती के सीप की भस्म )

प्रमाणा १ से ३ रत्ती.

सीप दो प्रकारकी होती है. एक मोती की और दूसरी मासूली.<sup>१</sup>  
सीप का शोधन और भस्म करनेकी रीतः—

दोनो प्रकारकी सीप का शोधन शंख के शोधन के माफिक और  
भस्म ( मारणा ) कौड़ी के मारणा के रीती से करना चाहिए.<sup>२</sup>

ग्रन्थोक्त गुराधर्मः—

मुक्ताशुक्तिः कटुः स्त्रिया श्वासहृदोग्हारिणी ।

शूलप्रशमनी रुच्या मधुरा दीपनी परा ॥ र. चं.

जलशुक्तिः कटुः स्त्रिया दीपनी गुलमशूलनुत् ।

विषदोषहरा रुच्या पाचनी बलदायिनी ॥ र. चं.

शौक्तिक भस्म का रंग सुफेद होता है.

शौक्तिक भस्मकी तीक्षणाता शंखभस्मकी तीक्षणाता की अपेक्षा  
कम है. स्थूल रसायनशाखके दृष्टीसे देखें तो शंखभस्म, कपर्दिक  
भस्म और शौक्तिक भस्म एकही मानी जाती है. तीनों चूनेके प्रारिद्धा  
कल्प होते हैं. किंतु गुराधर्म शाख के दृष्टीसे या जीवन रसायन शाख  
के दृष्टीसे तीनों में थोड़ा २ फर्क नजर आता है. शंख और कौड़ी के  
भस्मोंमें कुछ समान गुराधर्म है. सीप और मोती के भस्मोंमें भी  
कुछ समान गुराधर्म है. इसी कारण शौक्तिक भस्म मौक्तिकभस्म  
बनानेकी रीतसे ( शीतभावना-पुटविधीसे ) बनाई जाय तो उसके  
( शौक्तिक भस्मके ) गुराधर्म प्रायः मौक्तिकभस्मके समान होंगे.  
किंतु इस प्रकारसे शौक्तिकभस्म नहीं बनाते हैं. गजपुट विधीसे शौक्ति-  
कभस्म बनाई जाती है. इस लिए वह थोड़ीसी तीक्षणा होती है. तब  
भी शंखभस्म या कपर्दिकभस्मके समान इसकी तीक्षणाता नहीं होती  
है. इसी कारण छोटे बच्चोंको, कोमल और दुबली पतली स्त्रियोंको  
या आदमीको, शौक्तिकभस्म देना उचित है.

शौक्तिकभस्मसे भी आमाशयमें स्वादुता उत्पन्न होती है. अम्ल-  
पित्त, या पित्तजन्य शूल ( दर्द ), परिणामशूल या अन्धद्रवाख्य शूलके  
विकारोंमें पित्तकी तीक्षणाता शौक्तिकभस्मके सेवनसे कम होती है.

१. शुक्तिका विविधा ह्युक्ता मौक्तिकी जलजा तथा ॥ र. चं.

२. शोधनं शंखवत् तथा सृतिः प्रोक्ता कपर्दिवत् ॥ र. चं.

अम्लपित्तमे शौकिक और सुवर्णामाधिक भस्मोंका मिश्रण अच्छा कार्य करता है। विद्यधाजीर्णमे खट्टी डकारे आती हो और गलेमे जलन की तकलीफ हो तो शंखभस्मकी जगह शौकिकभस्म देनेसे अधिक लाभ होगा। रसाजीर्णका विकार पुराना हुआ हो या तीव्र हुआ हो तो कोमल-प्रकृतीके रोगीको शौकिकभस्मही देनी योग्य है।

पित्तातिसारमे दस्त अधिक आते हो, हरबहत दस्तका जोर अधिक रहता हो या दस्तका रंग पीला और नीला या लाल नीला हो, और साथ २ प्यास, बार बार चक्र आना, मिर्गी, सर्व शरीरमे जलन, और गुदाके बाहरकी चमड़ीपर छाले और फुंसिया हो तो शौकिक-भस्म अनारके पाकमे या आँवलेके पाकमे या मख्खन थोड़ा गरम करके पतला होनेपर उसके साथ देनेसे सर्व लक्षण जल्द कम हो जाएंगे।

पित्तजन्य उल्टी (कै) मे शौकिकभस्मका उपयोग होता है। विशेषतः उल्टी बहुत गर्म आती हो, उल्टी का रंग पीला या हरा, उल्टीके समय मुँहमे तीव्र कडवापन और जलन, यह जलन इतनी कि जैसे गलेमेसे भाप निकलती हो, गलेमे और पेटमे दाह, चक्र आना, आदि लक्षणोंपर शौकिकभस्म अच्छा असर दिखलाती है।

पित्तजन्य गुलमके विकारमेंभी शौकिकभस्मका कार्य होता है। इस विकारमे ज्वर, प्यास, मुँह और आँखोंकी सूजन और रक्तवर्ण, भोजन का पाक होनेके समय तीव्र शूल (पेट दर्द) और गुलमको (तीव्र फोड़ेके माफिक) हाथभी न लगा सकते हो तो शौकिकभस्म देनी चाहिए। इस गुलममे अष्टीला या विद्रधीके समान मांसकी वृद्धि नहीं होती है।

रक्तगुलममेंभी शौकिकसे फायदा होता है। किंतु इसमे केवल पित्तकी वृद्धि अधिक होनी चाहिए। पित्तज शीर्षशूल (सिरदर्द) मेंभी शौकिक दे सकते हैं। मूत्रकृच्छ्र, दांतोंमेसे या दूसरे ठिकानोंमेसे खून निकलना इन आदतोंमे शंख या कपर्दिक देनेकी जरूरत रहती है। किंतु ये दोनों तीव्र होनेपर शौकिक भस्मकी योजना इनमे अच्छी होगी।

शौकिक भस्मके सेवनसे कोष्ठगत वात का शमन होता है। कोष्ठ-गत वातके साथ श्वास का विकार हो तोभी शौकिकसे फायदा होगा। पेटका ऊपरका भाग फूलना, इसी कारण छातीमे दर्द, जैसा हृदयमे तीव्र शूल हो, पेटमे और छातीमे जलन, हाथपैरोंकी शूनवहरी (शून्यता),

भीतरसे हाथपैरोमें ठंडापनसा मालूम हो किंतु बाहरसे इसका स्थाल न हो; इत्यादि सब लक्षण डकारे निकलनेके बाद कम होना या विलक्षण नष्ट होना, इस अवस्थामें हाँखकपीदिककी अपेक्षा शौक्तिकसेही अधिक लाभ होगा।

अरुचीमें, विशेषतः पित्तप्रधान अरुचीमें, शौक्तिकका उपयोग होता है। इस विकारमें मुँहका स्वाद विगड़ जाता है, मुँहसे दुर्गंधका आना, मुँहमें खारा, खट्टा या तीखा स्वाद रहना, मुँहमेसे जैसी गर्म २ भाप निकलती हो ऐसे लक्षण होते हैं।

दोष—पित्त और किंचित् कफ़।

दूष्य—रस, रक्त, मांस और अस्थि।

स्थान—आमाशय, यकृत्, पुरीहा और ग्रहणी।

### १६ शृंगभस्म ( हिरण्य या सांवर की सींध की भस्म )

हिरण्यके सींगके अंदरके हिस्सेकी या सांवरके सींगकी यह भस्म बनाई जाती है। यह भस्म बनानेकी रीतः—

सींगके छोटे २ टुकडे बनाना। ( सांवर का सींग पत्थरके समान कड़ा रहता है। हिरण्यका सींग जरा मुलायम होता है। ) उनको कटोरेमें रखकर अझीमें खून जलाना। अच्छी तरह अझी लगे तो पहले पुटमें सब टुकडे सुफेद हो जाते हैं। नहीं तो कई काले रहते हैं। फिर सब टुकड़ोंका ( काले और सुफेद दोनों ) चूर्ण बनाना। इस चूर्णको धींगुवार के रस से ७८ भावना देना। साथ २ प्रत्येक भावनाके बाद गजपुटभी देना। आखिरमें आकके दूधसे ( अर्कक्षीर ) एक भावना और एक गजपुट देनेसे सुफेद शृंगभस्म बन जाती है। कोई वैद्य आक के दूध की भावना नहीं देते हैं केवल धींगुवारके भावनाओंसे भस्म बनाते हैं। पहली रीतसे बनाई हुवी भस्म जरासी तीक्षण होती है और दूसरी सौम्य बनती है। हम दूसरी रीतसे भस्म बनाते हैं। इस ग्रंथमें सब गुराधर्म केवल धींगुवार रस की भावनाओंसे बने हुए शृंगभस्मके हैं। इसका रंगभी सुफेद होता है।

शृंगभस्मके प्रमुख गुराः—स्वरनाशक, शक्तिवर्धक, कफके स्रावको कम करना, फैफड़ोंमें कफदोषकी वृद्धि हो तो उसको कम करके साम्य अवस्था उत्पन्न करना और फैफड़ोंकी ताकद बढ़ाना, हृदयकी ताकद बढ़ाना क्षयरोग ( तपेदिक ) की प्रथम अवस्थामें क्षयरोगके जो खास कीड़े होते हैं उनको कम करना या उनका प्रसर बंद करना। यह आखिरका

गुरा शृंगभस्मका विशेष गुरा है. फैफडॉमे या शारीरके दूसरे अवयवोंमे जो छोटे २ जीवाणु होते हैं उनकी ताकद बढ़नेसे वे क्षयरोगके कीड़ोंको धेर लेते हैं. इसके माने यह है के शृंगभस्मसे वे नष्ट नहीं होते हैं. उनको नष्ट करनेवाला और उनके विषारको सौम्य करनेवाला एक ही इलाज है और वह सुवर्णभस्म है. किंतु क्षयरोगकी प्रथम अवस्था हो या केवल क्षयरोगका शक हो, तो शृंगभस्म और प्रवालभस्मका मिश्रण शुरूसेही देना चाहिए. प्रमारा धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए. १ रत्तीसे लेकर ६ रत्तीतक यह प्रमारा बढ़ा सकते हैं.

श्वासकी नलिया विगड़ जानेसे उनमेसे स्नाव (बलाम) अधिक निकलता है. यह स्नाव शृंगभस्मके सेवनसे कम होता है. अद्भुता का कार्य इससे विरुद्ध है. वह स्नाव को बढ़ाता है. मुलहटीका कार्य इन दोनोंसे भिन्न है. मुलहटीसे श्वासवाहिनी नलिओंकी सूजन कम होती है, और जलन कम होती है. मुलहटीसे सीठासा, मुलायम और लस्सेदार स्नाव निकल आता है और जलन कम होती है. इन तीनोंसे बहेड़ा का कार्य भिन्न है. इसमे व्यतिरिक्त गुरा होनेसे गलेकी सूजन और लाली पर इसका अधिक कार्य होता है. इस तरह खांसी के विकारमे भिन्न २ कारणोंके और दोषदूषके अनुसार भिन्नभिन्न औपधियोंका उपयोग होता है.

वातजन्य सूखी खांसीमे शृंगभस्म देना उचित नहीं है. इससे सूखापन और बढ़ जाता है और खांसीभी बढ़ती है. कुकर खांसी मे इससे फायदा होता है फैफडॉकी सूजन, या श्वासनलियोंकी सूजन या कफके संचय से जो खांसी उत्पन्न होती है उसमे शृंगभरम का उपयोग होता है. बच्चोंके लिये हिरण्य के सर्वगकी भस्म अधिक लाभदायी है.

फुफ्फुस संनिपात (न्यूमोनिया) के ज्वर के बाद छातीमे कफ का संचय अधिक होता है. यह बहुत दिनोंतक तकलीफ देता है. बलाम विलकुल खराब और बदबूदार निकलता है. क्यों कि कफ छातीके अंदर भरा हुआ रहनेपर वह दिनदिन बिगड़ जाता है. यह छातीमे भरा हुवा कफ जल्द निकालना चाहिए और फिर ऐसा बूरा कफ न जम जाय, शरीर को वह तकलीफ न दे और उसकी बदबूभी कम हो इसलिए प्रयत्न करना चाहिए. इसके लिए सब से अच्छा नुश्का यह है कि शृंगभस्म और रससिंदूर, अद्भुता, मुलहटी, बहेड़ा और मिसरी के काढ़ेमे योग्य प्रमारा मे दिया जाय. इस एकही नुश्के से ऊपर लिखे हुवे सब कार्य सुफल होते हैं.

कभी कभी यह स्नाव कम होनेपरभी और उसकी बदबू कम होने परभी फैफडँका थोड़ा हिस्सा खराब रह जाता है और परहेज न रखनेसे उस हिस्सेमें फिर दोषसंचय और दोषदृष्टि होती है। इसी बजह बुखारभी आने लगता है। बुखार की इतनी बड़ी तकलीफ़ नहीं होती है। किंतु रोगी दिन दिन अशक्त होता है। इस विकारमें ज्वरझ औषधीसे कुछ फायदा नहीं होगा। श्रृंगभस्मका कार्य अधिक होगा। श्रृंगभस्मके साथ ( थोड़े प्रमाणमें ) रससिंदूर देनेसे फैफडँका दोष नष्ट होता है और ज्वरभी कम होता है।

श्रृंगभस्मके सेवनसे हृदयकीभी ताकद बढ़ती है। हृदयलः ( छातीका दर्द ) पुराना होनेपरभी हृदय बहुत न विगड़ा हो, हृदयके स्नायु कमजोर होनेसे और शरीरकी साधारणा अशक्ततासे यह विकार उत्पन्न हुआ हो तो श्रृंगभस्म अवश्य देनी चाहिए। बहुत दिनोंके उप वासके कारण, बहुत दूर चलनेके कारण या दिमार्गी काम अधिक करनेसे हृदयकी अशक्तता उत्पन्न हुई हो तो श्रृंगभस्मसे जरूर फायदा होगा। इस अशक्ततामें जरा परिश्रम करनेसेही हृदयका धुकधु करना, जी घबराना, कानोंमें आवाज़ और सर्व शरीरकी नस और हृदय फड़कता हुआ मालूम होना ये लक्षण होते हैं। ये सब लक्षण श्रृंगभस्मके सेवनसे कम होते हैं। हृदयकी अशक्ततासे खांसी, खूनकी अशक्तता और इसी बजह मुँहपर और सर्व शरीरपर सूजन ( कफ-जन्य ) या बहाँकी चमड़ी केवल पानीसे भरी हुईसी नजर आती है। इसमेंभी श्रृंगभस्म लाभदायक है।

हमने राजयक्षमाके विकारमें ( उसमे खास कीड़े हो या न हो ) श्रृंगभस्मका उपयोग बहुत तरहसे और बहुत रोगियोंमें अजमाया है। इससे क्षयरोगका ज्वर और खांसी जल्द कम होती है। किंतु हमारा अनुभव यह है कि जंतुजन्य ( जिसमे कीड़े होते हैं ) क्षय विकारमें केवल प्रथम अवस्थामेही इससे फायदा होता है। इस अवस्थामें श्रृंगभस्म शुरू करनेसेही रोग कम होने लगता है। क्षयके विकारसे रोगीको बड़ी तकलीफ़ न हुई हो और वह बहुत दुबला न हुआ होतो श्रृंगभस्मसे बहुतसा फायदा होगा। प्रथम अवस्थाके रोगी श्रृंगभस्मके सेवनसे करीब करीब सबही अच्छे हो जाते हैं। इस लिए हम कहते हैं की क्षयरोगमें यह एक आशादायक औषध है। क्षयरोगमें अभ्रकभस्म, सुवर्णभस्म और श्रृंगभस्मका मिश्रणभी अधिक फायदेमंद होता है। पुराने बुखारमेंभी इससे फायदा होता है।

बच्चोंके मृद्रस्थ ( Rickets ) नामके विकारमें शृंगभस्म और प्रवालभस्मका मिश्रण अच्छी तरह कार्यकारी है।

पूयवृक्ष और वृक्षवरा इन दोनों मूत्रपिंडके विकारोंमें शृंगभस्मका उपयोग होता है।

**दोष—कफ.**

**दूष्य—रस, रक्त, अस्थि और मज्जा.**

**स्थान—श्वसनोन्दिय, हृदय और वृक्ष.**

## १७. सुवर्णमाक्षिकभस्म ( सोनामांखी की भस्म ).

**प्रमाण १ से २ रक्ती.**

सोनामांखी दो प्रकारकी होती हैं। एक कान्यकुञ्ज देशमें मिलती है, और दूसरी तापी नदीके किनारेपर मिलती है।<sup>१</sup>

सोनामांखीका पथर फोडनेसे अंदर सोनेके माफिक चमकदार रंग दिखता है। बाहरसे वह थोड़ासा काला रहता है।<sup>२</sup>

कसोटीपर धिसनेपर वह सोनेके माफिक कस देती है। वह सोनामांखी भस्म बनानेके लायक है।<sup>३</sup>

**अशुद्ध या अर्धमारित माक्षिकके गुराधर्मः—**

“ अशुद्ध माक्षिकके सेवनसे अग्निमांद्य, बलहानि, विष्ट्रंभ, नेत्र-रोग कुष्ठ और गंडमाला ये विकार उत्पन्न होते हैं।”<sup>४</sup>

इस लिए माक्षिक का शोधन करना चाहिए।

**माक्षिक का शोधनः—**

१. अंडीका तेल ( रेडीका तेल ) और विजोराका रस इनमें पांच घंटेतक पकानेसे सोनामांखी शुद्ध होती है। किंवा केलेके खंबेके रसमें

१ कान्यकुञ्जात्यनिष्ठे जायते स्वर्णमाक्षिकम् ।

तपतीतीरतोऽपि स्यादित्येवं तद्वियोनिकम् ॥ र. र. स.

२ भङ्गे सुवर्णसंकाशो मनाकृ कृष्णच्छविर्बहि ॥ र. सा. स

३ कपे कनकवद्धृष्टं तद्वरं हेममाक्षिकम् ॥ आ. प्र.

४ मदानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्ट्रभितां नेत्रगदान्तकुष्ठात् ।

मालां विधत्तेऽपि च गंडधर्वां शुद्धादिहीनं सलु माक्षिक तु ॥ आ. प्र.

दो प्रहर पकानेसे वह शुद्ध होती है। अथवा आग्नीमे तपाकर त्रिफलाके काढ़ेमे बुझानेसे सोनामांखी शुद्ध होती है।<sup>१</sup>

३. तीन भाग सोनामांखी और एक भाग सैधानमक अकट्ठा पीसकर लौहेके कढाईमे लौहेके डंडेसे धौंटना और इतना आग्नि देना कि कढाई तपाकर रुख्ब हो जाएगी। साथ २ विजोराके रस से या जंभीरीके रससे बार बार छिड़कना। इससे सोनामांखी शुद्ध होती है।<sup>२</sup>

सोनामांखीकी भस्म बनानेकी रीतः—

४. शुद्ध माक्षिक खपरेमे रखकर खूब गरम करना और अंडीका तेल, गौका धी और विजोराका रस ये तीनो अलग (एक के पीछे दूसरा) उसपर डाल देना। इससे तांवेके रंगकी लाल सुवर्णमाक्षिकभस्म बन जाती है।<sup>३</sup>

२. शुद्ध माक्षिक खपरेमे रखकर उसमे, अजामूत्र (वकरीका मूत्र) या अंडीका तेल या कुलथर्की काढा या छाँछ मिलाकर चूले पर रखकर धौंटना। सुवर्णमाक्षिकभस्म तैयार होगी।<sup>४</sup>

३. चार भाग शुद्ध माक्षिक और एक भाग शुद्ध गंधक लेकर लाल अंडीके तेलमे खल करना, रोटलीके माफिक उसके चपटे गोले बनाकर, कटोरेमे नीचे और ऊपर धान (शालि) रखकर बीचमे वे रख देना। दूसरे कटोरेसे बंद करना और मिट्टीकिपड़ेसे लपेटकर गजपुट देना। गजपुट ठंडा होनेके बाद उसे निकाल कर खोलना। इस रीतसे सिंदूरके रंगकी माक्षिकभस्म तैयार होती है।<sup>५</sup>

१. एरंडतैललुगांबुसिद्ध शुद्धति माक्षिकम् ।

सिद्धं वा कदलीकिंद तैयेन घटिकाद्यम् ।

तप्तं शित्पं वराकाये शुद्धिमायाति माक्षिकम् ॥ र र स

२. माक्षिकस्य त्रयोभागा भागैकं सैधवस्य च ।

मातुलुगद्रवैर्वाऽथ जम्बीरस्य द्रवैः पचेत् ।

चालयेलोहजे पावे यावत्पात्रं चुलोहितम् ।

भवेत्ततस्तु संशुद्धं स्वर्णमाक्षिकमत्र तु ॥ आ प्र

३. एरडस्नेहगव्याजैर्मातुलुगरसेन वा ।

स्वर्परस्थ दृढ़ पकव जायते धातुसन्निभम् ॥ र र स

४. अजामूत्रेऽथवा तैले कपाये वा कुलत्थजे ।

तक्रे वा धर्पितं पकवं ग्रियते स्वर्णमाक्षिकम् ॥ र च

५. माक्षिकस्य चतुर्थीशा दत्वा गध विमदयेत् ।

उरुदूकस्य तैलेन तत कार्याद्य चक्रिका ॥

शरावसपुटे धृत्वा पुटेद्वजपुटेन च ।

धान्यस्य हुपमूर्धाधो दत्वा शीत समुद्दरेत् ।

उसिन्दूराभ भवेद्दस्म माक्षिकस्य न सशय ॥ र म.

४. शुद्ध माध्विक का चूर्णा कपड़ेसे छान कर मिट्टीके बरतनमें रख कर आग्नीमें खूब तपाना, और बार बार चमचेसे पलटना. थोड़ेही देर में चूर्णा की चमक नष्ट होगी. फिर नीचे उतार कर ठंडा होने पर नीमूके रेसस सात पुट देना. इससे वहिया माध्विकभस्म बन जाती है।

### ग्रंथोक्त गुराधर्मः—

माध्वीकधातुः सकलामयद्वनः प्रारगो रसेन्द्रस्य परं हि वृष्यः ॥

दुर्मैललोहद्वयमेलनश्च गुरात्तरः सर्वरसायनाग्रवः ॥ र. र. स.

सुवर्णामाध्विकं स्वादु तिक्तं वृष्यं रसायनम् ।

चक्षुप्यं वस्तिहृत्कंठपांडुमेहविषोदरम् ॥

अर्शः शोफं विषं कंडू त्रिदोपमपि नाशयेत् ।

अनुपानं वराव्योषं वेल्लं सात्यं हि माध्विके ॥ आ, प..

माध्विकं तिक्तमधुरं मेहार्द्दःक्षयकुष्ठनुत् ।

कफपित्तहरं वलयं योगवाहि रसायनम् ॥ र. म.

माध्विकं तिक्तमधुरं मेहार्द्दः कृमिकुष्ठनुत् ।

कफपित्तहरं शीतं योगवाहि रसायनम् ।

माध्विको रजतहाटकप्रभः शोधितोऽतिगुरादः सुसेवितः ।

मेहकुष्ठकृमिशोफपांडुताऽपस्वृतीर्हरति सोऽश्वरीं जयेत् ॥

मन्दानलत्वं वलहानिमुग्रां विष्टभतामन्यगदांश्च दुष्टान् ।

करोति मालां व्रणापूर्विकांच माध्वीकधातुर्गुरुरप्यपक्वः ॥ चो. र.

सुवर्णामाध्विक भस्मका रंग कालासा लाल रहता है।

सुवर्णामाध्विक यह एक लोहका कल्प है. स्वादु, तिक्त, वृष्य, रसायन, योगवाही, शामक, शक्तिवर्धक, पित्तशामक, शीतवीर्य, स्तंभक, और रक्तप्रसादक इतने गुरा माध्विक के हैं. रक्तप्रसादन होनेसे खून की खराबी नष्ट होती है और सर्व रक्तधातू सुधरता है. इसमे लोहके दूसरे कल्पोंके ऊपरा तीव्र आदि गुरा नहीं होते हैं. इस लिए यह लोहका कल्प सौम्य है और कोमल प्रकृतिके अशक्त रोगियोंके लिए माध्विकभस्मही योग्य औषध है.

केवल पित्तके विकार या कफपित्तसंसर्गजन्य विकार इनमे माध्विक भस्मसे अच्छा कार्य होता है. इसी लिए पित्तजन्य शीर्षशूल (शिरदर्द), पित्तज अस्त्रपित्त, पित्तज परिणामशूल, पित्तज गुलम आदि विकारोंमे लक्षणोंके अनुसार भिन्न २ अनुपानोंके साथ मासिकभस्म देनी चाहिए.

५. वृद्धवैद्याधार.

पित्तजन्य शीर्षशूल मे सूतशेखरकी मात्रा भी दे सकते हैं, किंतु सूतशेखरकी योजना के लिए मुख्य लक्षण भ्रमरा (चक्र आना) यह होना चाहिए फिर भी सूतशेखरका यह विशेष है कि वातपित्तसंसर्ग-जन्य विकारोंमे उससे अधिक लाभ होता है। किंतु कफपित्तसंसर्गजन्य विकारोंमे माक्षिक से अधिक फायदा होता है। जैसे:—शीर्षशूल के साथ २ जी मच्छाना, मुँहमे गंदा स्वाद, अन्नद्रेष, भोजन के समय भोजन की कुछ भी अच्छा न होना, कै और कै होने पर जरासा आराम होना, आदि लक्षण हो तो माक्षिकभस्मही देना उचित है। पुराने सिरदर्दके विकारमें भी माक्षिक के सेवनसे बहुतसे रोगी अच्छे हुए हैं।

चक्र आना, दिनरात चक्र बनी रहती है, विचार करते २ विचारका स्मरण नष्ट होकर चक्र आना, धाम मे घूमनेसे, उषावीर्य पदार्थोंके सेवन से या रात्रिजागरण से चक्र का विकार बढ़ जाना, मनके विरुद्ध बाते सुननेसे या अधिक जादा विचार करनेसे चक्र आना, रात्रिजागरणकी जिसको आदत पृड़ी हो, ऐसे रोगियोंका चक्र-रक्तविकार ये सब लक्षण और विकार सुवर्णमाक्षिक भस्मके सेवनसे नष्ट होते हैं। अनार या दूसरे फलोंका रस या पाकके साथ माक्षिकभस्म देनी चाहिए।

आँखोंकी सूजन, सुखी और जलन इत्यादि लक्षण अधिक होनेपरभी आँखोंकी दर्द और चूभना कम रहता है। जलन तो इतनी होती है कि दिनरात आँखोंके ऊपर ठंडा पानी या दूसरी ठंडी चीजें रखनेकी इच्छा इस अवस्थामे केवल पित्तही विकृत होता है। वात या कफ की वृद्धि प्रायः नहीं होती है। इस तरहके पित्ताभिष्यंद या रक्ताभिष्यंद मे माक्षिकका सेवन और लेप, दोनों तरह, योजना करना चाहिए। इसके रक्तप्रसादन कार्यसे सुखी और सूजन जल्द कम होती है। पुराने नेत्ररोगोंमे (मोतियाविंदु-लिंग नाश, या फूली छोड़ कर दूसरे विकारोंमे) माक्षिकभस्मके सेवनसे फायदा होता है। लेकिन यह भस्म बहुत दिनोंतक और सौम्य अनुमानके साथ सेवन करना चाहिए। माक्षिकका उपयोग केवल पित्तजन्य नेत्रविकारोंमे होता है इस लिए सावधानीसे यह देखना चाहिए कि केवल पित्तका ही विकार हो।

आगंतुक (क्रोध आदि) कारणोंसे या अति जागरणसे पित्त बढ़ता है। हृदयका धड़कना शुरू होता है। छातीमे दम भरता है, थोड़ेही परिश्रमसे जी घबराता है। इन लक्षणोंमे माक्षिकभस्मसे आराम होगा।

पित्तदोषकी वृद्धिसे दूसरे धातु या स्थानोंकी दुष्टि होती है। रक्त, रक्तकी नलिया और हृदय, इनकी दुष्टि होती है। इस दुष्टीसे हर प्रकारके मिश्र २ विकार उत्पन्न होते हैं। ये विकारभी पुराने होनेपर हाथपैरोंपर और मुँहपर सूजन आती है। इनमेंमी माक्षिकमस्मका उपयोग होता है। माक्षिकके हृदय, स्तंभक और रक्तप्रसादक गुण यहाँ कार्य करते हैं। पर्णावीजका कार्यभी इसी तरहका होता है। किंतु इसका स्वाद अच्छा न होनेसे इसके सेवनसे जी मचलाता है और वमन ( कै ) होती है। माक्षिक मे यह दोष न होनेसे वह शरीरमे रह सकता है और उसका पचन होनेपर हृदयकार्य भी नजर आता है।

रक्तमे विद्युत पित्त मिश्रित होनेसे पित्तके तीक्षणात्व, ऊषणात्व, द्रवत्व आदि गुण बढ़ते हैं। उनके बढ़नेसे रक्तनलिओंकी अंतस्त्वचा पतली होती है। इस तरह रक्तपित्तके विकारमे रक्त नलियोंका पतलापन नजर आता है। वे फूटती हैं और जगह २ रक्तका स्राव भी अधिक होता है। इसीको आयुर्वेदमे रक्तपित्त कहते हैं। इसमे रक्तका बाहर निकलना अधोगामी या ऊर्ध्वगामी हो सकता है। रक्तपित्तमे माक्षिक का उपयोग होता है। माक्षिकके साथ प्रवाल, हल्दी, सुवर्ण गैरिक ( सुवर्ण गेल ) मिश्रित कर के सेवन करें तो अधिक शीघ्र फायदा होगा। केवल माक्षिकसेभी बहुत रोगी अच्छे होते हैं। इस विकारमे केवल दुग्धाहारका परहेज रखनेसे विशेषतः अजाक्षीर के सेवनसे अधिक लाभ होगा। माक्षिकका उपयोग ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त मे अधिक होगा।

पाकस्थली ( Stomach ) का आकार बढ़ जानेसे, पाकस्थलीकी अंतस्त्वचा विकृत होनेसे, या पाकस्थलीके अंदर जखम ( ब्रण ) होनेसे अम्लपित्त उत्पन्न होता है। आयुर्वेदमे ये सर्व विकार ' अम्लपित्त ' मे अंतर्भूत है। कर्कटग्रंथि ( मांसार्वुद ) और ब्रण ये दोनो पाकस्थली के विकार छोड़कर दूसरे सब अम्लपित्तके विकारोंमे माक्षिक का अच्छा कार्य होता है। जिस अम्लपित्तमे पाकस्थलीका आकार बढ़ गया हो वहाँ स्तंभक, शामक और स्वादु गुणोंसे पित्तका नियमन होता है और रोग आराम होता है। पाकस्थली की अंतस्त्वचा विगड़ जाने से अल्मपित्त उत्पन्न हुआ हो तो माक्षिक का लबणात्व गुण वहाँ काम मे आता है। पाकस्थली मे पित्तोत्पादक या पाचक रसोत्पादक ग्रंथिओंकी विकृतीसे अम्लपित्त उत्पन्न हुआ हो तो माक्षिक मे लोह रहनेसे और उसका वल्य कार्य होनेसे पाकस्थलीका आकुंचन होता है और उसकी ताकद बढ़ती है। अम्लपित्त अधिक बढ़नेसे या पित्तकी तीक्षणता-

अधिक होनेसे पेटदर्द ( शूल ) होता हो या वमन ( कै ) के बाद दर्द कमहो, या सिरदर्द कम होती हो तो सुवर्णमाक्षिकही देनायुक्त है, किंतु कै होने पर भी सिरदर्दमें कुछ फर्क न हो या दर्द बढ़ती हो तो इन लक्षणोंमें वातपित्तका संसर्ग जानकर माक्षिक की जगह सूतशेखर देनाही योग्य होगा।

अम्लपित्त मे औषधी-चिकित्सा के साथ २ अंतः परिमार्जन ( पाकस्थली को धोना ) उचित है। यह पुराने पद्धतीसे ( धौति ) या नये पद्धतीसे ( स्टमक पंप ) करनेमें कुछ हर्ज नहीं है।

अम्लपित्तका और भी अधिक प्रकोप होनेसे पाकस्थलीमे वरा होता है और उसमे रक्तनलिका फूट जाती है। वमन मे खून निकलता है। इसमे भी माक्षिक से कुछ फायदा होगा।

माक्षिकमे लोह होनेसे वह ताकद बढ़ानेवाला है। यह लोहभी सौम्य प्रकारका होनेसे, नाकमेसे खून गिरना, रक्तसावके बाद कमजोरीके कारण चक्र आना इत्यादि लक्षणोंमें उससे अधिक फायदा होता है। यहाँ माक्षिकभस्म गौरीसर ( सारिवा ), लालचंदन और पद्माखा पद्मकाष्ठ ) इनके काढेके साथ देनी चाहिए।

शरीरकी कमजोरीसे, अधिक विचार करनेसे अथवा भय या शोकसे, एकाएक आयात होनेसे चक्र भ्रम इत्यादि लक्षणोंका होना। कभी कभी यह भ्रम इतना बढ़ता है कि रोगी पूरा पागल बन गया सा नजर आता है। इस विकारमे सुवर्णमाक्षिकसे शीघ्र आराम होता है। कुम्हडा ( पेटा ) के रसमे यह देनी चाहिए।

इसी विकारमे उम्माद ( पागलपन ) का जोर अधिक न हो तो माक्षिकभस्म, जटामांसी, खस और लालचंदनके काढेमें देनेसे वह कम होगा।

अधिक शराब पीनेसे ( मदात्यय ) कभी कभी एक किसकी अन्ति होती है। इसमे वमन, वमनके साथ खूनका गिरना, मुँहपर और सर्व शरीरपर फीकापन इत्यादि लक्षण होते हैं। इसमेंभी माक्षिकभस्म देनी चाहिए। वह कुटकी, विषखपरी ( पुनर्नवा ) और गिलोयके काढेमें देनेसे अधिक लाभ होगा।

रक्तर्श या पित्तार्श ( खूनी बचासीर ) के विकारमे खून अधिक गिरनेसे सर्व शरीरकी नसें धड़कती हैं, शरीरमे खून कम होनेसे फीकापन रहता है, कभी कभी सूजनभी होती है। ये सर्व लक्षण खूनकी कमती इसे होते हैं। इसमेंभी माक्षिकसे फायदा होगा। इससे खूनका पतला-

‘यन कम होता है. शरीरका फीकापन और दूसरेभी लक्षण कम होते हैं. इस समय यह नागकेसर, तेजपात और इलायचीके साथ देनी चाहिए.

विषुचिका (हैजा) के विकारमे वसनकी तकलीफ कम करनेके लिए माध्यिकका उपयोग होता है. किंतु दूसरे हैजाकी औषधोंके साथ यह देनी चाहिए. माध्यिकभस्म-और सूतशेखरका मिश्रण दे सकते हैं. यह मिश्रण अदरखके रसमे घार २ चटाना चाहिए.

हैजा से बचनेके बाद जो कमजोरी रहती है उसमे; या हैजाके कुछ लक्षण बाकी रह गये हों, विशेषतः चक्र आना, बार २ के या दस्तका आना इन लक्षणोंमे सुवर्णमाध्यिक और शंखभस्म आमलेके मुख्यके साथ देनी चाहिए.

सुवर्णमाध्यिक स्वादुरसोत्पादक, तिक्त और वल्य है. यह वल्य होनेके कारण यह रस, रक्त आदि धातुओंके शर्कि बढ़ाता है और वह योग्य प्रमाणमे बनते जाते हैं. इसी लिए वह ‘रसायन’ कहा जाता है.

वस्ती (पेशावकी थैली) की अशक्तता से उस थैली मे पेशाव संचित न होकर अपने आप वृंद २ बाहर निकल आता है. इसमे मूत्रधारक स्नायुकी अशक्तता रहती है इस विकारमे शिलाजीत और माध्यिकका मिश्रण देते हैं. वह विदारीकंद, असगंध, और मजीठके साथ देनेसे अधिक लाभ होता है.

बातज या बातपित्तज हृद्रोग (छातीका दर्द)मे हृदयका धुकधुक करना, जी घबराना, श्वास जोरसे चलना, पसीना आना, सर्व शरीरके अंदर जलन और सर्व शरीरका कंप, ये लक्षण होते हैं, इनमे माध्यिकभस्म देनी चाहिए. इससे हृदयकी ताकद बढ़ती है. पुराने हृद्रोगमेंभी इससे फायदा होता है. किंतु हृदयके अंदरकी छिल्ली (पड़दा) के विकारमे माध्यिकसे कुछभी आराम नहीं होगा.

गलेमे ग्रथी (टाँसिल) बढ़ जानेसे, या मुँहमे लालापिंड या गले-की सूजनमे वहां रक्तसंचय होता है और पीड़ा, सूजन, सुखीं और जलन आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं. यहांभी माध्यिकभस्म लाभदायक है. किंतु इस विकारके साथ २ अधिक बुखार हो तो माध्यिक न देनी चाहिए. क्यों कि तीव्र ज्वर की प्रथम अवस्थामे माध्यिकका सेवन उकसान पहुँचाता है. बुखार न हो तो माध्यिकभस्म शहदके साथ देते हैं.

मलेरिया का दुखार बहुत दिनोंतक रहनेपर, इसके लिए कुनाइन लेनेसे भी वह, कभी कभी विलक्षण कम नहीं होता और प्लीहा (तिली) बढ़ने लगती है, प्लीहावृद्धीके बाद जलोदर होता है और इसमे सर्व शरीरपर सूजन, घबराट और बांति (कै) होती है। इस विकारमे सुवर्णामाक्षिकसे बहुत लाभ होता है। सुवर्णामाक्षिक के सेवनसे कुनाइन के दोष कम होते हैं। कुनाइन बहुत दिनोंतक देनेसे शरीरको त्रुक्सान पहुंचाती है; कभी कभी रोगीको थोड़ीसी भी कुनाइन देनेपर बहुत तकलीफ होती है। इसमें भी माक्षिकके सेवनसे सब लक्षण कम होते हैं। यह कार्य माक्षिक का प्रभाव कह सकते हैं।

हृदयके विकारमे सर्व शरीरपर सूजन आती है, मलेरियामे भी आखिरमे सूजन आती है और दूसरे विकारोंमे भी रक्तक्षय होनेके बाद सूजन आती है। इन सब विकारोंमे जी घबराना, चक्र आना, सिरदर्द आदि लक्षण होते हैं। ये सब लक्षण माक्षिकभस्मके सेवनसे कम होते हैं।

विरुद्ध आहारके सेवनसे या विषमिश्रित चीजे खानेसे, वे पित्तोत्पादक, तीव्र और जलन उत्पन्न करनेवाली होनेके कारण, पित्तप्रकोप होता है। उसमें भी माक्षिकभस्मसे लाभ होगा। किंतु प्रथम विषनाशक इलाज करके, बादमे माक्षिक देनी चाहिए।

सर्व शरीरपर छोटी छोटी फुंसिया का आना, खुजली, सर्व शरीर, नाखून, होट, आदि फीकों पड़ जाना, खून गिरनेके बाद या अतिसार (दस्त) के विकारके बाद सर्व शरीरपर छोटी २ फुंसिया का आना, चमड़ी रुखी और कड़ी होकर खूब खुजलाना इत्यादि लक्षणोंमे माक्षिक का उपयोग होता है। इसी विकारमे ताप्यादि लोह भी दे सकते हैं। गौरीसर (सारिवा) के काढ़ेमे यह देते हैं।

सूजातिसार, याने खास मधुमेहके पूर्वलक्षण न होनेपर भी पेशाब अधिक होना, पेशाब का रंग पीलासा, चमड़ीका रंग भी पीलासा, नाखूनोंकी लाली कम होना, रातको पेशाब अधिक होना और बार-बार पेशाबके लिए ऊठनेकी जरूरत हो तो सुवर्णामाक्षिक का सेवन करना चाहिए। जामूनके रसमे या जामूनके पाकमे यह देना चाहिए।

शुक्रक्षय या रजःक्षयके विकारमे वंगभस्मके साथ माक्षिकभस्म देनेसे अधिक लाभ होता है। प्रदरके विकारमे भी माक्षिकभस्म उपकारक है। बहाँ अबला संजीविन कल्पके साथ यह दे सकते हैं।

कभी कभी चमड़ीका रंग बदल जाता है काला सा होता है, उस घर छोटी २ फुंसिया आती है, हाथपैरोंकी अंगुलिया फूल जाती है।

किंतु खुजली बिलकुल नहीं होती है. खुजली की जगह वहां का स्पर्श-शान भी कम होता है. सर्व शरीरपर सुख या देरंग के गोल चकते (मंडल) उत्पन्न होते हैं. इस विकार में शुखवात से गंधक रसायन और माध्यिक देनेसे लाभ होगा. अथवा केवल माध्यिक तुलसीके पत्तोंके रस में दे सकते हैं.

पित्तजन्य कामला (पीलिया) में भी माध्यिक का उत्तम कार्य होता है.

पीलिया के सर्व प्रकारोंमें इसका कार्य हस्त देख चुके हैं. प्रवाल-भस्म, शौक्षिक और माध्यिक इनका योग्य प्रमाणामें मिश्रण बना कर वह मूलीके रसके साथ देना चाहिए.

दोष—पित्त (पाचक और रंजक)

दूष्य—रस, रक्त, मज्जा, शुक्र.

स्थान—सिर, नेत्र, हृदय, आमाशय, यकृत, आंत्र, पचनेन्द्रिय, बास्ति, अंतःस्नावक पिंड, त्वचा, अंडकोष और मनोदेश.

### सुवर्ण भस्म.

प्रमाणा  $\frac{1}{2}$  से १ रत्ती.

प्राकृत, सहज, अश्विज, खनिज और पाराकी वेध क्रियासे पैदा होनेवाला. इन पांच प्रकारोंका सुवर्ण रहता है.<sup>१</sup>

अशुद्ध सुवर्ण के सेवन से सुख, वीर्य और बल का नाश होता है. अनेक विकार उत्पन्न होते हैं. शुद्ध होने पर भी उसकी भस्म अच्छी न बनी हो तो भी ऊपर लिखे हुए विकार होते हैं. इस लिए सुवर्णकी शुद्धि और मारणा सावधानपूर्वक होना चाहिए.<sup>२</sup>

सुवर्णका शोधनः—

१. तेल, छांछ, गौमूत्र, कुलथीका काढा या कांजीमें कौनसा भी धातू, तपा कर सात बार बुझानेसे, शुद्ध होता है. याने सोनेसे लेकर लोहेतक सब धातुओंकी इसी रीत से शुद्धि होती है.<sup>३</sup>

१. ग्राकृतं सहजं बन्हस्भूतं सनिसंभवम् ।

रसेन्द्रवेधसंजातं रसर्ण पंचविध मतम् ॥ २ २ च

२. सौख्यं वीर्यं बलं हन्ति नानारोगान्करोति च ।

अशुद्धं न सृतं स्वर्णं तस्माच्छुद्धं तु मारयेत् ॥ २. च.

३. तेले तक्रे गवां मूत्रे क्राथे कौलत्यकांजिके ।

तप्तं तप्तं निषिद्धेतु तत्तद्रावे तु सप्तथा ।

स्वर्णादि लोहपर्यं शुद्धिर्भवति निश्चितम् ॥ २ चे.

२. मिट्ठी, कजली, सुवर्णागेल, नौसादर आदि पांच तरह की मिट्ठी लेकर खड़े नीमूके रसमे या कांजीमे खरल करके उससे सोनेके पत्तोंको लेप करना, और एक लघु पुट देना। इससे सोनेकी शुद्धि होती है।

३. मिट्ठी, जंगली गोयठोंकी राख, और सेंधा नमक इनका विजोराके रसमे पांच दिन खरल करना। सोनेके पत्तोंको इससे लेप करके उसको पुटपाककी रीतसे लपेट कर लघुपुट देना। इससे सोना शुद्ध होता है।

४. सोना असली रंगका न हो तो, उसके पत्ते बनाकर, चूना (पत्थरका सूखा चूना) और सेंधा नमक मिला कर उनका कांजीमे खरल कराना और उससे पत्तोंको लेप करना। उन पत्तोंको मिट्ठीके कटोरे मेरखकर ऊपरसे दूसरे कटोरे से ढकना और मिट्ठीकपड़ा लपेट कर सूखे जंगली गोयठोंकी छोटीसी छिगारमे या भट्टीमे रख कर एक पुट (लघुपुट) देना। इस प्रकारसे छ पुट देनेसे सोना शुद्ध होता है।

५. असली नंबरका सोना हो तो उसको शुद्ध करनेकी जरूरत नहीं।

#### सुवर्णभस्म बनानेकी रीतः—

१. सर्व धातुओंके पत्ते बनाके उनके बजनके बराबर पारा और गंधक की कजली लेना। पत्तोंके नीचे, ऊपर और बीचमे कजली रखकर बालुका यंत्रमे बारह प्रहर तक मंद, मध्यम और प्रधर (तीक्षणा) अग्नीसे पुट देना। इस विधिसे सर्व धातुओंकी भस्म बन सकती है।

१. वल्मीकमृत्तिकाध्यमगैरिकं इष्टिका पटु ।

इत्यादा मृत्तिकाः पञ्च जन्म्वीरैरारनालकैः ॥

पिष्ट्वा लेप्यं स्वर्णपत्रं श्रेष्ठं पुटेन शुद्धयति ॥ र. चं.

२. मृत्तिकामातुलुंगाम्लैर्भावितं पञ्चवासरस् ।

सभस्मलवरणं हेम शोधयेत्पुटपाकवित् ॥ र. मं.

३. हीनवर्णस्य हेमश्व पत्राण्येव तु कारयेत् ।

खटिका पटुचूर्णाच कांजिकेन प्रमद्येत् ॥

पत्राणि लेपयेत्तेन कल्केनाथ प्रयत्नत ।

आरण्योपलकैः कार्या कोष्टिका नातिविस्तृता ॥

मध्ये तत्संषुटं स्फुत्वा वान्हि प्रज्वालयेत्ततः ।

एवं पुटब्रय दत्त्वा शुद्धं हेम समुद्धरेत् ॥ र. प्र. सु. ।

४ न तु शुद्धस्य हेमश्व शोधनं कारयेन्द्रिष्टः ।

५ पत्राणि सर्व धातूनां तत्तुल्या कजली तथा ।

दत्त्वा दलान्तरे तत्र बालुकायंत्रं पचेत् ।

पृथक् पृथक् सूर्यनाडीवह्निभिर्दीपिकादीभि ।

भस्मीभवन्ति सर्वेऽपि स्वर्गाद्या सप्तधातव् ॥ नि. र.

२. सीसाके संयोगसे सुवर्णाकी भस्म होती है, सुवर्णामाक्षिकके संयोगसे चांदीकी, गंधकके संयोगसे ताँबेकी, मनसिलके संयोगसे सीसेकी, हरितालके संयोगसे रांगाकी और, खीका दूध और सिंगरफ़के संयोगसे तीनो प्रकारके लोह की भस्म बन जाती है।<sup>१</sup>

३. शुद्ध पारा और शुद्ध सुवर्णा समप्रमाणमें लेकर नीमूके] रसमें उनका खरल करना, इसका एक गोला बनाकर गोलेके बजनके बराबर शुद्ध गंधक लेकर वह गोलेके नीचे और ऊपर रखकर छोटे कटोरेमें रखना. दूसरे कटोरेसे ढकना. फिर तीस गोयड़ोंके अग्निसे लघुषुट देना. इस प्रकारके चौदह पुट देनेसे सुवर्णाकी भस्म बन जाती है. प्रत्येक पुटके समय नीमूके रसकी एक भावना देना चाहिए और गंधक भी फिर दूसरा लेना चाहिए.<sup>२</sup>

४. सुवर्णामाक्षिक और सीसाकी भस्म इनका आंकके पत्तोंके रसमें खरल करना. इससे सोनेके पत्तोंको लेप देना और दो कटोरेके भीतर रखकर गजपुट देना. एकही पुट देनेसे सुवर्णाभस्म बन जाता है.<sup>३</sup>

५. सोनेका चूर्ण और शुद्ध पारा समप्रमाणमें लेकर उनका खरल करना, यह मिश्रण लोहेके कढाईमें या चमचेमें रखकर चूलेपर रख देना और खूब तपाना. तपानेसे सब पारा उड़ जाता है. फिर वचे हुए सोनेके बराबर सुवर्णामाक्षिकका चूर्ण (सोनेके नीचे और ऊपर) डालकर फिर गजपुट देना. इस रीतसे सोनेकी भस्म बन जाती है.<sup>४</sup>

६. शुद्ध सोनेका चूर्ण और उससे आधा शुद्ध पारा लेकर उनका खरल करके एक गोला बनाना. एक कटोरेमें नीचे सीसेकी भस्म रखकर उपर वह गोला रखना और फिर ऊपर सीसेकी भस्म रखकर दूसरे कटोरेसे ढक देना. एक गजपुट देनेसे सोनेकी भस्म तैयार होती है.<sup>५</sup>

१ नागै सुवर्णं रजतं च ताप्यर्गधेन ताम्रं शिलया च नागम् ।

तालेन वर्णं त्रिविधं च लोहं नारीपयो हन्ति च हिङ्गुलेन ॥ र. र.

२ शुद्धसूतसमं हेम खल्वं कुर्याच्च गोलकम् ।

अथोद्धृतं गंधकं दत्त्वा सर्वं तुल्यं निरुद्ध्य च ॥

त्रिंशश्नूपोपलैर्देयं पुटान्येव चतुर्थश ।

निरुद्ध्यं जायते भस्म गंधो देयः पुन तु तु ॥

जंबीरद्रवदानं तु सर्ववैवं विनिश्चय ॥ र. च

३ माक्षिकं नागचूर्णं च पिण्ठमर्करसे पुनः ।

हेमपत्रं च तेनैव त्रियते क्षणमात्रत ॥ र. म.

४ समसूतेन वै पिण्ठीकृत्वाऽग्नौधमापयेद्रसम् ।

स्वर्णो तत्समताप्येन पुटितं भस्म जायते ॥ र. म.

५ स्वरणार्थं पात्रं दत्त्वा कुर्याद्यत्वेन पिण्ठकाम् ।

दत्त्वोपर्वधो नागचूर्णं उटनान्त्रियते ध्रुवम् ॥ र. ग

७. शुद्ध सोनेके भूर्जपत्रके समान पतले पत्ते बनाके उनके बजनके बावर हींग और सिंगरफ लेकर वे दोनों तीन धारके थूहर (सेहुंड) के रसमे पीसकर उनसे उन पत्तोंको लेप देना। दो कटोरेके बीचमे रखकर एक कुकुटपुट देना। इस तरह दसपुट देनेके बाद गेरू जैसे लाल रंग की सुवर्णभस्त्र बन जाती है।

८. सोनेके पतले २ पत्ते बनाना। सोनेसे चौगुना गंधक और गंधकसे चौगुना कदूतरकी विष्टा लेकर उनसे सोनेके पत्तेको लेप दो। जंगली गोयठोंके अश्मीसे एक कुकुट पुट देना। ठंडा होनेपर फिर धीगुंवारके रससे एक भावना देना। फिर उतनाहीं गंधक और कदूतरकी विष्टा लेकर उससे मिलाना और कुकुटपुट देना। इस तरह सात पुट देनेसे सुवर्ण भस्त्र बन जाती है।

ग्रंथोक्त गुराधर्मः—

मृतं हाटकं दिव्यकांतिं तनोति क्षतं श्वासकासं क्षयं पित्तवातौ ।  
प्रमेहग्रहण्यातिसारांश्च कुष्ठं ज्वरं हस्ति षाण्ठयं च कंदर्पयं च ॥

सर्वैपाधिप्रयोगेन व्याधयोहि गता न ये ।  
कर्मभिः पञ्चभिश्वापि सुवर्णा तेषु योजयेत् ॥  
शिलाजतुप्रयोगाच्च ताप्यसूतकयोस्तथा ।  
अन्यै रसायनैश्वापि प्रयोगे हेममुत्तमम् । र. चं.

स्वर्णं स्तिर्घकषायतिक्षमधुरं दोषत्रयध्वंसनम् ।  
शीतं स्वादु रसायनं च रुचिकृच्चक्षुष्यमायुष्यदम् ॥  
प्रज्ञावीर्यबलस्मृतिस्वरकरं कान्ति विधत्ते तनोः ।  
संधत्ते दुरितक्षयं श्रियमिदं धत्ते नृशां धारणात् ॥ आ. प.

सुवर्णं शीतलं वृष्यं बलं गुरु रसायनम् ।  
स्वादु तिक्तं च तुवरं पाके च स्वादुपिच्छिलम् ॥  
पवित्रं वृंहशां नेत्रं मेधास्मृतिमतिप्रदम् ।  
हृदयमायुष्करं कांति वाग्विद्वाद्विस्थिरत्वकृत् ॥  
विपद्धयक्षयोन्मादनिदोषज्वरशोकजित् ।  
अपक्वमेव संशुद्धं पक्वं तनु रसायनम् ॥ आ. प.

१. हेम सूक्ष्मदलानि भूर्जसद्वशान्यादाय संलेप्य वै ।  
वज्रीदुर्घकहिंगुडिंगुलसमैरेकव पिष्टीकृतै ।  
सत्यं संषटके निधाय दशभिश्वैव पुटैः कुकुटैः ।  
पाच्य हेम च रक्तगैरिकसमम् सजायते निश्चितम् ॥ र. च.

२. वृद्ध वैद्याधार.

न सज्जते हेमपांगे पञ्चपत्रेऽस्तुवद्विषम् ॥ अष्टांगहृदयम् ॥  
आयुर्लक्ष्मीप्रभाधीस्मृतिकरमखिलव्याधिविध्वंसि पुण्यम् ॥  
भूतावैश्वर्णांतिस्मरभरसुखदं सौख्यपुष्टिप्रकाशि । गाङ्गेयम् । र. र. स.

स्तिर्घं मेध्यं विषगरहरं वृंहरां वृष्यमग्रथम् ।

यद्योन्मादप्रशयनपरं देहरोगग्रमाथि ।

मेधावुद्धिस्मृतिसुखकरं सर्वदोपामयद्धनं ।

रुच्यं दीपि प्रशमितरुजं स्वादुपाकं सुवर्णाम् ॥ र. र. स.

सुवर्णा का उपयोग बहुत पुराने कालसे आयुर्वेदशास्त्रमें प्रसिद्ध

है. चरक आदि ऋषिप्रणालीत ग्रंथोंमें विषको नष्ट करनेके लिए इसका उपयोग लिखा गया है. आज तीन चार हजार वर्षसे आयुर्वेदमें सुवर्णाका उपयोग जारी रहा है. सुवर्णा यह सर्व धातुओंमें वजन का भारी, निर्मल ( स्वच्छ ) और प्रसन्न धातु है. सुवर्णाभस्म का रंग काला या लाल रहता है.

सुवर्णाभस्म—स्तिर्घ, मधुर, कषाय, किञ्चित् तिक्त, शीतवीर्य और रसायन है. प्रक्षा, वीर्य, वल, स्मृति और कान्ति वढानेवाली है. वृष्य और गुरु है. पाकके पश्चात् मीठी और चिकराई उत्पन्न करनेवाला है. वृंहरा, हृद्य, और आवाज धीमा और शुद्ध करनेवाली है.

सुवर्णासे हृदयकी ताकद बढ़ती है. इसका कार्य यह नहीं है की थोड़े देरके लिए हृदयकी ताकद बढाना. यह ताकद केवल उत्तेजन नहीं है. तो हृदयके स्नायु जोरदार बन जाते हैं. इसी कारणा यिन्ह रसायनोंमें और मात्राओंमें सुवर्णाका अंतर्भव है. दूसरी भी हृदयको शक्ति देनेवाली औषधियाँ हैं. जैसे-कुचलाः-हृदय के वातवाहिनिओंको कुछ देर तक उत्तेजित करता है; कपूर आदि:-रक्तवाहिनिओंका विकास करता है; पर्णाबीज, कौहा आदि:-रक्तवाहिनिओंको संकोचित करता है. इन हृदयोत्तेजक औषधियोंके समान सुवर्णाभस्मका कार्य नहीं है. सुवर्णाका कार्य रक्तमें कुछ विष हो तो उसको नष्ट करनेका है. सुवर्णासे रक्तप्रसादन होता है और खास हृदयकी रक्तवाहिनिओंकी और वातवाहिनिओंकी ताकद बढ़ती है. इसी कारणा सुवर्णाभस्म ‘हृद्य’ मानी गई है. यह कार्य सुवर्णाभस्मका विशेष कार्य है. अद्वयके रसके साथ यह देनी चाहिए.

विष, गर ( अन्न में उत्पन्न होनेवाला विष ) या सेन्द्रिय विष और उस सेन्द्रिय विष या गरको उत्पन्न करनेवाले कीड़ोंका शरीरपर भयानक कार्य होता है. इसको नष्ट करना यह सुवर्णाभस्मका एक अमौ-

लिक गुरा है. स्थावर ( बनस्पति या खनिज ) या जंगम ( सर्प आदि ) विषार के प्रथम तीव्र अवस्थामें उस अवस्थाके खास इलाज करना चाहिए किंतु इन सब उपयोंसे वह विषार पूर्णतया नष्ट नहीं होता है. इनमेंसे कई विषारोंका परिणाम शरीरमें, तीव्र अवस्था के बाद, बहुत दिनोंतक या आखी उम्र तक थोड़ा थोड़ा बना रहता है. इस अवस्थामें ( तीव्र अवस्था कम होनेके बाद ) सुवर्णभस्मका शीघ्र उपयोग करनेसे उन विषारोंका असर पूर्णतया नष्ट होगा. शरीर निर्विष बन जाएगा. सुवर्णभस्म कम खुराकमें बार बार देनी चाहिए.

गर या कृत्रिम विषकी प्रथम चिकित्सा विषको निकालनेवाली और उसका तीव्रत्व नष्ट करनेवाली होनी चाहिए. विषकी तीव्रता नष्ट होनेपर और हृदयकी गडबडभी कुछ शांत होनेपर सुवर्णभस्म शुरू करनी चाहिए. इससे वह बिलकुल निकल जाएगा. कीड़े और उनसे पैदा हुए विषार इस ( सुवर्ण ) से नष्ट होते हैं. याने सुवर्णका कार्य जंतुओं और प्रतिविषोत्पादक होता है. यहाँ भी थोड़े प्रमाणमें और बार बार यह देनी चाहिए.

इसी गुरा के कारण सुवर्णका क्षय रोग में कार्य होता है. आयुर्वेद में क्षयरोग चिकित्सामें सुवर्णभस्मका अंतर्भाव किया है. केवल सुवर्ण या सुवर्णमिथ्रित या सुवर्णसाक्षित्वनिर्भित भिन्न २ प्रयोग आयुर्वेद में लिखे हैं. ( जैसे:- अष्ट धातु रसायन, पूर्णचंद्रोदय आदि ). इन सर्व प्रयोगोंका उपयोग दोष दूष्य आदि अवस्थाओंका पूर्ण विचार करके किस तरह करना चाहिए यह पूर्णचंद्रोदय आदि दवाइओंके गुणधर्ममें हम आगे ( दूसरे विभागोंमें ) लिखेंगे. यहाँ केवल सुवर्णके सामान्य गुण और सुवर्णभस्मके विशेष गुण लिखना है. राजयक्षमा या क्षय ( तपेदिक ) की कुछ भी अवस्था हो वहाँ सुवर्णभस्म देनी चाहिए. किंतु जहाँ रोगकी तीसरी अवस्था हो, भला मोटा उरक्षत बन गया हो, रोगी बिलकुल मांसविहीन याने केवल अस्थिचर्मसा रह गया हो, ताकद बिलकुल कम हुई हो, विशेषतः ये सब लक्षण एकही रोगीके शरीरमें मिलें तो वहाँ सुवर्णभस्म क्या कर सकती है? साक्षात् धन्वतरी आवे तो वह भी कुछ नहीं कर सकेगा. किंतु यह अवस्था छोड़कर दूसरे अवस्थाओंमें सुवर्णभस्मसे अच्छा फायदा होता है. रोगीको ज्वर बिलकुल न होना चाहिए या कम रहना चाहिए. बुखार अधिक हो तो सुवर्णभस्मका सेवन बंद करें. सुवर्णभस्म के सेवनसे शुरूसेही ज्वर बढ़ने लगता है. कभी कभी वह बहुत तेज होता है. इसका कारण यह है कि सुवर्णभस्मसे क्षयरोगके कीड़े मर जाते हैं. वे थोड़े २ मर-

जाय या शरीरसे निकल जाय या शरीरके अंदरही निर्विष हो तो ज्वर नहीं बढ़ता किंतु ये किंडे जल्द और अधिक प्रमाण में मर जाय तो मरे हुए कीड़ोंके शरीरोंसे विष पैदा होता है और वह अधिक प्रमाणमें होनेसे और सर्व शरीरमें वह विष फैल जानेसे यह बुखार चढ़ता है और उसी प्रमाणमें चढ़ता है। इससे यह विदित होता है कि इस ज्वरका कारण साक्षात् सुवर्णभस्म नहीं है। मरे हुए कीडे और उनका विष यहही ज्वर का कारण है। इस लिए सुमर्णभस्म देते समय रोगकी अवस्था, रोगीकी प्रकृति आदि सब अवस्थाओंका विचार करके सुवर्णभस्म का प्रमाणा निश्चित करना चाहिए। नहीं तो ज्वर वढ़ जाएगा। ज्वर हो तो भी सुवर्णभस्म बिलकुल कम प्रमाणमें दें सकते हैं। कभी कभी एक रक्तीका दूँड़ भाग भी देना पड़ता है।

सुवर्णका ज्वर बढ़ानेका यह दोष निकालके क्षयरोगमें उससे अधिक लाभ पा सकते हैं। इसी हेतुसे आयुर्वेदमें सुवर्णकी भस्म बनाई है और प्रयत्न किया है कि वह सूक्ष्म प्रमाणमें और अच्छीतरह शरीरमें फैल जाय। सुवर्णभस्ममें खास सुवर्ण का प्रमाणा कम रहता है। तब भी वह रोगिको सहन नहीं होता और ज्वर बढ़ता है। यह देखकर सुवर्णका प्रमाणा और भी कम करना चाहिए। इस तरह कम प्रमाणा में सुवर्णभस्म देनेसे क्षयरोग की प्रथम और द्वितीय अवस्थामें इससे फायदा होता है। क्षय के माने जंतुजन्य क्षय है। निर्जनक क्षय विकारमें भी सुवर्णभस्मका उपयोग होता है।

बार बार सूखी खांसीका आना, सर्व शरीरमें जलन, शामके समय रोजाना थोड़ासा ज्वर और थोडे ज्वरसेभी भयानक अशक्तताका उत्पन्न होना, मन का निरुत्साह, कुछ भी आनंद, हर्ष का समय हो तो मन प्रसन्न न रहना, 'रोती सूरत,' कुछ भी बात तबियत के अनुसार न होना, इतनाही नहीं, जीवनकी इच्छा भी न रहना इत्यादि लक्षणोंमें सुवर्णभस्म देनी चाहिए। इस अवस्था में सुवर्णभस्म और मृगशृंगभस्म देनेसे आगामी क्षय का भय नहीं रहता। यह मिश्रणा दूध और मिसरीके साथ देनी चाहिए।

सर्व शरीरमें हरवर्खत थोड़ासा ज्वर कायम रहना, हाथ पैरोंमें जलन, आवाजका बैठना, पसलियोंमें और खंदेमें संकोच और पीड़ा, अतिसार, बार बार इतनी सूखी खांसी कि खांसते २ छातीमें और पेटमें दर्द, दम चढ़ना, गलेमें दर्द, गलेमेंसे या कफमेंसे खून का आना इत्यादि लक्षणोंमें सुवर्णभस्म देनी चाहिए। सुवर्णभस्म के साथ प्रवालभस्म और मृगशृंग भस्म मिलाकर वह अनारपाकके साथ देनी चाहिए।

इससे आगेकी अवस्थामे रोगीकी ताकद और वजन बहुत कम होते हैं। इस अवस्थामे सुवर्णाभस्मसे कुछ फायदा नहीं होता।

उरक्षतके विकारमे सुवर्णाभस्मका बहुत उपयोग होता है। खून अधिक गिरता हो तो प्रथम रक्तपित्तकी चिकित्सा करना और साथ २ सुवर्णाभस्म कम प्रमाणमे देना। रक्त धातुमे मधुरत्व, स्तिर्ग्राह्यत्व, प्रसाद आदि गुण रहते हैं और वे गुण सुवर्णाभस्मके सेवनसे बढ़ जाते हैं। इसलिए सुवर्णासे रक्तकी यह कमताई नष्ट होती है। रक्तका प्रसादन होता है।

निर्जन्तुक क्षय विकारमेंभी भिन्न भिन्न अवस्थाओंमे शरीरके अवयव और परमाणु घटते जाते हैं। वहाँ भी सुवर्णाभस्मसे लाभ होता है, अनुलोमक्षय और प्रतिलोम क्षय ये दोनों धातुक्षयके विकार सुवर्णाभस्मके सेवनसे शीघ्र आराम होते हैं। जीवनीय गुणकी औषधियोंके अनुपानमे यह देनी चाहिए।

पित्तज और कफज उन्माद ( पगलापन ) मे सुवर्णाभस्मसे फायदा होता है। असहिष्णुता याने कुछ थोड़ासाभी आवाज, बच्चोंका रोना आदि सहन न होना, उजेला, गर्मी, गरम पदार्थोंका स्पर्शमी सहन न होना, इस आवाज या स्पर्शसे रोगीकी तबियत एकदम विगड़ाना, हाथपैरोंका इधर उधर झिड़कना, मुँह, गाल, आँख और हाथपैरोंके अंगुलियोंकी सूजन, रोगीका नंगापनमे इधरउधर धूमना, नंगा रहनेकी इच्छा, बातचीतमेंभी अनीतीकी बातें करना, खुद आवाज सहन न होनेपर भी दूसरे को अपने भाषण से सताना, दूसरे को काटना, दौड़ना, चिल्हाना, सर्व शरीरमे जलन, पंखा चलानेकी सतत इच्छा, 'ठंडा पानी, ठंडा खाना भंगाओ' इस तरह चिल्हाना, सब वस्तु पीली पीली सी नझर आती हो, और इन लक्षणोंके साथ विचार करनेकी शक्ति या स्मृति नष्ट हुई हो, बार बार विचार करते करते एकदम विचार का बंद होना, चित्त-चंचलता या आलस्य, बात चीत मे और चलने फिरनेमे आलस्य और वेफिकरी, मुँहका स्वाद नष्ट होना, विषयभोग की बातें निरन्तर सोचा करतां हो और इस विचार को छोड़ना नहीं चहाता, इस स्त्रीविषयक विचार को कोई बंद करना चाहे तो उसपर कुछ होना, यह ही विचार करनेके लिए निर्जन स्थान मे रहनेकी इच्छा, जीवन का नाश करनेकी इच्छा, इत्यादि लक्षण उन्माद ( पगलापन ) मे हो तो सुवर्णाभस्म देनी चाहिए, धमासा ( हिंगुरण ) के काढे के साथ सुवर्णाभस्म देने से अधिक लाभ होगा।

खांसी या श्वास के पुराने विकार में सुवर्णभस्म से बहुत फायदा होता है। विशेषतः पित्तप्रधान या वातपित्तप्रधान दमा खांसी में इसकी योजना सुफल होती है। द्राक्षारिष्ट या द्राक्षासव के अनुपान में देना।

क्षय के विपसे-दोषदुष्टि से-आंतोमे और ग्रहणीमें विकार उत्पन्न होते हैं। कफ या आंब के दस्त आते हैं। कभी कभी खून भी गिरता है, सब आंतोमे एकसा विकार हुआ हो तो खूब दस्त आते हैं और ताकद शीघ्र नष्ट होती है। इस अवस्थामें सुवर्णभस्म का उपयोग होगा। अनुपान—अनारपाक।

सुवर्णभस्म के सेवन से रक्तप्रसादन होता है। चमड़ीका रंग भी खुल जाता है। त्वगत पित्त दोष का शामन होता है। शुद्धकुष्ठ के समान चर्मरोग नष्ट होते हैं। सुवर्णभस्म के सतत सेवन से महाकुष्ठ या महारोग ( Leprosy ) के कीड़े मर जाते हैं ऐसा सुना है। चमड़ी का विकृत रंग भी अच्छा हो जाता है। इस तरह कुष्ठविकारमें भी सुवर्णभस्म का उपयोग है।

पित्तजन्य प्रसेह में भी सुवर्णभस्म रो आराम होता है।

मुद्रती विकारोंमें, आंत्रिक संनिपात जैसे उवरोंमें, दो प्रकारकी दवाइयां देना पड़ता है। एक, सर्व शरीरमें उस विकारका जो विष कैल गया हो या कीड़े खून में घूमते हो उनको नष्ट करने की योजना, और दूसरा, इतनी लंबी मुद्रत तक हृदय और दूसरे इंद्रिय थक न जाय यह तजबीज करना। सुवर्णभस्म के सेवनसे दोनों कार्य सुफल होते हैं। इस लिए दीर्घकाल के उवरोंमें सुवर्णभस्म का उपयोग करना चाहिए।

सुवर्णभस्म का और भी एक उपयोग है। वह वृष्य याने नपुंसकता-नाशक है। अंडकोष के ग्रंथी इससे सुधर जाते हैं। वे अपना कार्य घरावर करने लगते हैं और नपुंसकता नष्ट होती है।

आँखों के पुराने विकारोंमें भी सुवर्णसे बहुत लाभ होता है। आँखोंकी सुर्खी, आँखोंके पलकोंके अंदर सूजन, आँखोंमें और हाथ-पैरोंमें जलन, आदि पित्त के लक्षणोंमें सुवर्णभस्म का सेवन करना चाहिए।

**दोष—पित्त, वात.**

**दूष्य—रस, रक्त, मांस, शुक्र।**

**स्थान—हृदय, वातवाहिनी, रक्तवाहिनी, आँख, श्वसनैद्रिय, आंत्र, ग्रहणी, अंडकोष और मनोदेश।**

## १९ हरतालभस्म

प्रमाणा ३ से १३ रक्ती.

पत्री हरताल और पिंड हरताल इन दोनों प्रकार की हरताल मिलती हैं। उनमें पत्री श्रेष्ठ और पिंड हरताल कनिष्ठ हैं।<sup>१</sup>

सिद्ध मत से हरताल चार प्रकारकी हैः—

( १ ) बुगदाद, ( २ ) गोदन्ती, ( ३ ) तवकी और ( ४ ) पिंडताल। इनमें पिंडताल सबसे कम दर्जेकी और उससे पहले पहले अधिक अधिक श्रेष्ठ है। याने बुगदाद सबसे श्रेष्ठ है।<sup>२</sup>

अशुद्ध हरताल के सेवनसे आयुष्य का नाश होता है। कफ, वात और प्रमेह के विकार होते हैं, बुखार, फोड़े फुँसिया और अंगसंकोच उत्पन्न होता है।<sup>३</sup>

इस लिए हरताल का शोधन करना चाहिए।

हरताल का शोधनः—

१. हरताल के छोटे छोटे टुकड़े बनाकर कपड़ेमें बांधना, और चूना मिश्रित कांजीमें दोलायंत्र के विधीसे एक प्रहर तक पकाना। इसके बाद कुम्हड़ा ( पेठा ) के रसमें, तिलके तेल में और त्रिफलाके काढ़े में इसी तरह एक एक प्रहर दोलायंत्रसे पकाना। इससे हरताल शुद्ध होती है।<sup>४</sup>

२. कुम्हड़े के रसमें, तिलके ज्वार के पानीमें या चूनेके पानीमें एक प्रहर तक दोलायंत्रके विधीसे पकानेसे हरताल शुद्ध होती है।<sup>५</sup>

१. हरितालं द्विधा प्रोक्तं पत्राख्यं पिंडसज्जकम् ।

तयोराद्यं गृणौ श्रेष्ठं ततोहीनयुग्मं परम् ॥ र. प्र. सु.

२. सिद्धायैस्तु हरितालश्चतुर्विधः प्रोक्तः बुगदादी, गोदन्ती, तवकी, पिंडतालश्च एते पिण्डाख्यात् क्रमेण श्रेष्ठतरा ज्ञेयाः । आ. प्र.

३. अशुद्धतालमायुष्मं कफमारुतमेहकृत् ।

तापस्फोटांगसंकोचं कुरुते तेन शोधयेत् ॥ र. र.

हरतिच हरितालं चारुतां देहजातां ।

मृजति च बहुतापानङ्गसंकोचपीडां ।

वितरति कफवातौ कुष्ठरोग विदध्या-

दिदमशितमशुद्ध मारितं वाऽप्यसम्यक् ॥ आ. प्र.

४. तालकं पोटलीं बद्ध्वा सचूर्णो काञ्जिके क्षिपेत् ।

दोलायन्त्रेण यामैकं तत कुम्हाण्डजे रसे ।

तिलतैले पचेयामं यामं च त्रिफलाजले ।

एवं यन्त्रे चतुर्याम पाच्यं शुद्धयति तालकम् ॥ का. र. र.

५. स्विन्नं कुम्हाण्डतोये वा तिलक्षारजलेऽपिवा ।

तोये वा चूर्णसंयुक्ते दोलायन्त्रेण शुद्ध्यति ॥ र. र. स.

३ हरताल के चूर्ण में उसका चूर्ण भाग सुहागा डालकर उसको जंभीरी के रस से धोना, फिर कांजीसे धोना, चौपट्टे कपड़ेमें बांधकर चूना मिश्रत कांजीमें दोलायंत्र के विधि से एक दिनतक पकाना, या कुहाड़ेके रस में या सेमर (शाल्मली) के रसमें चार प्रहरतक पकाना इस रीतसे हरताल शुद्ध होती है।<sup>१</sup>

**शुद्ध हरताल के गुणः—**

१ शुद्ध हरताल के सेवन से कुष्ठ कम होता है, मृत्यु और जरा दूर रहती है, शरीरकी कांति, वीर्य और आयुष्य बढ़ता है।<sup>२</sup>

२ शुद्ध हरताल से कफ, रक्तदोष, विष, भूतवाधा और स्थियोंका मासिक स्राव नष्ट होता है, यह स्निग्ध, उष्णा, कदु, अधिक्रीपक और कुष्टनाशक है।<sup>३</sup>

**तालभस्म बनानेकी रीतः—**

१. चार तोला हरताल धीगुवार के रसमें डालकर दो कट्टोरेके बीचमें रखकर चूलेपर धर दो और बारह प्रहर तक अग्नि चलाओ, फिर उतार कर अपनेआप ठंडा होने पर वह भस्म निकाल लो।<sup>४</sup>

२. पलाश के जड़ का शहदके समान गाढ़ा काढ़ा बनाओ, और उस काढ़े में तीन दिन तक हरताल का खरल करो, फिर भेंस के मूत्रमें तीन बार खरल करो, फिर दस गोयठोंके अग्निसे लघुपट देना, इस तरह बारह पुट देनेसे हरताल की भस्म बन जाएगी।<sup>५</sup>

१. तालकं कराश छत्वा दशांशेन च टंकराम् ।  
जम्बीरोत्थ द्रवै क्षाल्प कांजिके क्षालयेत्तत ॥  
वस्त्रे चतुर्थणे बद्ध्वा दोलायंत्रे दिनं पचेत् ।  
सचूर्णेनारनालेन दिनं कृष्माण्डजे रसे ।  
स्वेद वा शाल्मलीतैयैस्तालं शुद्धिमाप्नुयात् ॥ र. र. स.
२. शोधित हरितालं तु कान्तिवीर्यविवर्धनम् ।  
कुटादिपापरोगधेन जरामृत्युहरं परम् ॥ आ. प्र.
३. श्लेष्मरक्तविषवात्भूतवृद्ध केवलं च स्वलु पुण्हत्विय ।  
लिंगस्मृणकदुकं च दीपनं कुष्ठहारि हरितालमृच्यते ॥ र. भ.
४. पलमेकं शुद्धतालं कुमारीरसमादितम् ।  
शरावसपुटे क्षिप्त्वा यामद्वादशक पचेत् ॥  
स्वांगशीति समादाय तालं च मृत भवेत् ॥ र. मं.
५. मधुतुल्ये धनीभूते कपाये ब्रह्ममूलज ।  
त्रिवारं तालक भाव्यं पिष्टा मूर्च्छथ माहिषे ॥  
उपलैर्दशभिर्देय पुटं रुद्ध्वाऽथ पेपयेत् ।  
एवं द्वानशाधा पाच्य शुद्धं योगेषु योजयेत् ॥ र. र. स.

३. शुद्ध हरताल एक भाग और दो भाग गृहधूम (कजली) लेकर मिट्टीके कटोरेमें नीचे और ऊपर गृहधूम रखकर बीचमें हरताल रख देना। फिर वह कटोरा राखसे पूर्ण भर दो और दूसरे कटोरेसे ढाँककर मुखलेप करके चूलेपर रख दो। चार प्रहर आग्नि देनेसे हरताल की बिलकुल सुफेद भस्म बन जाएगी।<sup>१</sup>

४. शुद्ध हरताल को धीगुवार का रस, कुहड़ेका रस और दही से अलग अलग तीन २ भावना देकर उसका एक गोला बनाओ। और मिट्टीके घडे में नीचे छ अंगलीतक नमक और क्षार डाल दो और ऊपर यह गोला रख के फिर ऊपर क्षार डाल दो। और लोहेके बरतन से ढाँक दो। फिर चूलेपर चढ़ाकर बत्तीस प्रहरतक अग्नी चलाओ। इससे चूना जैसी सुफेद हरतालभस्म बन जाएगी।<sup>२</sup>

५. पत्री हरिताल को शुद्ध करके शुनर्वा (सफेद वस्तु) के रसमें एक दिन खरल करो। फिर सुखाकर एक गोला बनाओ। फिर कटोरेमें नीचे पुनर्वाका क्षार डालकर ऊपर यह गोला रखदो और फिर ऊपर यह ही क्षार रखकर क्रमवर्धित अग्नीसे पांच दिन तपाओ। इस रीतसे हरतालकी भस्म बन जाएगी।<sup>३</sup>

१. एको विभागोऽशुचितालकस्य भागद्वयं शुद्रधूमसारम् ।  
मध्ये विष्टुच्य शुभतालकचूर्णमेतत् तद्वपरि भूरिष्टधूमसार ।  
प्रपूरयेद् भूतिक्याऽथ भाण्डे शरावकेणैव ततो निरुन्धयात् ।  
विष्टुच्य चूल्याच्च हिरण्यरेता दहेजु वै यामचतुष्टय च ।  
एतैः प्रकारैर्ष्टतिमेति तालं निर्धममेवं किल शुद्रवर्णम् ॥ र. सु..

२. शुद्धतालं विचूण्याथ कन्याकुण्डजद्रवै ।  
दध्ना निभावितं शुष्कं गोलं कृत्वा निधापयेत् ॥  
हण्डकायां पटुक्षारं पूरयेच्च पडङ्गुलम् ।  
क्षारेणाच्छाद्य च पुनलोह पात्रे निधापयेत् ॥  
पुन क्षारेण चाकण्ठं पूरयित्वा क्रमाग्निना ।  
द्वार्चिशत्प्रहरं पाच्यं भस्म स्याच्छूर्णसञ्जिभम् । नि. र.

३. पत्राख्यं तालकं शुद्धं पौनर्वरसेन तु ।  
खल्वे विमर्शयेदेकं दिनं पश्चाद्विशोषयेत् ॥  
संशोष्य गोलकं कृत्वा चक्राकारमथापि वा ।  
ततः एउनर्वाक्षारै स्थाल्यामर्धं प्रपूरयेत् ।  
तत्र तम्बोलकं कृत्वा पुनस्तेनैव पूरयेत् ।  
स्थालीं चुल्यां समारोप्य क्रमादाग्निं विवर्धयेत् ॥  
दिनान्यन्तरशूल्यानि पंच वहि प्रदीपयेत् ।  
एवं तान्वियते तालम् । अ. प्र.

**हरताल भस्मकी परीक्षा:-**

तालभस्म अशीपर डालनेसे धूंवा न निकलना चाहिये. धूंवा न निकले तो वह बढ़िया भस्म समझी जाती है. इसीको निर्धमभस्म कहते हैं।

**ग्रंथोक्त गुराधर्म:-**

..मात्रा तस्यैकरक्तिका ।

अनुपानान्यनेकानि यथारोगं प्रयोजयेत् ॥

**किञ्चिद्यथा--**

गुद्धच्यादिकपायेणा गदानेतान्यपोहति ।

सोपद्वर्वं वातरक्तं कुष्ठान्यप्रादशानपि ॥

फिरद्धृदेशजं जन्तोर्हन्ति रोगं सुदुस्तरम् ।

विसर्पमण्डलं कण्ठं पामां विस्फोटकं तथा ॥

वातरक्तकृतान्योगानन्यानपि विनाशयेत् ।

एतद्वेषजसेवी तु लवराम्लौ विवर्जयेत् ॥

तथा कटुरसं वह्निमातपं दूरतस्त्यजेत् ।

लवरां यः परित्यक्तुं न शक्नोति कथंचन ॥

सतु सैन्धवमश्रीयान्मधुरोपरसो हि सः ॥ आ. प्र.

गलत्कुरुष्टुं हरेच्छैव तालकं च न संशयः ॥ ग. म.

सासितं तण्डुलोन्मानं वातरक्तज्वरप्रशुत् ॥ नि. र.

अशीतिवातान्कफित्तरोगान्कुण्ठं च महं च गुदामयांश्च ॥

निहन्ति गुंजार्धमितं च तालं पद्मवल्खण्डेन समं च युक्तम् ॥ ग. चं.

हरताल भस्म का रंग सुफेद रहता है.

हरतालभस्म स्तिरध, उपरा, कटु रसात्मक, अग्निदीपक और कुष्ठनाशक है. यह उत्तम रसायन होनेके कारण रसायनविधीसे इसका सेवन करे तो बुढापा और अकालमृत्युका नाश होता है. शरीरका तेज ( वर्ण ) भी सुधर जाता है.

वातरक्त के विकारोंमें हरिताल भस्मका विशेष उपयोग होता है. इनमेंभी वातप्रधान वातरक्तके विकार हो या कफप्रधान वातरक्त के हो तो हरतालभस्मसे अधिकही लाभ होगा. वातरक्तके विकारका प्रारंभ पैर के या हाथके अंगूठेके जोडमे होता है. शुरू में अंगूठेकी

३. तालं सृतं तदा ज्ञेयं वाहिस्थं धूमवर्जितम् ।

सधूमं न सृतं प्राहुर्वृद्धवैया इति स्थितिः ॥ आ. प्र

सूजन, दर्द और पीड़ा होती है। फिर वह रोग सर्व शरीरमें फैलता है। वातरक्त और कुष्ठ ये दोनों भिन्न २ विकार हैं। इनके कारणोंमें बहुत कई हैं। वातरक्तके दोषदूष्य कुष्ठके दोष-दुष्योंसे भिन्न हैं।

सर्व शरीरमें पीड़ा, जगह जगह सूजन; वह पीड़ा इतनी होती है कि जैसे अंदरकी हड्डियां फूटती हों; सूजनसे फूली हुई चमड़ीका रंग फीका और चमड़ी फटती हुई जैसी पीड़ा; कभी कभी चमड़ीका रंग काला या फीका काला, हाथपैरोंके धमनिओंका (नाडिओंका) संकोच, इस संकोचके कारण उनके जोडँोंमें टेढ़ापन और इसी बजह रोगी चलने फिरने सकता नहीं और एकही जगह बैठता रहता है। सर्व शरीरमें, जोडँोंमें, उंगुलियोंमें और नाडिओंमें बार बार पीड़ा की तकलीफ, सर्व शरीरका जकड़ना, सर्व शरीरमें कंप और कभी कभी सूजनपर शुनवहरी (शून्यता) या मिनामिनापन, स्पर्शका ख्याल न होना, ठंडा पानी, ठंडी हवा या ठंडी चीजों का द्वेष, इन चीजोंका दर्शन भी न चाहना, मानो के रोगी उनसे डरता हो, क्योंकि ठंडी चीजोंसे उसके सब लक्षण बढ़ जाते हैं। इन लक्षणोंके वातरक्तको वातप्रधान वातरक्त कहते हैं। इस विकारमें हरतालभस्म धी के साथ देनेसे सब लक्षण हट जाएंगे।

शरीरके जिस विभागमें सूजन हो वहाँका भारीपन या सर्व शरीरका भारीपन, सर्व शरीरका ठंडापन, चमड़ीपर सूजीसे नोकनेसेभी उसका स्पर्श या पीड़ा का ज्ञान न होना; हाथपैरोंपर अग्नीसे जलाने परभी पीड़ा या गर्मीका ख्याल न होना, हाथपैरोंपर और अंगुलियोंपर एक तरहकी चमकीली सूजन, बाहरसे चमड़ीका ठंडापन, खुजलीका अधिक होना, किंतु पीड़ा कम होना और वहभी कभी रहती है और कभी नष्ट होती है, इन लक्षणोंसे युक्त वातरक्त को कफप्रधान वातरक्त कहते हैं। इसमें भी हरताल भस्म का उपयोग होता है। किंतु यह कद्दु-करंजा (करंजवा) के पत्तोंके रस के साथ और धी या मिश्री मिलाके देनी चाहिए।

पित्तप्रधान वातरक्तके विकारमें हरतालभस्म से कुछ भी फायदा नहीं होगा, इतनाही नहीं पित्तप्रधान विकारमें इसका सेवन किया जाय तो तकलीफ अधिक होगी, पित्त बढ़ जाएगा और रक्तपित्त का उपद्रव होगा।

वातरक्त के उपद्रवोंमें भी हरतालभस्म का उपयोग होता है। निद्रानाश, मुहका स्वाद नष्ट होना, श्वास (दमा), मांसकोथ

( गँग्रीन ) ( वह पित्तप्रधान हो तो ताप्यादि देना चाहिए ), सिरके नसोंका जकड़ना, अपस्मार ( मुर्गी ), बेहोशी, पीड़ाका अधिक होना, प्यास, बुखार, विचार करने की शक्ति नष्ट होना, सर्व शरीरका कंप, हिक्का ( हिचकी ), पंगुत्व, त्वग्रोग, सूजन का पाक और फूटना, चक्कर का आना, थकावट, अंगुलियाँका टेढ़ापन, फोड़े या हड्डियाँपर सूजन, सिरदर्द, नाड़िओंका संकोच आदि उपद्रव बहुत कष्टप्रद होते हैं। इनमें हरतालभस्मसे कुछ लाभ होगा। किंतु अपस्मार और बेहोशी का उपद्रव सबसे अधिक कष्टदायक और प्रायः असाध्य है।

वातरक्त का विकार बहुत काल तक कायम रहता है और रोगी-ओंको बड़ी तकलीफ उठानी पड़ती है। कभी कभी यह अपने आप ( या औषधोंसे ) कम होतासा नजर आता है, और फिर थोड़ेसे अपथ्य से अधिक बढ़ता है। सब लक्षण एकसाथ बढ़ जाते हैं। कभी कभी वातरक्त के दूसरे लक्षण कम होते हैं और चमड़ीके विकार बढ़ते हैं। जैसे-वीसर्प, सर्व शरीरपर चक्कतेका आना, फोड़े फुँसिया, हर तरह के त्वग्रोग, और चमड़ीका रंग बदलना ( काला होना ) इत्यादि लक्षण होते हैं। इन सर्व लक्षणोंमें हरताल भस्म देनी चाहिए। रोग जितना पुराना हो उतनाहीं कम प्रमाणा इस भस्म का देना चाहिए। फिर भी कुछ दिन के सेवन के बाद वह बंद रखना चाहिए और फिर शुरू करना चाहिए। इससे औषधीका सात्त्व नहीं होगा। रक्तदोषांतक कल्प हरिताल भस्म से मिश्रित कर के देना।

वातरक्त और कुष्ट इन दोनोंके संप्राप्ति, निदान और लक्षणोंमें भिन्नता है। किंतु हरताल भस्म का उपयोग कुष्ट विकार में भी होता है। आयुर्वेदशास्त्र में कुष्ट यह एक त्वग्रोग ( चमड़ीका रोग ) माना जाता है। किंतु पामा, कच्छू, उग्रा, सिध्म, जैसे चमड़ी के विकारों में हरताल भस्म का कुछ कार्य नहीं होगा, वहां गंधकरसायन ही देना चाहिए। क्यों कि ये सब शुद्धकुष्ट माने जाते हैं। ये सामान्य त्वग्रोग हैं। इनमेंभी कभी कभी गंधकरसायनसे कुछ फायदा नहीं होता और रोग बहुत काल तक तकलीफ देता है। इनमें हरताल भस्म मजीठ के काढ़े के साथ देनेसे कुछ लाभ होगा।

इन सामान्य त्वग्रोगोंसे भिन्न महाकुष्ट होते हैं। उनमें दोषदूष्यों का विचार कर के हरताल भस्मका उपयोग करना चाहिए। क्यों कि हरताल भस्म यह एक उत्तम कुष्टघ्न रसायन है। किन्तु पित्त दोष की दुष्टी हो या रक्त धातु दूषित हुआ हो तो हरतालभस्मसे कुछ लाभ

नहीं होगा. वात दोषकी या कफ दोषकी दुष्टि हो, अथवा त्वक्, मांस और अंबु दूषित हुए हो तो कुष्ठ विकारमें हरतालभस्म के समान दूसरा कौनसा भी द्रव्य कार्य नहीं करेगा. योग्य प्रमाणमें और रोगकी योग्य अवस्था में हरतालभस्म की योजना हो तो रोग जरूर हट जाएगा.

वातदोषकी दुष्टीसे उत्पन्न हुए कुष्ठरोगमें-चमड़ी खरस्पर्शी (स्पर्शसे कड़ी मालूम होती है), चमड़ीका रंग कालासा या लालसर, चमड़ी का सूख जाना और फूटना, पीड़ा इत्यादि लक्षण होते हैं. इसमें हरतालभस्मका उपयोग होता है. कापाल, उंडुंबर, मण्डल, दुङ्ग, काकरा, पुंडरीक और क्रष्णजिव्ह ये सात महाकुष्ठ हैं. इनमेंसे औंडुंबर कुष्ठमें-चमड़ीमें जलन, सुर्खी, खुजली और पीड़ा अत्यंत होती है, चमड़ीके बालोंका रंग भुरा होता है और दूषित जगहपर गूलर के पके हुए फलके समान गांठे आती है. औंडुंबर कुष्ठमें हरतालभस्म न देनी चाहिए. दूसरे छ महाकुष्ठोंमें इसका अवश्य उपयोग करें. यह देनेके लायक दोषदूष्योंका विचार हम ऊपर कर चुके हैं.

कुष्ठका रंग सुफेद या लाल, वहाँ की चमड़ी मोटी, उसी जगह-पर पसीना का अधिक आना, रंग चमकीला और चमड़ीपर चकत्ते ऊठते हो तो वह कुष्ठ कृच्छ्रसाध्य समजना चाहिए. इसमें हरताल-भस्मसे कुछ लाभ होगा.

कुष्ठके चारों ओर का किनारा ऊंचा, कठिन और लाल रंगका; और मध्यभागमें पीड़ा अधिक हो, और चकत्ते जरा लंबेसे हो तो उस कुष्ठको क्रष्णजिव्ह कहते हैं. कुष्ठका रंग सुफेदसा, किनारोंपर सुर्खी और कमलके पत्तोंकी तरह फैला हुवा, ऊंचा और थोड़ासा गुलाबी रंग का कुष्ठ पुंडरीक कुष्ठ कहा जाता है. विलकुल लाल गुंजके समान लाल रंगका और उसमें सबसे अधिक पीड़ा होती हो तो उसे काकरा कुष्ठ कहते हैं. इन सर्व प्रकारके कुष्ठ विकारोंमें हरतालभस्म देनी चाहिए. उससे विकारकी तकलीफ कम होगी.

फिरंगरोग या फिरंगोपदंश (आतशक) की दो अवस्थाएँ होती हैं. एक तीव्र या नयी और दूसरी पुरानी. इन दोनों अवस्थाओंमें हरतालभस्म का उपयोग होता है. इस रोगकी प्रथम अवस्थामें मसूर जसा धाव हो तो पारद (पारा) का अच्छा उपयोग होता है. प्रथम अवस्थामें पारदका उपयोग न किया जाय हो तो दूसरी अवस्था शुरू होती है. यह अवस्था शुरू हुई हो या न हो, यह विकार नष्ट होनेके लिए इस समय हरतालभस्म देना चाहिए. दूसरी अवस्थाके बाद भी

और दूसरे उपद्रव होनेपर भी हरतालभस्म से जरूर लाभ होगा। आत-शक का विष शरीरमें नया हो और दोषदूष्योंमें उसका अधिक प्रवेश (फैलाव) न हुआ हो तो पारा और पारेसे बने हुए दूसरे रसायन देने चाहिए। किंतु यह विष पुराना हुआ हो और दूष्योंमें फैला हुआ हो, त्वरं मांस आदि दूषित हुए हो तो हरतालभस्म देनी चाहिए। तीव्र विकारमें पारद और पुरानेमें हरताल या दूसरे मल्लकर्त्तव्य देना यह ही आतशकके भिन्न अवस्थाओंकी योजना है।

आतशककी भिन्न अवस्थाओंमें भी दोष और दूष्यका विचार करना चाहिए। इसमें भी पित्तदोष हो या रक्तधातु दूषित हुआ हो तो हरतालभस्मका अनुपान बदलना जरूर होगा। याने पित्तनाशक या रक्तप्रसादक अनुपानके साथ यह देनी चाहिए।

आतशकके उपद्रव भी बहुत होते हैं। उपद्रव का अर्थ यह है कि मुख्य विकारके बाद उत्पन्न होनेवाला दूसरा स्पष्ट रोग। आतशकके बाद ऐसे स्पष्ट रोग बहुतसे निकल आते हैं। इनमेंसे गलत्कुष्ठ और गुदशूक इन दोनों विकारोंमें हरतालभस्मका विशेष उपयोग होता है। दूसरे उपद्रवोंमें भी हरतालभस्मका कुछ ना कुछ उपयोग होता है। आतशकमें जो कुष्ठविकार उत्पन्न होता है उसमें इसका खास उपयोग है। आतशकका कुष्ठ दूसरे कुष्ठोंसे जरा भिन्न है। दूसरे कुष्ठोंमें निज दोष या दूष्य नहीं होता। (याने कुष्ठका विकार प्रथमही अच्छे शरीरमें उत्पन्न होता है।) इनमें अवस्था भेद या कुष्ठ जाति और लक्षणोंमें भिन्नता नहीं होती है। याने एक प्रकारके कुष्ठमें एकही प्रकारके लक्षण पाये जाते हैं, और उनहीं लक्षणोंके वृद्धीसे गलत्कुष्ठ उत्पन्न होता है। इसके बाद सर्व शरीरपर चकत्ते आते हैं। हाथपैरोंकी अंगुलियों पर सूजन और उस जगहपर स्पर्शका ज्ञान नष्ट होता है। उसपर चाहे चोट लगे या जल जाय तब भी रोगीको कुछ भी जान नहीं पड़ता इतना वह भाग सुन्न हो जाता है। इस अवस्थाके बाद वे चकत्ते फूटने लगते हैं। उनमेंसे पानी सा स्नाव निकल आता है। सर्व शरीरपर सूजन आती है और मुँह का आकार इतना बदलके खराब हो जाता है कि उसको देखकर धूरा आती है। इस अवस्थामें हरतालभस्मका उपयोग होता है। जहाँतक इस अवस्था का समय हो वहाँतक इन दवाइओंसे कुछ फायदा होता है किंतु इस स्नावके बाद जब अंगुलियाँ गिरने लगती हैं और दूसरे अवयवोंके ढूकड़े पड़ने लगते हैं तब इन दवाइओंसे कुछ

भी लाभ नहीं होगा. यह बात दूसरे आनुवांशिक कुष्ठोंकी अवस्थाओंमें भी सत्य है.

निज कुष्ठ या आतशक का कुष्ठ, वातके विकारका हो तो उनमें वातवाहिनिओंका क्षोभ होता है और जगह २ पर स्पर्शसहनत्व (याने स्पर्श सहन न होना) होता है. थोड़ा भी स्पर्श होनेसे अत्यंत पीड़ा होती है. वातवाहिनिओंकी जगहपर भयानक वेदना होती है. रोगी पीड़ा के मारे चिल्हाता है. वातवाहिनिओंका संकोच होता है और स्नायु और मांस का भी संकोच (जकड़ना) होता है. वह भाग भी सूख जाता है. इस प्रकारमें हरताल भस्म का उपयोग होता है.

आतशक का उपद्रव मेह और व्वासीरमें भी हो सकता है. इनमेंभी कुछ रोगी हरताल भस्मके सेवन से अच्छे हुए देखनेमें आये हैं.

बार बार आनेवाले बुखारोंमें-जिन्हे परिवर्तित ज्वर करते हैं—हरताल-भस्मका उपयोग होता है. मामूली शीतपूर्वक ज्वर (मले-रिया बुखार) में भी कोई हरतालभस्म देते हैं. किंतु केवल परिवर्तित ज्वरमेही इससे फायदा होता है. दूसरे ज्वरोंमें इतना नहीं होता.

दोष—वात, कफ.

दूष्य—रस, रक्त, मांस.

स्थान—त्वक्, शाखा, यकृत्.



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with  
By  
  
Avinash/Shashi

[creator of  
hinduism  
server]



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with  
By  
  
Avinash/Shashi

[creator of  
hinduism  
server]

